काश्मीर कीर्ति कलश

काश्मीर कीर्ति कलश

रघुनाथ सिंह

सादर भेंट

यूनाइटेड कॉमर्शियल बैंक,

उसके

संस्थापक, अध्यक्ष, संचालक मण्डल

तथा

सर्व स्थानीय जनों

को—

जिनका मुझे स्नेह मिला है।

संचालक-मण्डल

काश्मीर-गाथा

यह काश्मीर—

काश्मीर सुन्दर है। उससे सुन्दर है, काश्मीर का इतिहास। उससे सुन्दर है, काश्मीर के राजाओं का जीवन-वृत्त। उससे सुन्दर है, काश्मीर का विकास। उससे सुन्दर है, काश्मीर का काव्य। उससे सुन्दर हैं, वहाँ की गाथाएँ।

उस गाथा को लिपिबद्ध करता हूँ। वह गाथा आकाशबेल तुल्य, बिना मूल, बिना शाखा, बिना प्रशाखा, बिना पल्लव, बिना सिंचन हरित थी। रंगीन थी। पादप मूर्धा पर उपेक्षित थी। किन्तु लगती थी। जैसे पादप की केसरिया शिरस्त्राण।

बेल को मरुस्थल की मरु वायु सुखा न सकी। सूर्य की प्रखर किरणें दग्ध न कर सकीं। घनघोर वृष्टि उसे बहा न सकी। तुषारपात खण्डित न कर सका। उस अमर बेल, उस आकाश बेल को, शताब्दियों ने झकझोरा है, उजाड़ा है। किन्तु जहाँ, जिस पादप पर जाकर गिरी, वहीं फैली। वहीं केसर की तरह सुन्दर लगी।

गाथा की कीर्तिलता कुसुम काश्मीर की सुरभि थी। झंझावात आया। लता उखड़ गयी। सुरभि लुप्त हो गयी। शताब्दियाँ मौन हो गयीं। मन्दिर के दीप निर्वाण हो गये। हड़ हड़ करते, घोर चिंघाड़ करते, अपना इतिहास लोप करते, मंदिरों के पाषाण खण्ड धराशायी हुए। प्रतिमाएँ टूटीं। वितस्ता रक्त-रंजित हुई।

भूर्जपत्र पर लिखे। ताल पत्र पर लिखे। कागज पर लिखे। काव्य साहित्य में, दर्शन साहित्य में, धर्म साहित्य में, इतिहास साहित्य में, वितस्ता की धारा दलदल बनी। वे युगों की, शताब्दियों की, सहस्रों वर्षों की गाथा लिये, गल गये, वितस्ता के जल में। डूब गये, सरों के तल में। जल उठे। प्रत्येक नागों के किनारे, ग्रामों के किनारे, जलाशयों के किनारे, बनाते ग्रन्थों की चिताएँ।

उस झंझावात के घर-घर घर घोष में गाथा-गीत विलीन हुई। काव्य-लता मुरझा गयी। वह काश्मीर, उन राजाओं का काश्मीर, गहरी नींद में सो गया। वह रह गया, केवल अतीत की एक स्मृति। विश्व-रंगमंच का एक अति दुःखान्त अंक।

सामवेद के स्थान पर अजाँ की आवाज उठी। वेदपाठ के स्थान पर कुरान की तलावत उठी। शिखा बन गयी दाढ़ी। मन्दिर बन गये जियारत। मठ बन गये सराय। विहार बन गये खानकाह। सतीसर बन गया बाग-ए-सुलेमान।

गोपाद्रि शिखर बन गया तख्त-ए-सुलेमान। हिन्दू बन गये मुसलमान। बन गये, केवल ग्यारह घर ब्राह्मण, उस महाप्रदेश काश्मीर में।

किन्तु धर्म उनके विश्वास को नहीं बदल सका। धर्म उनके इतिहास को नही बदल सका। धर्म उनकी परंपरा को नही बदल सका। धर्म उनके वर्ण को नही बदल सका। धर्म उनकी भाषा को नही बदल सका। धर्म उनकी मानव-आकृति को नही बदल सका।

वे रहे काश्मीरी, अपने घर में, अपने गाव मे, अपने शिकारा मे, अपनी वाटिका मे, अपने शाली के खेतो में, अपनी भेड़ो के साथ, अपनी बकरियों के साथ, अपने शाल-दुशालो के साथ। बालाए गाती रही, नागों के कल-कल लय के साथ, महा पद्मसर की लहरो के साथ, डल की उल्लोलों के साथ, नावो के डाड़ो के साथ, शाली बोने के साथ, शाली रोपने के साथ, शाली काटने के साथ। वे गाती रही सेवों की छाया मे, सेवों के गीत, वे गाती रही अखरोट की छाया मे, अखरोटों के गीत। वह गीत था, काश्मीर की भूमि का। वह गीत था, सतीसर का। वह गीत था अतीत का, जिसकी वे थाती थी।

किन्तु, जीवन सदृश, देश के जीवन मे, उतार-चढ़ाव आया। इस उतार-चढाव की कहानी प्रस्तुत पुस्तक में गुम्फित मिलेगी। काश्मीर का यह उतार-चढाव, महासागर का ज्वारभाटा था, जो उठने और गिरने पर भी, समुद्र को मर्यादाहीन नही करता। यही बात काश्मीर के सम्बन्ध में कही जायगी।

विकास मे, विप्लव में, क्रांति में, नृशंसता में, क्रूरता में, हिंसा-अहिंसा में, दया-दान में, करुणा में, काश्मीर ने अपनी मर्यादा नही खोयी। विश्व के किसी देश ने, किसी राष्ट्र ने, किसी प्रदेश ने, किसी भूखण्ड ने, इस प्रकार के उदाहरण उपस्थित करने में सफलता प्राप्त नही की।

काश्मीर की पवित्र भूमि ने, सतीसर ने, उन राजाओं की अद्भुत शृंखला उपस्थित की है, जिनमें सम्राट थे, दिग्विजयी थे, राजर्षि थे, कवि थे, वक्ता थे, दार्शनिक थे, धर्मवेत्ता थे, योगी थे और सदेह स्वर्ग जाने वाले थे।

उनमें वे थे, जिन्होंने तृणवत् राज-सुख त्याग दिया। उनमे वे थे, जिन्होंने राजसिंहासन की अपेक्षा पर्णकुटी का वरण किया। उनमें वे थे, जिन्होंने सपत्नीक, सदेह स्वर्ग की यात्रा की। उनमे वे थे, जिन्होंने प्राणि-रक्षा के लिए, शरीर अर्पण कर दिए। उनमें वे थे, जिन्होंने राज को सुख का नही, सेवा का साधन माना। उनमें वे नर पुंगव थे, जिन्होंने सहिष्णुता, धर्म-निरपेक्षता, मानव-स्नेह की दुंदुभी बजायी, जिसकी ध्वनि आज भी मन्द नही हुई है।

काश्मीर के इतिहास के पृष्ठ रक्तरंजित नही है। उसका इतिहास सेनाओं के अभियानों का इतिहास नही है। प्रचण्ड भैरव नाद का इतिहास नही है। रक्त-क्रान्ति का इतिहास नही है। घोर विप्लव का इतिहास नही है। महत्त्वाकांक्षी

राजाओं के महत्त्व का इतिहास नहीं है। उनका इतिहास नहीं है, जो कामिनी रूप के लिए, देश की बाजी लगाते थे। जो अपनी ईर्ष्याग्नि में राज्यों को भस्म करते थे।

यह इतिहास है, केसर कुसुम का। वह केसर जैसा सुन्दर है। केसर जैसा कोमल है। केसर जैसा सुगन्धित है। केसर सूखने पर भी सुगन्धि बिखेरती है। घिसकर, पिसकर, रगड़कर, अपना आकार खोकर, सुहावना रंग लेकर, भगवान के ललाट पर, मानव के ललाट पर तिलक बनती है।

यह इतिहास है उन महान् नर-पुंगवों का, जिन्होंने भेरी-घोष के स्थान पर, धर्म-घोष किया था। यह इतिहास है उन वीरों का, जिन्होंने भगवान कृष्ण से दो बार लोहा लिया था, जिन्होंने यादवों की राजधानी मथुरा को घेर लिया था, जिन्होंने विक्रमादित्य की राजधानी उज्जैन को घेर लिया था, जिन्होंने कान्य-कुब्ज की राजधानी कन्नौज को घेर लिया था।

यह इतिहास है, उनका जो पूर्व समुद्र पहुँचे थे, पश्चिम समुद्र पहुँचे थे, दक्षिण समुद्र पहुँचे थे जहाँ उनके स्थापित स्तम्भ काश्मीर-वाहिनी की प्रशस्ति गाते थे।

भगवान रामचन्द्र के पश्चात्, काश्मीर-वाहिनी ने श्रीलंका पर काश्मीरी पताका फहरायी थी, जिसे दशकंठ राघव के पुनः आक्रमण का भय श्रीलंका-निवासियों को हुआ था, जिन्होंने कर्णाटक, लाट, सौराष्ट्र आदि विजय कर अहिंसा का दुन्दुभी-घोष किया था।

यह इतिहास है उनका, जिनके दिग्विजय के सम्मुख, भारतीय राजाओं की पताकाएँ झुक गयी थीं। उन्होंने दिग्विजय किया था। उपनिवेशवाद के लिए नहीं। साम्राज्यवाद के लिए नहीं। पूँजीवाद के लिए नहीं। केवल अहिंसावाद के लिए, एक कामना से, एक इच्छा से, विश्व के प्राणी स्वयं प्राणियों के भक्षक न बनें।

उनका अहिंसा-प्रेम उनके वीरत्व का प्रतीक है। उन्होंने अहिंसा व्रत के लिए, प्राणी की रक्षा के लिए, स्वशरीर-अर्पण में संकोच नहीं किया था। राजा होकर, वैभवशाली होकर, वे सामान्य प्राणियों के समान जीवन-चर्या करने में गौरव का अनुभव करते थे।

काश्मीर के राजभवन, काश्मीर के राजप्रासाद, किसी दुर्ग के अन्दर नहीं थे। वे प्राचीर से घिरे नहीं थे। वे प्राकार में वेष्ठित नहीं थे। राजप्रासाद साधारण थे। जनता के बीच में थे। वे सबके लिए गम्य थे। सुलभ थे।

इस पुस्तक में उनका इतिहास है, जिन्होंने अहिंसा धर्म, दिग्विजय द्वारा फैलाने की कल्पना की थी। इसमें उनका इतिहास है, जिनके पीछे राजसिंहासन दौड़ता था और वे दौड़ते रहे वन की ओर। इसमें उनका इतिहास है, जो राज्य त्यागते थे, दूसरे को सौंपते थे और दूसरा उन्हें ही वापस करना माँगता था।

काश्मीर की रण सज्जा विश्व में श्रेष्ठ थी। काश्मीरी सैनिक विश्व में श्रेष्ठ

थे। उनकी रण-नीति विश्व में श्रेष्ठ थी। वही एक ऐसी वाहिनी थी, जो काश्मीर सीमा अतिक्रमण कर, भारतीय सीमा अतिक्रमण कर विदेशों में पहुंची थी। जिसने अपना संघटन, अपनी प्रबल शक्ति, इन गाथाओं के काल के सहस्रों वर्ष पश्चात् तक यथावत रखी थी। अपने समय के महान सेनानी, महमूद गजनी को भी, लोहकोट में, काश्मीरी सेना के सम्मुख नत-मस्तक होकर पलायन करना पड़ा था।

भारत में जिस समय सभी राजाओं की पताकाएं विदेशी आक्रमणों की आंधी में नत हो गयी थीं, उस समय भी काश्मीर की पताका, स्वाधीन पताका, गौरव-शाली पताका फहराती रही।

उन्हे अपने गौरव का ज्ञान था। मान पर ठेस लगते ही, समस्त काश्मीर आयुधागार बन जाता था। नर-नारी विकल हो जाते थे। उन्हे तब तक शान्ति नही मिलती थी, तब तक सन्तोष नही होता था, जब तक वे, शत्रु का मान मर्दन नहीं कर लेते थे। जब तक, उनका चरण शत्रु के ललाट का स्पर्श नही करता था, वे सुख की नींद सो नही पाते थे।

काश्मीर के राजा निरंकुश नही थे। मन्त्रि-परिषद् सर्वसत्ता-सम्पन्न थी। वह राजा का चयन करती थी। राजा को सिंहासन पर बैठाती थी। उतारती थी। दण्ड देती थी। यह, वह शासन-पद्धति थी, जिसके लिए काश्मीर गर्व कर सकता है। उस पुराकाल मे राजनीति विज्ञान को, काश्मीर की यह सबसे बड़ी देन थी।

यदि काश्मीर के राजा शत्रुओं के प्रति अपनी क्रूरता, दुराचारियों के प्रति अपनी क्रूरता, अपनी नृशंसता की कहानी छोड़ गए है, तो यह भी छोड़ गए है। उन्होंने अपने शरीर पर भी दया नही की थी। अपने शरीर पर भी क्रूरता की पराकाष्ठा कर, विश्व को विचलित कर दिया था।

काश्मीर के राजा निर्माण का अर्थ समझते थे। उनका निर्माण कागजी नही था। उनके निर्मित मन्दिरों, शालाओं, विहारों, मठों, औषधालयों एवं स्तूपों मे काश्मीर मण्डल मण्डित था। कोई ऐसा ग्राम नही था, कोई ऐसा पुर नही था, कोई ऐसा नगर नही था, कोई ऐसी उपत्यका नही थी, कोई ऐसा जलाशय नही था, कोई ऐसा शिखर नही था, जो उनकी शृंखलाओं से वंचित रह गया था।

काश्मीर मे कोई ऐसा व्यक्ति नही था, जिसके आश्रय के लिए कोई स्थान नही था। काश्मीर में कोई बिना छत के, आकाश के नीचे, दरिद्रता देवी का अत्यन्त दुलारा होने पर भी, नही सो सकता था। आवास की तरह सबके लिए अक्षयिणी का द्वार मुक्त खुला था। कोई खाली पेट रह नही सकता था। यह थी इन महीपतियों के निर्माण की सत्य-कथा।

'क' वर्णमाला का प्रथम व्यंजन अक्षर है। और 'म' प वर्ग का अन्तिम व्यंजन

अक्षर है। 'क' से ऊपर की पंक्ति आरम्भ होती है। 'म' से पठार की पंक्ति का अन्त होता है। काश्मीर ऊपर है। हिमालय की गोद में है। उत्तर दिशा में है। और मेवाड़ अर्बली की गोद में है। दक्षिण दिशा में है।

'क' का अर्थ जल है। यदि काश्मीर प्रचुर जल का आगार है तो मेवाड़ 'म' मरुभूमि है, जहां जल नहीं, जलने मिकता कणों की प्रचुरता है, जहां जल मृग-मरीचिका में दृश्यगत होता है।

उत्तर दिशा वरुण की दिशा है, जल की दिशा है। धनेश की दिशा है। दक्षिण दिशा काल की दिशा है। अग्नि की दिशा है। मृत्यु की दिशा है। यदि जल ने, वरुण ने, धनेश ने काश्मीर पर कृपा की थी तो मृत्यु ने, काल ने, अग्नि ने मेवाड़ पर कृपा की थी। उत्तर में चली गौरव यात्रा दक्षिण आकर मेवाड़ में रुकी। वहीं उसने अपना आवास बनाया।

उत्तर में जब, उस गौरव ने विदेशी आक्रमण, विदेशी धर्म के सम्मुख अपना सर्वस्व नष्ट कर दिया, तो उत्तर की उद्वासित गौरवश्री ने मेवाड़ में आश्रय लिया। उत्तर ने गौरव-अध्याय बन्द किया। दक्षिण में मेवाड़ ने गौरव-अध्याय खोला।

वह अध्याय उत्तर से साथ लेता आया, केसर का रंग। केसरिया बना मेवाड़ियों का परिधान। उस केसरिया बाने में मेवाड़ी, जौहर में झूम उठे। केसरिया साड़ी में नारियां अग्नि-स्नान करने लगीं। केसरिया रंग, अग्नि ज्वाला में मिलकर, हो गया एकाकार। काश्मीर केसर कुसुम विकसित देखा जगत ने, मेवाड़ की सतियों की चिताओं में।

गौरव की इस विदाई पर, काश्मीर के अगणित मन्दिर के देवताओं को, देव-स्थानों को गौरव-विहीन काश्मीर में रहना रुचिकर नहीं लगा। वे गौरव का अनु-सरण करने, दक्षिण दिशा की ओर चले। म्लेच्छाकीर्ण उत्तर दिशा, उत्तुंग हिमालय पर्वतमाला ने, उन्हें दक्षिण चलने के लिए बाध्य कर दिया। मरुस्थल डाकते-डाकते उन्हें सरोवरों से गुम्फित, पवनों से आवृत्त मेवाड़ की भूमि दिखायी दी। उन्होंने उसे अपना आश्रय बनाया, जैसे जगत के देवताओं ने काशी को आश्रय बनाया था। वे पग-पग पर बिखर गये मेवाड़ के ग्रामों, उपत्यकाओं, शिखरों, जलाशयों के शीतल पुलिन में।

मेवाड़ में अद्भुत कलात्मक मन्दिरों की पंक्तियां हँसने लगीं। उन्हें विश्वास हो गया। उनके मंदिर टूटेंगे नहीं। उनकी शालाएं बन्द नहीं होंगी। उनकी अर्चायिणी समाप्त न होगी। उन्हें मेवाड़ अक्षुण्ण रखेगा। मन्दिरों के दीप बुझने नहीं पायेंगे। उनके बुझने के पूर्व मानव-दीप बुझ सकते थे।

शैव दर्शन, शिव भक्ति, अपने मूल स्थान से दक्षिण की ओर चली। वह मेवाड़ होती दक्षिण सागर तक पहुंच गयी। मेवाड़ में भगवान एकलिंग ने सबको

आश्रय दिया। एकलिंग के मन्दिर में, ग्राम-ग्राम मे बने मन्दिरों में, महादेव की पूजा, आरती, शंख, घंटा, पटह आदि की ध्वनि होती रही। मेवाड़ का सैन्य नाद हो गया—हर-हर-महादेव। काश्मीर का अध्यात्म घोष था—हर-हर महादेव। मेवाड़ का घोष परिस्थितियों ने बना दिया हर-हर महादेव।

इस घोष ने मेवाड़ को वह शक्ति दी, जिसने मेवाड़ को पुण्य भूमि बना दिया। देशभक्तो का स्वतन्त्रता के पुजारियो का मन्दिर बना दिया। मेवाड़ में पाषाण प्रतिमाएं, दारू प्रतिमाएं, धातु प्रतिमाए खण्डित होने के पूर्व मानव प्रतिमाएं शताब्दियो तक खण्डित होती रही।

महादेव की इस भक्ति ने, इस अनुराग ने अपनी चरम सीमा उस समय प्राप्त की, जब मेवाड़ के राणाओं ने समस्त मेवाड मण्डल एकलिग पर चढा दिया। स्वयं बन गये सेवक। जो घटना काश्मीर मे हजारों वर्ष पहले घटी थी। उसी की पुनरावृत्ति हुई मेवाड मे, काश्मीर इतिहास के करवट बदलने के साथ। पुरातन इतिहास का पटाक्षेप कर, नवीन इतिहास आरम्भ करने के साथ।

काश्मीर मुकुट, हिम किरीट, काश्मीर मण्डल से सबकी विदाई देखकर दुःखी हो गयी। वह अपने चिर साथियो को जाते देख स्वय दक्षिण दिशा की ओर चली। काश्मीर से चलकर, उसे सर्वप्रथम अरावली की हरित पर्वत-मालाओं का दर्शन हुआ। उसे भ्रम हुआ। काश्मीर मण्डल जैसे उसके पीछे चला आया था। वहां उसने एकलिंग की वन्दना सुनी। वेद-ध्वनि सुनी। और वहीं रुक गयी। प्रति वर्ष होता अपना द्रवित रूप अरुचिकर लगेगा। सर्वदा, सदा अरावली में निवास करना चाहा। अरावली पर्वत-मालाओं पर हिम खण्ड-खण्ड बिखर गया। मण्डित हो गया। बनकर उज्ज्वल पाषाण खण्ड। उज्ज्वल पाषाण कण, स्मरण दिलाते, धवल हिमालय का तुहिन पात। प्रतिवर्ष समुद्र-संगम का मोह त्यागकर, मेवाड़ की गौरव-गाथा सुनने के लिए, देखने के लिए, द्रवणशीलता त्यागकर, बन गये अचल। हो गयी साकार। हो गयी मूर्तमान। हो गयी जड़, यह चिन्तन कर, उनका काश्मीर छूट गया।

मेवाड़ का इतिहास निखरा है। उस पर बहुत लिखा गया है। उसने अपना धर्म, संस्कृति, सभ्यता सुरक्षित रखा है। उसके वंश में दीप जलाने वाले हैं, उनकी विरुदावली गाने वाले हैं। परन्तु काश्मीर का इतिहास अभी तिमिराच्छन्न है। जिनका इतिहास है, उनके वंशज नहीं है। उनके कुल में कोई रोने वाला नहीं बचा है। कोई दीप जलाने वाला नहीं बचा है। उसकी विरुदावली गाने वाला कोई नहीं बचा है। अस्तु, मेवाड़ की तरह उनका इतिहास कैसे लोग जानने ?

कर्नल टाड ने लिखा है: "मेवाड़ का प्रत्येक कोना-कोना थर्मापोली और प्रत्येक स्थान में लियोनिडास थे।" मैं कहूंगा, काश्मीर का कण-कण वह कहानी कहता है, जो मानव की सच्ची कहानी है। अध्यात्म की कहानी है। दर्शनों की

कहानी है। काश्मीर का कोई ऐसा खण्ड नहीं है, जिसने यशस्वी कवियों के काव्य का रसास्वादन नहीं किया है। कोई ऐसा स्थान नहीं है, जिसने दार्शनिकों का दर्शन नहीं किया है। कोई ऐसी भूमि नहीं है, जो वीर-प्रसूता नहीं हुई है। कोई ऐसा स्थल नहीं है, जिसने योगी नहीं उत्पन्न किया है। कोई शिलाखण्ड ऐसा नहीं है, जिसके साथ कोई गाथा गुम्फित नहीं है।

काश्मीर का प्रत्येक नाग, प्रत्येक सर, प्रत्येक सरिता, प्रत्येक स्रोतस्विनी, प्रत्येक उपकूल, प्रत्येक शीतल तट, प्रत्येक गुफा, प्रत्येक सेतु, प्रत्येक द्वार, प्रत्येक उपत्यका, प्रत्येक शिखर, प्रत्येक पर्वत, प्रत्येक पर्वत-मूल, प्रत्येक बाहुशैल, प्रत्येक सकट, प्रत्येक अधित्यका, प्रत्येक गर्त, प्रत्येक कुज, प्रत्येक द्वीप, प्रत्येक सरिता, प्रत्येक सगम, प्रत्येक सरिता-उद्गम किसी न किसी महान गाथा से गुम्फित है।

यदि मेवाड के बिखरे पाषाण खण्ड मेवाडियो की गौरव-गाथा गाते हैं, विरुदावली गाते हैं, तो काश्मीर के चचल नाग, निर्मल नाग, उज्ज्वल नाग, प्रसन्न नाग, फेनिल नाग काश्मीर की, काश्मीरियो की, काश्मीर के राजाओ की, वे गाथाएँ गाते हैं जो मानव-मूल्य से रजित हैं, जिनमे धार्मिक शान्ति की, धर्म विप्लव की, दार्शनिक प्रवाह की, तन्त्र की, सम्प्रदाय की, मत मतान्तरो की, विविध विचारधाराओ की, दर्शनो की, विचारों की गाथाएं गुम्फित हैं। उनमे गुम्फित है, सहिष्णुता की कहानी। परस्पर आदर की कहानी, और साथ ही गुम्फित है, उनके उत्कर्ष, उनके वीरत्व के साथ उनके रस की कहानी।

यदि काश्मीर की वीर रोमाचित कथा वहा के पुरुषो की गाथा है, तो वहा की सती-साध्वी नारियो की कहानी, केसर कुसुम की सुरभि है।

मेवाड तुल्य युद्धस्थल मे हत, देश पर उत्सर्ग करने वाले अपने पति की चिता पर, काश्मीर की ललनाए ससमूह सती नहीं हुई। उन्हे उसका अवसर नहीं मिला। किन्तु उनकी तपस्या, उनके आत्मबलिदान, उनके योग, उनके वीरत्व, उनकी देशभक्ति, उनके अद्भुत गुण, उनके सरल चातुर्य की मधुर गीत, सर्वदा उषा गाती एव जगत को जगाती आती है और सन्ध्या उसे सुलाती जाती है।

काश्मीर की नारिया वन्दनीय हैं। स्मरणीय हैं। पूजनीय हैं। अध्यात्म प्रतिमा हैं। धर्म पुतली हैं। उनके पवित्र चरण-कमलो पर अजलिबद्ध शत शत प्रणाम है।

मन करता है। कहीं, किसी नाग के तट पर, कहीं सरोवर के किनारे, किसी स्रोतस्विनी के उपकूल मे, किसी सरिता पुलिन मे बैठकर उनका अतीत सुनता रहू। स्मरण करता रहू। प्रसन्न होता रहू और चिन्तन करता रहू।

उनका चरित्र तुषार-मण्डित उज्ज्वल उत्तुग हिमालय शिखर से भी उत्तुग है, धवल है। किसी शिखर पर, किसी घने कुज की छाया मे, किसी पादप की छाया मे, किसी सुनहली शाली के ढेर की छाया मे, किसी पर्वत-बाहुमल की छाया मे बैठकर उनके चरित का एक-एक पृष्ठ उलटता जाऊ। एक-एक शब्द पढता

जाऊं। नमन करता जाऊं। चिन्तन करता जाऊं। काश्मीर भूमि तू धन्य है। तुमने कैसे इन नारियों की अविच्छिन्न शृंखला की सृष्टि की थी ? क्या उसका रहस्य विश्व के दूसरे भूखण्ड नहीं जान सके थे ?

यदि इन गुम्फित गाथाओं को, पाठक वृन्द, अपनी सहृदयता के प्रवाह में एक बार पढ जायेंगे, तो मैं अपने को कृतकृत्य मानूंगा, समझूंगा, आपने उन काश्मीर-नृपों को स्मरण किया है जो सचमुच नृप थे। उन नारियों का स्मरण किया है जो सचमुच नारी थी।

मैं विश्वास दिलाता हूं आपके सरल नेत्र, इन अक्षर वीथियों में भ्रमण करते श्रान्त नहीं होंगे। सम्भव है, आपके पवित्र नेत्रों के अटके, निर्मल जल विन्दु, उन्हे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक श्रद्धांजलि दे देंगे। उस श्रद्धांजलि के अश्रु-जल से इन मानव मणियों पर बैठी शताब्दियों की धूल, विस्मृति की मलिनता प्रक्षालित होकर, पुन. ज्योतिर्मय हो उठेगी, काश्मीर के उज्ज्वल स्वरूप का दर्शन कराती।

यह गाथा कलयुग के प्रारम्भ से आरम्भ होती है, भगवान श्रीकृष्ण एवं गोनन्द के संघर्ष से आरम्भ होती है। काश्मीर के क्रमबद्ध इतिहास का इसी समय से उदय होता है। महाभारत युद्ध के कुछ वर्ष पूर्व से इस गाथा का मूल स्रोत स्रवित होता है। काश्मीर का लौकिक सम्वत इस गाथा को कालक्रम-सारिणी प्रस्तुत करता है।

कल्हण पंडित ने तत्कालीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों, प्रशस्ति-पटों, पूर्व इतिहासों को शोध कर, राज-तरंगिणी लिपिबद्ध किया था। 'राज-तरंगिणी' काश्मीर की ऐतिहासिक घटनावलियों का सागर है। उसका जितना ही मन्थन होगा, उससे उतना ही अधिक रत्न मिलेगा।

मैंने उसे मथा है। दस वर्षों से मथता रहा हूं। सुतरां मथ रहा हूं। काश्मीर उपत्यका में चक्कर लगाता रहा हूं। ग्रामों में घूमता रहा हूं। भग्नावशेषों मे कुछ खोजता रहा हूं। पुरातन काव्य, साहित्य, गाथा के पृष्ठों को उलटता रहा हूं। काश्मीरियों के साथ बैठकर कितने ही दिन, उनकी प्रवृत्तियों, प्रकृतियों, मनो-भावनाओं का अध्ययन चुपचाप करता रहा हूं। यह पुस्तक उस मन्थन का अत्यन्त लघु परिणाम है।

पुस्तक की गाथाओं का क्रम, राजाओं का क्रम, कल्हण के क्रम और उसकी काल-गणना के अनुसार रखा है। उसमें किसी प्रकार का व्यतिक्रम नहीं हुआ है, यद्यपि उसके कारण पुस्तक की रोचकता, आकर्षण, वर्णन-क्रम, धाराप्रवाह सहसा रुक जाता है।

कुछ राजाओं का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है। अशोक जैसे सम्राट का वर्णन सात श्लोकों में, हुविष्क, जविष्क (हुष्क जुष्क) तथा सम्राट कनिष्क का वर्णन केवल छः श्लोकों में कल्हण ने किया है। मैंने पुस्तक में, उन महान सम्राटों, उन राजाओं

का उतना ही उल्लेख किया है, जिनका सम्बन्ध, काश्मीर के इतिहास और उनके जीवन से है।

'राज-तरंगिणी' पद्य काव्य है। उसमें लगभग सभी रसों का परिपाक हुआ है। किन्तु शान्तरस अधिक भावोत्पादक है। वही उसका स्थायी रस है। मैंने भी यथाशक्ति, कल्हण की शैली का अनुकरण इसलिए किया है कि पाठक तत्कालीन शैली की झलक ले सकें।

कल्हण की राजतरंगिणी में आठ तरंग हैं। इस पुस्तक में प्रथम तीन तरंग, जिन्हें गाथाकाल कहा जा सकता है, उनमें वर्णित नृपों का वर्णन है।

उनका ऐतिहासिक महत्त्व उतना ही है, जितना होना सम्भव हो सकता है। मैंने अपनी ओर से पुस्तक को रोचक एवं आकर्षक बनाने के लिए कुछ जोड़ा नहीं है। अपनी कल्पना को दूर रखा है। काश्मीर की जो अवस्था थी, जो मनःस्थिति थी, जो सामाजिक व्यवस्था थी, जो परम्परा थी, जो मान्यताएं थीं, उन्हें अविकल रूप में प्रस्तुत किया है।

यह पुस्तक उद्देश्यहीन शब्दाडम्बर नहीं है। इस पुस्तक का एक महान उद्देश्य है—भारतीय जनता, विश्व की जनता, काश्मीर के गौरवपूर्ण अतीत का दर्शन करें। उन विस्मृत राजाओं के चरित्र का दर्शन करें, जो विश्व के किसी भी देश, किसी भी राष्ट्र, किसी भी क्षेत्र के प्रतापशाली राजाओं की अग्रिम पंक्ति में उन्नत मस्तक दिखायी देंगे।

यह पुस्तक शब्द वितान मय, काव्यमय, भाषा में कोई रोचक प्रसंग उपस्थित नहीं करती, मनोविनोद नहीं करती, सुप्त कोमल भावना जागृत नहीं करती। कल्पनामय मनोराज्य में घुमाती नहीं। इसका लक्ष्य है। विश्व समझे। इस छोटे-से भूखण्ड काश्मीर उपत्यका में वे महान नर-नारी निवास करते थे, विचरते थे, जिन्होंने मानवीय विकास का अभिनव प्रयोग किया है। उनका वह चिन्तन, एथेन्स के रथ्या, स्पार्टा के व्यायामशाला, उनके उपहार-गृहों में होती चर्चाओं से कम महत्व नहीं रखता यहां ओराकेल डेल्फी के भविष्यवाणी तुल्य योगिनियां, योगियों की वाणी के प्रशमक नहीं होते थे। उनमें अन्धविश्वास रखने वाले नहीं थे। वे सब कुछ देखते थे, सुनते थे, किन्तु स्वयं एक निष्कर्ष पर, मुक्त विचार का पथानुकरण कर, पहुंचने का प्रयास करते थे। बौद्धिक तुला पर तौलते थे।

काश्मीर के विस्मृत राजाओं के कर्म एवं उनकी विकासोपयोगी योजनाओं पर दृष्टिपात करें तो वे अपनी कर्मठता के कारण, अपने त्याग के कारण, अपने महान विचारों के कारण, विश्व के सम्राटों एवं राजाओं की शृंखलाओं में सर्वोच्च शिखर पर आसीन दृष्टिगोचर होंगे।

उनमें कुछ का चरित्र उतना ही निर्मल है, पावन है, उज्ज्वल है, जितना तरंगिणी गंगा का धवल प्रवाह। उनमें कुछ चरित्र किंचित दोषमय हैं। वह दोष

राज-मद की स्वाभाविक देन है। प्रकृति के उजाले और अँधियारे की क्रिया-प्रतिक्रिया के समान, मानव के जीवन, देश के जीवन, राष्ट्र के जीवन में भी क्रिया-प्रतिक्रियाएं होती रहती हैं। दुर्बल प्राणी का उनसे बचना सम्भव नहीं है।

यह पुस्तक मैंने मई मास की भीषण ग्रीष्म ऋतु मे लिखी है। काश्मीर के शीतल जलवायु से सहस्रों मील दूर, काशी में अपने मकान में बैठकर अधिक लिखा है। कुछ कहानियां कलकत्ता मे अपने मित्र श्री बलराम दास के निवास-स्थान पर प्रति बुधवार को लिखी हैं। इस दिन यूनाइटेड कमर्शियल बैंक संचालक मण्डल की गोष्ठी होती थी। श्री बलराम जी की भद्र पत्नी श्रीमती प्रमिला देवी ने मुझे कभी किसी चीज के लिए मुह खोलने का मौका नहीं दिया।

रचनाकाल में अनजाने दो व्यक्तियो की सहानुभूति के दर्शन हुए। वे थे सर्वश्री घनश्यामदास बिड़ला तथा माधवप्रसाद बिड़ला। मुझे यह सहानुभूति भली लगी। वह स्वार्थ से परे थी। पूजी और दारिद्रय का सम्बन्ध परस्पर विरोधी है। दारिद्रय जब पूंजी का अनुसरण करता है, तो वह अपना एकमात्र सम्बल अपनी आत्मा खो देती है। वह वास्तव में मानसिक और आर्थिक दृष्टियो से सर्वहारा बन जाती है।

मनुष्य जिस दिन यह सम्बल खो देगा, जीवित मर जाएगा। उस दिन इस जगत को उसकी आवश्यकता नहो रहेगी। वह केवल सचल मांस-पिण्ड रह जायगा। सजकर, संवरकर, केवल देखने की सामग्री रह जायगा। उपहास की सामग्री रह जायगा। केवल भंड रह जायगा। वह न तो स्वयं कुछ रस दे सकेगा और न लेने की सामर्थ्य रख सकेगा। इस पुस्तक में वर्णित कुछ राजाओं के चरित्र इस दिशा की ओर ले जायेंगे।

मेरी लेखनी अर्थकरी नहीं हो सकी। जिस दिन अर्थकरी होगी, उस दिन वह लेखनी न रह जाएगी। उस दिन वह स्वान के कण्ठ में पड़ी स्वर्ण-शृंखला रह जायगी। वह कुनारी जैसी आकर्षक एवं माया जैसी लुभावनी होगी।

मैं बन जाता एक दुकान। लेखनी बन जाती तुला। शब्द बन जाते सामग्री। कागज बन जाते बाट। उन पर तोला जाने लगता पैसों पर बिकता मेरा शब्द-जाल। किसी व्याज से लिखा नर्मालाप। किसी मिथ्या प्रचार का पाखण्ड। उस लेखनी से भला इन महान अमर पुरुष की अमर कहानी क्या लिखता?

लक्ष्य-लक्ष्य योनियों के पश्चात, मानव-योनि प्राप्त हुई है। उस मानव जीवन का क्या प्रयोजन है! यदि उसे बेच दिया जाय, तो प्रयोजनहीन हो जायगा। उसमें बच ही क्या रहेगा? जब उसमें कुछ बच ही न रहेगा, तो मुक्ति किसे मिलेगी? वह किससे भगवत-भजन करेगा?

सुविज्ञ! पाठक!! कुछ-कुछ वे राजा पुनर्जन्म नहीं चाहते थे। आवागमन नहीं चाहते थे। उन्होंने इस मानव-योनि को ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य समन्वित नही

किया। राज-सुख, भोग-विलास मे व्यर्थ नहीं किया। उन्होंने अपना लोक तथा परलोक दोनो को सार्थक किया था।

धन से प्रासाद, सुख मिल सकता है। लेकिन मानव बनता है प्रासाद का एक प्रसाधन। ईंट, पत्थर, चमक-दमक का बन्दी। करता है नित्य से, अनित्य की कल्पना। इस दर्शन को काश्मीर के कतिपय राजाओं ने समझा था। उन्हें राज-प्रासाद बन्दी बनाकर नहीं रख सके। वे सुवर्ण पिंजरे मे बन्द, नाना स्वादिष्ट पदार्थ-भक्षी पक्षी की तरह अवसर पाकर उड़े। बैठ गये किसी सघन तरु की छाया मे। जगत के कोलाहल से बहुत दूर—समझने इस जीवन का रहस्य।

तरु देता है छाया। तरु देता है फल। तरु कभी कुछ लेता नही। देता ही देता रहता है। इस शाश्वत दाता का आश्रय त्यागकर, कौन उस जड़ प्रासाद की छाया मे जायगा? जो जाता है, वह मृग-मरीचिका के पीछे धावित मृग की तरह प्यासा ही मर जाता है। काश्मीर के राजाओं ने इसे वस्तुत अपने जीवन मे उतारा था। उसमे उन्हे शाश्वत शान्ति मिली। वे समझ पाये अपने जीवन का प्रयोजन।

जीवन की जटिलताए, विषमताए, आकस्मिक शोक-कष्ट एव दुःख अप्रत्याशित अनुभवो के स्रोत है। उन अनुभवो का नाम जीवन है। उनका अभाव है, जड़ता। इस पुस्तक की गाथाए यह कथा कहती हैं।

मेरे मित्र श्री पशुपतिनाथ द्विवेदी ने 'राज-तरगिणी' के तीनों तरगों का मथन मेरे साथ महीना बैठकर किया है। 'राज-तरगिणी' के प्रत्येक शब्द एव भाव को यथाशक्ति यथावत रखने का पूर्ण प्रयास किया है। कल्हण मे प्रसाद गुण की वह मधुरिमा है, जो कालिदास के काव्यो मे मिलती है। भाषागत माधुर्य कल्हण के काव्य मे सर्वत्र विद्यमान है। इसमे भावो के अनुरूप भाषा का समुचित निवेश कवि ने किया है। इस पुस्तक को कल्हण की 'राज तरगिणी' अध्ययन के लिए सोपान के प्रथम दण्ड तुल्य समझना उचित होगा।

पुस्तक मेरे सखा श्री चन्द्रदेव पाण्डेय ने टकणित किया है। पुस्तक की पाण्डु तथा टकणित लिपि मैंने प्रवास मे ही शुद्ध की है, तथापि इसमे अपूर्णता और त्रुटिया मिलेंगी। इन अपूर्णताओं, त्रुटियो के लिए क्षमाप्रार्थी हू।

नेशनल पब्लिशिंग हाउस के स्वामी श्री कन्हैयालाल जी तथा उनके सहयोगियो को धन्यवाद देता हू, जिनके कारण पुस्तक ने साकार रूप प्राप्त किया है।

गच्छत स्खलन क्वापि भवत्येव प्रमादत।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समाधने सुहृज्जना॥

। काश्मीर! तुझे प्रणाम—

डी० ५५/१९७ चौहट्टा, वाराणसी
७-६-६९

—रघुनाथ सिंह

कलश जल-विन्दु

प्रथम तरग

द्वितीय तरग

तृतीय तरंग

प्रथम तरंग

गोनन्द प्रथम

कल्प का आरम्भ था। छ मनवन्तर बीत चुके थे। उस पुराकाल में हिमाद्रि कुक्षि मे, जलपूर्ण सतीसर था। विश्व का सबसे विस्तृत विशाल प्राकृतिक सर था। वही वर्तमान काश्मीर उपत्यका है।

वैवस्त मनवन्तर का आरम्भ था। सतीसर के गम्भीर निर्मल जल मे, जलोद्भव असुर निवास करता था। क्रूर कर्मा थी। उसे मारना कठिन था। जल मे छिप जाता था।

देवो तथा दैत्यो के पूर्व पुरुष प्रजापति कश्यप थे। उन्होंने द्रुहिण, उपेन्द्र तथा रुद्र से प्रार्थना की, क्रूरकर्मा जलोद्भव का सहार किया जाय। प्रजापति कश्यप की प्रार्थना देवो ने स्वीकार की।

द्रुहिण, उपेन्द्र तथा रुद्र ने अन्य सुरो के साथ अभियान किया। उनके साथ सुरसेना चली। काश्मीर मण्डल के नवबन्धन क्षेत्र मे वे पहुचे। हरि, शिव तथा ब्रह्मा ने तीन भिन्न शिखरो पर आसन लगाया। वही से अविराम दृष्टि से जलपूर्ण सतीसर का अवलोकन करने लगे।

जलोद्भव का बिना जल सूखे, वध असम्भव था। बारहमूला के समीप पर्वत काटा गया। सवेग सतीसर जल बाहर निकलने लगा।

जल चला। सरिता बना। गान्धार और सिन्धु प्रदेश की यात्रा करता चला। महार्णव मे मिल गया। जहा से आया था, वही पहुच गया।

जलहीन होने पर, सतीसर की भूमि सूख गयी। जल से भरी उपत्यका, जलविहीन भूमि मे परिणत हो गई।

जलोद्भव दृष्टिगोचर हुआ। सुर एव असुर सेना मे तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध चरम सीमा पर पहुचा। विष्णु तथा शिव शिखरो से उतरे। उन्होने जलोद्भव का वध किया।

काश्मीर का त्रास समाप्त हुआ। वर्तमान काश्मीर उपत्यका वही शुष्क सतीसर है। काश्मीर मण्डल का प्राचीन नाम सतीसर है। वही सती का पवित्र स्थान है। कश्यप के प्रयास से सूखी उपत्यका भूमि मे परिणत हुई थी। अतएव कश्यप के नाम पर प्रदेश का नाम काश्मीर किया गया।

काश्मीर उपत्यका मे नील नाग का वेश्म था। उसके समीप शिव का आवास

था। देवी सती ने तपस्या की। वह पृथ्वी पर आविर्भूत होना चाहती थी। शिव के सान्निध्य की इच्छा थी।

शिव ने त्रिशूल उठाया। भूमि पर त्रिशूल-प्रहार किया। देवी सती वितस्ता-स्वरूप प्रकट हुई। शंकर ने जिस स्थान पर शूल-प्रहार किया था वह स्थान नील कुण्ड अर्थात् वेरी नाग बन गया। और देवी सती वितस्ता अर्थात् झेलम नदी हो गयी।

देवी के सरस निर्मल गुणकारी जीवनमय जल से काश्मीर उपत्यका शस्यपूर्ण हो गयी। वितस्ता जल का गौरव ऋग्वेद गान करने लगा। पुराणों ने उसे पुण्य नदी कहा। उसे गंगोपम माना। महाभारत ने उसे तीर्थ माना। उसकी वन्दना की।

काश्मीर उपत्यका में पवित्र वितस्ता मृणाल दण्ड तुल्य है। नील कुण्ड कमल पत्र तुल्य है। नील नाग का दण्ड वितस्ता हुई। नील कुण्ड छत्र हुआ। नील नाग ने उपत्यका में दण्ड एवं छत्र धारण किया। काश्मीर मण्डल का परिपालन करने लगे।

काश्मीर मण्डल विविध रत्न-भाण्डों से विभूषित था। शंख, पद्म, नागादि का कुबेरपुरी तुल्य आश्रय स्थान था। काश्मीर मण्डल की प्राकार-स्वरूप पर्वत मालाएँ, जैसे भुजा उठाये, गरुड़ द्वारा ताड़ित, शरणागत नागों की रक्षा कर रही थी।

काश्मीर के पापसूदन तीर्थ में काष्ठ स्वरूप तैरते, उमापति शिव के दर्शन एवं स्पर्श द्वारा भोग तथा मोक्ष दोनों फलों की प्राप्ति होती थी।

काश्मीर के निःसलिल गिरि पर, सन्ध्या देवी के जल धारण द्वारा, प्रत्यक्ष प्रकट होता था। काश्मीर में पुण्य का अस्तित्व एवं पाप का अभाव था। वहां के स्वयंभू की अग्नि-ज्वाला पृथ्वी से उद्भूत होकर, जैसे अपनी भुजाओं द्वारा, होताओं की हवि प्रतिग्रहण करती थी।

गंगा के श्रोत से पावन, भेद गिरि पर स्थित सरोवर में देवी हंस स्वरूप दृष्टि-गत होती थी। हर के प्रसाद स्वरूप नन्दि क्षेत्र में देवताओं द्वारा अर्पित पूजा के चन्दन विन्दु दिखाई देते थे।

उस पुराकाल में काश्मीर मण्डल शारदा पीठ संज्ञा से सुविख्यात था। शारदा क्षेत्र था। काशी, कांची, नवद्वीप एवं तक्षशिला तुल्य सरस्वती का आवास था। देवी शारदा की तीर्थयात्रा के समय, भारत के कोने-कोने से विद्यानुरागी, यात्री, कवि पूजित तरंगिणी मधुवती तथा सरस्वती दोनों के समीप पहुंच जाते थे।

काश्मीर की कण-कण भूमि पवित्र गाथाओं से उसी प्रकार गुम्फित थी, जैसे मेवाड़ का कण-कण वीर गाथाओं से। काश्मीर भूमि चक्रभृत, विजयेश, आदिकेशव

एवं ईशान द्वारा विभूषित थी। इस भूमि पर तिल मात्र भी ऐसा स्थान नहीं था, जो तीर्थों से वहिष्कृत था।

भगवान् कृष्ण ने कहा—"काश्मीर ही एक ऐसी भूमि है, जिस पर पुण्य बल द्वारा ही विजय प्राप्त की जा सकती है। अतएव वहा के निवासी परलोक से भयभीत होते हैं, न कि शस्त्रधारियो से।"

उस पुराकाल मे काश्मीर की सरिताए जल-जन्तुओ से विहीन थी। निरुपद्रव थी। उनके स्वच्छ तीर पदा पर, शीत ऋतु मे स्नान हेतु उष्ण स्नान-गृह बने थे।

भगवान भुवन भास्कर अपने श्रद्धेय पिता काश्यप के प्रति आदर प्रकट करते थे। उनके द्वारा निर्मित, काश्मीर मण्डल को कष्ट न प्राप्त हो, एतदर्थ ग्रीष्म ऋतु की गरिमा मे भी अपनी किरणा मे तीव्रता नही लाते थे।

इस ब्रह्माण्ड मे, इस त्रैलोक्य मे, रत्नभूषा भू लोक श्लाघ्य है। उस भू-लोक मे कुबेर की उत्तर दिशा श्लाघ्य है। वहा की पर्वत मालाओ मे गौरी पिता हिमाचल श्लाघ्य है, और उसमे भी हरित, तुषार मण्डित, पादपमय, पर्वतो द्वारा आवृत्त, काश्मीर मण्डल श्लाघ्य है।

उन महत्त्वशाली कवि कृतियो को सादर नमस्कार है जिनके कारण काश्मीर का पुनीत प्राचीन गौरव स्मरणीय है। उन महान् विभूतियो को नमस्कार है जिनके कारण काश्मीर ने समृद्धशाली, स्पृहणीय, पवित्र परम्परा स्थापित की है। उन राजाओ को नमस्कार है जिनकी बलवती भुजाओ की छाया मे समुद्र वेष्ठित मेदिनी वनच्छाया तुल्य निभय थी। उन महान् पुरुषो की यश गाथा को नमस्कार है जिन्हे स्मरण कर भारतीय अपने उज्ज्वल अतीत पर गर्व करेंगे।

अजनिबद्ध जिन्हे श्रद्धाजलि देते कहेगे—"देवोपम मानव! तुम्हे शत-शत नमस्कार है। तुम वन्दनीय थे। तुम पूजनीय थे। तुम्हारे अनुपम ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, धर्म, कर्म, वैभव एवं सैन्य शक्ति की सोयी कहानी जागी है जिसे सुनकर, जिसे जानकर, आत्मश्लाघी जातिया एवं देश लज्जित होगे। तुम्हारी पावन स्मृति मे, तुम्हारे पाद पद्म पर वदना के पुष्प गिरते न थकेंगे।—और भारत मे कौन ऐसा सहृदय मानव होगा, जो तुम्हारी कहानी सुनकर, तुम्हारी पुण्यस्मृति म दो बूद आसू न बहायेगा!"

उस पवित्र काश्मीर मण्डल की पाठकगण! गाथा प्रस्तुत करता हू। ओह! यह गाथा सुखान्त है। दुखान्त है। हर्षमय है। विषादमय है। रसमय है। विरस है। आशामय है। निराशामय है

यह गाथा मानव को विकास की चरम सीमा पर पहुचाती है। उसे अधोगति के निम्नतम स्तर पर गिराती है। इसमे अपूर्व त्याग है। अवाछनीय स्वार्थ है। इसमे घृणास्पद घृणा है। उदार स्नेह है। इसमे सती-साध्वी, व्यवहार-कुशल, सर्व-

त्यागमयी नारियों का वर्णन है। असती विलासवती रमणियों का चित्रण है। यह गाथा राजाओं के लिए मार्गदर्शन है। लोक के लिए रंजन है। इसमें मानव के सर्वतोमुखी गुण का वर्णन है।—और उनके अवगुणों का वेदनामय प्रसंग है।

निस्सन्देह, उदार-हृदय पाठक वृन्द ! यह भारत के लिए मध्याह्न सूर्य समान गौरवमय है। वालकों के लिए कौतूहल है। युवकों के लिए रुचिकर है। प्रौढ़ों के लिए चिन्तनीय है। वृद्धों के लिए मननीय है। विश्व के लिए अभिनव कहानी है। आइये, मित्रवर ! इस कथा का प्रारम्भ करें।

कलियुग का प्रथम चरण था। कलियुग के छः सौ तिरपन वर्ष व्यतीत हो चुके थे। उस काल में, इस भूतल पर, कौरव एवं पाण्डव अवतरित हुए थे। लौकिक काश्मीरी सम्वत् का चौवीसवां वर्ष था। उस समय धर्मराज युधिष्ठिर पृथ्वी पर शासन करते थे। मुनि अर्थात् सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर थे। वे शताब्दी मे एक वार इस नक्षत्र पर आते थे। धर्मराज युधिष्ठिर का राज्यकाल वर्तमान शक सम्वत् से दो सहस्र पांच सौ छब्बीस वर्ष पूर्व था।

काश्मीर में सुव्यवस्थित राज-व्यवस्था थी। उसका एक राजा था जिसका तुषार-मण्डित जाज्वल्यमान कैलाश हास था; जिसका दुकूल कल्लोलिनी गंगा थी। उस प्रतापी काश्मीरेन्द्र गोनन्द की काश्मीर दिशा उपासना करती थी। पृथ्वी शेपनाग के विप से भयभीत होकर, शेपनाग के शरीर का त्याग कर, गरुड़ के पवित्र रत्नों द्वारा आभूपित, उस राजा की भुजाओं की आश्रिता थी।

जरासंध मगध का सम्राट था। उसके पिता का नाम वृहद्रथ था। उसका पुत्र सहदेव था। उसकी दो कन्याएं अस्ति तथा प्राप्ति थीं। उसने अपनी दोनों कन्याओं का विवाह मथुरा के राजा कंस के साथ किया था। चेदिराज शिशुपाल उसका सर्वप्रधान सेनाध्यक्ष था। उन दिनों राजा सम्राटों को चुनते थे। जरासंध एक संघराज का सम्राट था। वह आनुवंशिक सम्राट नहीं था, निर्वाचित सम्राट था।

मधु का पुत्र लवण था। भगवान् राम के कनिष्ठ भ्राता शत्रुघ्न ने लवण को पराजित किया था। उन्होंने मथुरा नगरी की स्थापना की थी। कालान्तर में मथुरा का राजा कंस हुआ। कंस का पिता मथुरा का राजा उग्रसेन था। अपने पिता को कारावास में रखकर कंस स्वयं राजा वन गया।

कंस की वहन देवकी थी। देवकी का विवाह वसुदेव से हुआ था। भगवान कृष्ण वसुदेव तथा माता देवकी के पुत्र थे।

श्रीकृष्ण ने कंस का वध किया। जरासंध की कन्याएं अस्ति तथा प्राप्ति विधवा हो गयी। जरासंध क्रुद्ध हुआ। उसने कंस के पुत्र को शूरसेन प्रदेश का राजा

घोषित किया। राज्य के उत्तराधिकार के प्रश्न तथा दामाद के वध का प्रतिशोध लेने के लिए, जरासंध ने मथुरा पर आक्रमण की योजना बनायी।

श्रीकृष्ण के नेतृत्व में यादव मथुरा की रक्षा में तत्पर हो गये। कंस के बन्धुओं को, मित्रों को, सम्बन्धियों को, श्रीकृष्ण का यह कार्य रुचिकर नहीं लगा। राजाओं में असन्तोष बढ़ता गया। जरासंध ने भारतीय राजाओं का आवाहन किया। अठारह कुलों के राजागण, जरासंध की सहायता के लिए मथुरा ससैन्य पहुँचे।

जरासंध के रण निमन्त्रण पर, काश्मीरेन्द्र राजा गोनन्द काश्मीरी सेना के साथ, मथुरा पहुँचा। मित्र-राजाओं का एक संघटन बना। मथुरा पर घेरा डाल दिया। श्रीकृष्ण सहित यादवगण मथुरा में चारों ओर से घिर गये।

गोनन्द तथा काश्मीरी सेना मथुरा के पश्चिमी मोर्चे पर थी। पश्चिमी मोर्चे पर गोनन्द के साथ मद्रराज, कलिंगपति, बाल्हिक, करूपेश, द्रुमराज, किम्पुरुष तथा पर्वतीय राजा अनामय थे।

कालिन्दी पुलिन में काश्मीरी सेना ने जिस समय अपना शिविर स्थापित किया, उस समय यादवीय सेना का गौरव यादवीय ललनाओं के रक्त अधर पर सदा विलसती स्मित रेखाओं के साथ लुप्त हो गया। यादव वीर काश्मीरी सेनानियों की वीरता से आतंकित हो उठे। उनका साहस कच्चे धागे की तरह टूटने लगा।

तुमुल युद्ध आरम्भ हुआ। काश्मीरी एवं यादवी सेना परस्पर जूझ उठी। रणडंकों के नाद ने, गजों की चिंघाड़ ने, अश्वों की हिनहिनाहट ने, कृपाण प्रहार से निकलती चिनगारियों ने, वीरों के भैरव घोष ने, काश्मीरी सेना को रणमत्त कर दिया।

यादवी सेना पलायनोन्मुख थी। समय आ गया था, काश्मीरी सेना की विजय-पताका मथुरा पर फहरा उठती। यादव पलायित हो जाते। काश्मीरी सेना को मथुरा-विजय का गौरव प्राप्त हो जाता।

मथुरा के दक्षिणी मोर्चे पर बलभद्र थे। जरासंध पर आक्रमण किया। परन्तु सफलता न मिली। उसी समय लांगलध्वज बलभद्र ने पलायनशील यादवी सेना देखी। उन्होंने अपना अस्त्र लाङ्गल (हल) उठाया। यादवों को ललकारा।

क्रुद्ध शेषनाग की तरह शेषावतार बलराम लाङ्गलध्वज फहराते गोनन्द की ओर दौड़े। यादवों ने लाङ्गलध्वज बलराम का अद्भुत साहस देखा। शौर्य देखा। उनमें साहस लौटा। वे हलधर के पीछे हुंकारते, काश्मीरी सेना पर टूट पड़े।

श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलराम के नेतृत्व में काश्मीरी सेना पर यादव टूट पड़े। राजा गोनन्द स्वयं रणक्षेत्र में आगे बढ़ा। अपने राजा का साहस देखकर, काश्मीरी सेना अमित बल, अमित पराक्रम, युद्धोपम शौर्य से युद्ध करने लगी।

गोनन्द ने देखा, अपने सम्मुख हलायुध बलराम को। उसके कमल-लोचनों

से अग्निकण फूटने लगे। उसका शरीर क्रोधानल से जल उठा। बलराम को ललकारा। दोनों योद्धा व्रज-मण्डल की पावन भूमि पर, मथुरा के पवित्र रणस्थल में द्वन्द्व-युद्धरत हो गये।

गोनन्द एवं बलराम दोनों तुल्य बलशाली थे। दोनों में कोई श्रान्त नहीं होता था। दोनों का अद्भुत युद्ध, भीषण युद्ध, भयंकर युद्ध, तेजस्वी युद्ध देखने के लिए जैसे रणस्थल में स्थिरता आ गयी। उन महान् पराक्रमी योद्धाओं का महा संघर्ष काश्मीर और यादव दोनों सेनाएं मूकवत् देखने लगी। उन्हें घेरकर सेनाएं खड़ी हो गयी। उनका वह युद्ध अतुलनीय था। जगत ने तुल्य योद्धाओं का ऐसा घोर युद्ध कभी नहीं देखा था।

दोनों तुल्य बलशाली योद्धाओं के संघर्ष के कारण विजय सन्देहात्मक हो गयी। विजय देवी के कर-पल्लवों की वैजयन्ती, अपेक्षाकृत अधिक समय हाथ मे रहने के कारण, मुरझाने लगी।

अन्ततः युद्धभूमि मे दोनों योद्धाओं के अंग परस्पर प्रहारों के कारण आहत हो गये। उनका वर्म, उनका शरीर रक्त से भर गया।

काल ने अट्टहास किया। चण्डी उग्र हुई। रुद्र का तृतीय नेत्र खुला। हल-प्रहार द्वारा काश्मीरराज ने भूमि का आलिगन किया। यादवराज का आलिंगन किया विजय ने।

वृष्णि (यादव) सेना ने निस्सन्देह काश्मीरी सेना के भाग्य विपर्यय के कारण विजय पायी। उस सुक्षत्रिय काश्मीर राजा गोनन्द ने प्रवीर सुलभ गति प्राप्त की। मथुरा का घेरा उठ गया। जरासंध मगध लौटा।

—और इस पराजय पर टीका करते नीलमत पुराण की काश्मीरियों ने चेतावनी पायी—"राजा गोनन्द ने नील मुनि द्वारा निर्धारित कतिपय अनुशासनों का पालन नहीं किया था अतएव मथुरा में बलभद्र द्वारा पराजित हो गया। यदि काश्मीर के राजा नील द्वारा निश्चित आदर्शों का पालन करेंगे, तो उनकी अकाल मृत्यु नहीं होगी। काश्मीर मण्डल में कभी भय उत्पन्न नहीं होगा।" (श्लोक ८७५-७६)

पाद टिप्पणी : महाभारत सभापर्व के अनुसार १८ राजकुलों ने इस युद्ध में भाग लिया था। परन्तु हरिवंश पुराण में जो तालिका दी गयी है उसके अनुसार कम से कम ४० भारतीय राजाओं ने जरासंध की ओर से युद्ध किया था। श्रीकृष्ण के पक्ष से किन राजाओं ने भाग लिया था इसका उल्लेख नहीं मिलता। गोनन्द का नाम सब तालिकाओं में है।

आधार ग्रन्थ : ऋग्वेद; राज तरंगिणी—१ : ५१-६४; नीलमत पुराण—२८-२९, ३७२, ८७५, ७७८, ८७९, १३६६, १३७९; हरिवंश पुराण—२ : ३४-३५, ३६, ४१ : २८, ३८ : ४०; ३७ : ४४, महाभारत सभापर्व—१४ : ३५।

दामोदर प्रथम

(श्रीकृष्ण-दामोदर युद्ध)

गोनन्द की वीर-गति के पश्चात् काश्मीर के गौरवशाली सिंहासन पर दामोदर का राज्याभिषेक हुआ। यशस्वी श्रीमान राजा दामोदर क्षिति रक्षा में तत्पर हो गये।

यद्यपि राजा दामोदर ने काश्मीर मण्डल का पैतृक राज्य प्राप्त किया था, तथापि मथुरा में हुए पितृ-वध एवं काश्मीरी सेना की पराजय और उसकी दुःखद कहानी नहीं भूले थे। घटना का स्मरण होते ही, व्याकुल हो जाते थे। मन शान्ति दुर्लभ हो जाती थी। प्रतिहिंसाग्नि भस्मगत-वह्नि तुल्य हृदय-स्थल में स्थित हृदय को जलाती थी।

दामोदर पितृवध का प्रतिशोध लेने के लिए निरन्तर चिन्तित रहते थे। इस दृष्टि से काश्मीर की सैन्य शक्ति वृद्धि की। उसकी प्रबल वाहिनी भारतीय वाहिनियों की सैन्य-सज्जा में अग्र थी। किन्तु वह किसी राजा की ईर्ष्या की कारण नहीं थी। वह आक्रामक भावना से संघटित नहीं की गयी थी। उसका केवल एक उद्देश्य था—यादवों में गोनन्द के रक्त का बदला लेना।

वाहिनी चतुरंगिणी सैन्य बल-शैली पर गठित थी। सेना सन्तुलित थी। विज्ञान-पद्धति पर आधारित थी। भारत की सर्वश्रेष्ठ स्थल सेना थी। काश्मीरी सैनिक अपने समय के आदर्श सैनिक थे। काश्मीरी अश्वारोही, पदातिक सैनिक, सीमा के बाहर निकलते थे, घूमते थे। उन पर हाथ उठाने का किसी को साहस नहीं होता था।

जिसकी भुजाएं वृक्ष तुल्य शक्तिशाली थी, जो दर्प-ताप से गर्वित था, उस राजा दामोदर ने सुना—"सिन्धु तट पर गान्धारों ने कन्या स्वयंवर मण्डप सज्जित किया है। भारत के सभी राजा उसमें आमन्त्रित किये गये हैं। वृष्णिगण विशेष रूप से उसमें आमन्त्रित थे।"

क्रोध-जर्जरित काश्मीरेन्द्र दामोदर की भुजाएं फड़क उठी। सैन्य बल वृष्णियों से लोहा लेने के लिए उतावला हो गया। समस्त काश्मीर मण्डल में उद्वेग, संघर्ष, आक्रमण एवं शौर्य-प्रदर्शन की महान् प्रेरक शक्ति दौड़ गयी।

राजा दामोदर ने बदला लेने का यही अवसर देखा। वृष्णि सेना जैसे स्वतः मृत्यु-मुख में दौड़ती चली आ रही थी। वृष्णि सेना मथुरा से सैकड़ों कोस दूर पहुंच

चुकी थी। गान्धार पड़ोसी राष्ट्र था। इस सुअवसर को राजा दामोदर किंवा काश्मीरी वीर वृथा नहीं जाने देना चाहते थे।

अकस्मात् रणभेरी बजी। काश्मीर उपत्यका भेरी-घोष से गूंज उठी। मन्दिरों के घंटे घनघना उठे। नगाड़े गड़गड़ा उठे। शंख बज उठे। काश्मीरी ललनाओं के वक्षस्थल गर्व से फूल उठे। पतियों के प्रशस्त ललाट कुंकुम-तिलक से शोभित हो उठे। माताएं उत्फुल्ल मन पुत्रों को विजय-आशीर्वाद देने उठीं। सन्तानें पिता की रण-सज्जा देखकर प्रसन्नता से नाच उठीं।

चारों ओर से महान् काश्मीरी ध्वजीनी दौड़ती आती पुराधिष्ठान[1] में एकत्रित होने लगी। उस वाहिनी में अश्वारोही इतने अधिक थे कि पुराधिष्ठान जनाकीर्ण की अपेक्षा अश्वाकीर्ण हो गया था। रथों की पताकाएं फहराती राजपथ को सुसज्जित करती थीं। मार्ग पर चलना कठिन था। अस्त्र-शस्त्रों की झंकार से मन्दिरों की झांझ-ध्वनि मन्द पड़ गयी।

सिन्धु तट से, स्वयंवर स्थान से, वृष्णि बहुत दूर नहीं रह गये थे। गान्धार बालाएं मंगल आरती लिए निकल पड़ीं—यादव नेता श्रीकृष्ण का स्वागत करने। रमणियों के कण्ठ आतुर थे, मंगल गीत गाने के लिए। चारण एवं भाटों की वाणी उत्सुक थी, गौरवपूर्ण गान्धार राज-वंशावली उच्चारण के लिए। और नर-नारी उत्सुक थे, यादवेन्द्र श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए।

गान्धार की वीथियां सुरुचिपूर्ण ढंग से सजायी गयी थीं। हर्म्यों पर, वेश्म पर, आम्र पल्लव लगे थे। उज्ज्वल भित्तियों पर चित्रकारी की गयी थी। उन पर विविध रंगों की पताकाएं फहरा रही थीं। नगर के भवन धवल थे। स्वच्छ थे। लिपे-पुते थे। जड़ अट्टालिकाओं में जीवन आ गया था। राजपथ तथा वीथियां जल-सिक्त थीं।

पौरगण सिन्धु जल प्रच्छालित धवल वस्त्र धारण किये थे। शिशु सज्जित थे। उनके गलों में स्वर्ण मालाएं थीं। बालिकाओं की वेणियां सुवर्ण सूत्रों से वेष्टित थीं। रमणियों की कंचुकियों के बाहु तथा वक्षस्थल प्रदेश स्वर्ण सूत्रों द्वारा, पुष्प तथा चित्र से शोभित थे। उनके केशों में लगी उज्ज्वल मल्लिका उनके गौर वर्ण से होड़ ले रही थी। उनका स्वस्थ, सुडौल, आर्यजातीय शरीर-गठन, मानवीय सौन्दर्य की पराकाष्ठा को पहुंच चुका था।

नागरिकों के शिरस्त्राण के पुच्छल्ले पश्चिम वायु में फरफराते, पथों पर, वीथियों में उड़ती पताकाओं का भ्रम उत्पन्न करते थे। तोरण द्वार मंगल घट एवं ध्वजा से सज्जित थे। राजपथ के पार्श्व में स्थित पादपावली में रंग-बिरंगे वस्त्र झूल रहे थे। उन पर लगी झण्डियां मन्द गति से पल्लवों के साथ मिलती,

---

१. पुराधिष्ठान=पंडरेथन स्थान है।

जैसे मधुर गीत गा रही थीं। विशिखा पर स्थित मन्दिरो के स्वर्ण कलश चमक रहे थे। उनमे लगी छोटी-छोटी घंटिया पवन गति से बज उठती थीं। उन पर नवीन रक्त-ध्वजा चढा दी गयी थी। मन्दिरो के द्वारो पर बने जय-विजय की मूर्ति के कण्ठो मे कमल मालाए शोभित थी। मूर्धा पर स्वर्ण मुकुट था। कटि प्रदेश मे धौत धोती थी। स्कन्ध प्रदेश पर उत्तरीय था।

मन्दिरों के गर्भ-गृहो मे पंक्तिबद्ध घृत दीप प्रदीप्त थे। धूप गन्ध मे पवित्रता मुखरित थी। कही-कहीं वेदियों पर अग्नि मे हवि दी गयी आहुति मन्द-मन्द जल रही थी। कहीं कही श्वेत यज्ञोपवीत एवं पीताम्बरधारी ब्राह्मण मण्डली, गलो मे पुष्पमाला, ललाट पर चन्दन तथा बद्ध शिखा वेद-घोष मे झूम रही थी। कहीं-कहीं किसी मन्दिर के प्रागण मे कस्तूरी-केसर तिलक से विभूषित व्यास की कथा चल रही थी। कहीं-कही मन्दिर के आलिन्द मे शिखा-सूत्रधारी विद्यार्थी विद्याध्ययन मे रत थे।

सिन्धु तट पाच सहस्र वर्ष पूर्व वर्तमान काशी की स्मृति दिलाता था। नदी तट पर स्वर्ण कलशमय मन्दिर शृखला थी। उपकूल मे बैठी जनता सन्ध्या-वन्दन करती थी। सायंकाल नदी की धारा दीपमालिका से जगमगा उठती थी। प्रत्येक दीप अपने दीप-दानकर्ता की जैसे पुण्य कथा कहता 'महार्णव से मिलने, सिन्धु प्रवाह के माध्यम से चला जा रहा था। वायुमण्डल वसंत-पूजा से पवित्र था। वैदिक घोष से गुंजित था। मन्दिरा के घटिका यन्त्र समय का ज्ञान कराते थे। आरती मे प्रात, मध्याह्न एवं सायं बजने पणव, धौसे, घंटे, शख एवं झाझ की ध्वनि से नगर गूंजता था। रात्रि मे मन्दिरो मे यज्ञ-वेदियो के सम्मुख वीणा एवं मृदंग पर शास्त्रीय संगीत मुखरित होता था।

रथ्या पर युवक बासुरी, मजीरा तथा खजरी पर गीत गाते थे। सिन्धु स्नान करने वालाए गाती चलती थी। वे गाती मन्दिरो मे प्रवेश करती थी।

जब वे बहुरंगी साडियो में सजी गर्भगृह मे बैठती थीं तो प्रतीत होता था कि बहुरंगी पुष्प-क्यारियां खिल उठी हैं। वे ढोल और मजीरा पर गाती थी तो प्रतीत होता था पवित्रता मूर्तमान उल्लसित होकर सभामण्डप मे उतर आयी है।

वह स्थान पश्चिम एवं पूर्व की सभ्यता का मिलन-स्थल था। वैदिक सभ्यता का केन्द्र था। भारतीय संस्कृति का हृदय था। वह स्थान था, आर्य जाति का गौरव—और अब ? पाठक वृन्द ! अब कुछ केवल अतीत की स्मृति रह गयी है। सब ध्वस्त हो गया है।

वह गौरवमय अतीत था। आर्यों का अतीत था। सहिष्णुता का अतीत था। भावनाओं का अतीत था। अध्यात्म का अतीत था। जीवन का अतीत था। वह था मौलिक स्थापत्य का अतीत। वह था सजीव चित्रकला का अतीत। वह था ललित कलाओं का अतीत। वह था प्राच्य एवं प्रतीच्य कलाओं का संगम। दोनों

एक-दूसरे को प्रभावित करती थीं। उनसे निकली थी, गान्धार कला, गान्धार राग, गान्धार मूर्तिकला, गान्धार शैली, गान्धार नृत्य एवं गान।

महान् काश्मीरी वाहिनी पंचाल धारा पर्वतमाला पार करती, वृष्णि सेना के समीप पहुंच गयी। यादवी सेना का स्वागत किया काश्मीरी अश्वारोहियों ने। उनके स्वागत के लिए आतुर थी युद्धोन्मुख काश्मीरी वाहिनी। गान्धार पहुंचने के पूर्व ही यादवों का मार्गावरोध कर दिया काश्मीर की प्रबल सेना ने।

अश्वों के पाद से उड़ती धूल के कारण आकाश जैसे मेघाच्छन्न हो गया था। प्रतीत होता था भूमध्य सागर से उड़ता श्याम मेघ अकाल वृष्टि के लिए दौड़ पड़ा था। मालूम होता था, पश्चिम से प्रचण्ड आंधी उठती चली आ रही थी। सबको जैसे उड़ाने के लिए चिघाड़ रही थी।

रथों की भयंकर घरघराहट से मेघ-गर्जन का भ्रम होता था। काले गज समूह की विशाल पंक्ति से पृथ्वी पर श्याम मेघ अवतरण का सहज विश्वास होता था। अस्त्र-शस्त्र की चमक से प्रतीत होता था जैसे काली घटा में बिजली चमक रही थी। दक्षिण से आगे बढ़ती वृष्णि सेना ठिठक गयी। उसने समझा उत्तर दिशा हिमालय से जैसे भूतेश की सेना उन्हें आत्मसात् करने के लिए आ रही थी।

भगवान कृष्ण ने असमय आसन्न युद्ध देखकर, यादवी सेना को सावधान किया। वह स्वयं आगे बढ़े। उन्होंने देखा—झूमते युद्धक हाथी, भयंकर उड़ती धूल और उनमें कवचधारी वीर। कर्मवेष्ठित अश्वारोही पंक्ति देखी। शिरस्त्राणों में पुष्प लगाये पदादिकों को देखा। विभिन्न पताकाएं उड़ाते रथ-समूह को देखा।

कृष्ण को वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ। स्थिति की गम्भीरता को अनुभव किया। यादवी सेना को रुकने का संकेत किया। वह स्वयं अश्वारूढ़ थे। अपने अश्व पर उठते, काश्मीरी सेना को एक बार पुनः देखा। वह महासागर की उत्ताल तरंगों की तरह गरजती, बढ़ रही थी। समुद्र में मस्तूल पर ध्वज उड़ाते पोत की तरह गौरव से लहराते सैन्य-ध्वज को देखा। धौंसों की ध्वनि सुनी। भेरी-घोष सुना। भयंकर कोलाहल सुना।

भगवान के आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। व्यूहबद्ध काश्मीरी सेना चल रही थी। काश्मीर का सैनिक ध्वज वीर सैनिकों से रक्षित लहराता बढ़ रहा था। उसकी छाया में बढ़ रहे थे, स्वयं काश्मीरेन्द्र दामोदर।

श्रीकृष्ण की उर्वरा बुद्धि ने तुरन्त ज्ञान कर लिया। गोनन्द के रक्त का प्रतिशोध लेने काश्मीर सेना आयी थी। उन्होंने अविलम्ब यादवों को आदेश दिया, व्यूहबद्ध हो जाओ। युद्ध आसन्न है।'

यादवी सेना के व्यूहबद्ध होते ही भगवान ने पांचजन्य घोष किया। भगवान का शंख बजते ही यादवी सेना के सेनानियों ने अनेक शंखों को बजाया। काश्मीरी

सेना ने यादवी सेना के शंख घोष का उत्तर, भेरी घोष, नगाडा घोष एवं शंख घोष से दिया। ललकार से गगन कम्पित कर दिया। दुर्बल हृदय कम्पित हो गये। उन्होंने आसन्न मृत्यु देखी। सबल हृदय उमगित हो गये। उन्होंने अस्त्र-शस्त्र निकाल लिए। मरने-मारने के लिए सन्नद्ध हो गये।

स्वयंवर में एकत्रित राजा चकित हुए। किसी ने इस युद्ध की, इस घटना की कल्पना तक नहीं की थी। किसी ने इस संघर्ष स्थिति की कल्पना नहीं की थी। सबने समझा था यादव एवं वृष्णि सेना सहित श्रीकृष्ण तथा राजा दामोदर स्वयंवर में भाग लेने आ रहे थे। गान्धार नरेश व्याकुल हो गये। उत्साहमय, मंगलमय, स्वयंवर परिणत हो गया भयंकर युद्ध में।

गान्धार कन्या की स्वयंवर माला मुरझाने लगी। स्वयंवर-इच्छुक गान्धार कन्या उदास होने लगी। स्वर्ग कन्याएं प्रसन्न थी समरांगण में वीर गति प्राप्त करने वाले काश्मीरी वीरो का वरण करने के लिए। वरण की उत्सुकता से देव बालाएं प्रसन्न थीं। युद्ध-स्थल बन गया स्वर्ग कन्याओं का स्वयंवर स्थल। गान्धार राज का स्वयंवर स्थल हो गया उदास उजडा जैसा।

काश्मीरियों की चतुरंगिणी सेना थी। उसमें गज थे। रथ थे। अश्वारोही थे। पदादिक थे। चतुरंगिणी सेना के प्रहार से यादव वीर त्रस्त हो गये। काश्मीरी सैनिक राजा गोनन्द के वध का बदला अधिक से अधिक यादव सेना का वध करके लेना चाहते थे। प्रत्येक काश्मीरी सैनिक इस बात की स्पर्धा कर बैठा था, कौन कितने अधिक वृष्णि सैनिकों का संहार करता है। उनमें विश्वास बैठ गया था। एक-एक यादव के संहार से गोनन्द की आत्मा तृप्त होगी। वे स्वर्ग में बैठे, अपने बन्धु-बान्धव की वीरता पर प्रसन्न होंगे। इस भावना से ओतप्रोत प्रतिहिंसा की भावना से उत्तेजित काश्मीरी सैनिक प्राणोत्सर्ग पवित्र कर्तव्य मान बैठे थे। वे भगवान श्रीकृष्ण की हत्या कर, गोनन्द की हत्या का बदला चुकाना चाहते थे।

श्रीकृष्ण ने देखा—अपनी सेना का बुरी तरह होना संहार। उन्हें आशा नहीं थी काश्मीरी मथुरा के पश्चात् इतने शीघ्र पुनः तैयारी कर लेंगे। वे यादव सेना के पराजय की कल्पना करने लगे। पराजय समीप दिखायी पड़ती थी। श्रीकृष्ण ने चक्र उठाया।

वासुदेव का स्वयंवर रणांगण में परिणत हो गया। अपनी सेना का भयंकर संहार, रक्त से पंकिल भूमि में गिरे यादव वीरों को अन्तिम आह लेते देखकर, कृष्ण को वह रणस्थल जीवित श्मशान लगने लगा।

श्रीकृष्ण ने अपनी सेना को प्रोत्साहित किया। चक्रभृत कृष्ण, चक्र लेकर, स्वयं अग्रसर हुए। अपने नेता को अग्रसर होता देख, यादवों में पुनः उत्साह लौटा। मृत्यु की चिन्ता त्याग दी। भगवान के पीछे काश्मीरी सेना से निर्णायक युद्ध करने के लिए प्राणों पर खेल गये।

काश्मीरी सेना यादवों के इस लौटे उत्साह से चकित नहीं हुई। उसने यादवों के आक्रमण को बेकार कर दिया। काश्मीरेन्द्र दामोदर ने चक्रधर को चक्र धारण किये देखा। वह पिता का प्रतिशोध कृष्ण-वध से कर लेना चाहते थे। दामोदर भयंकर क्रोधानल में रक्तवर्ण हो गया था। उसने अश्व को कृष्ण की ओर सवेग दौड़ाया।

श्रीकृष्ण ने अपने सम्मुख दामोदर-स्वरूप मृत्युदूत देखा। वे विचलित नहीं हुए। उन्होंने चक्र साधा। दामोदर के समीप पहुंचने के पहले ही उन्होंने दामोदर पर चक्र छोड़ा।

चक्रवर्ती राजा दामोदर ने, शत्रुओं की चक्र पंक्ति द्वारा परावृत, चक्रधर के चक्र धारा पथ गति द्वारा, समरांगण में प्राण विसर्जन किया। उसकी उज्ज्वल कृपाण हाथ में रह गयी। वह कृष्ण के समीप नहीं पहुंच सका। उसने प्रबल वेग से अश्व को एड़ लगाई। पितृ-वध का बदला लेने के घोर उत्साह से नाद किया। परन्तु दूर से आते चक्र से उसका मस्तक छिन्न होकर भूमि पर गिर पड़ा।

काश्मीरी सेना ने राजा के वीरगति प्राप्त करते ही तत्कालीन प्रथा के अनुसार युद्ध रोक दिया। विजय ने पुनः यादव वीरों के कण्ठ में जयमाल डाल दी। स्वयंवर-उत्सुक गान्धार कन्या सोत्साह स्वयंवर करने चली। और स्वर्ग में देव कन्याएं दामोदर का स्वयंवर करने के लिए परस्पर स्पर्धा करने लगी।

आधार ग्रन्थ : राज तरंगिणी : १ : ६५-७० ; नीलमत पुराण : श्लोक ३-१०।

यशोवती

काश्मीर की सेना रण-अभियान मे केवल पुरुषो के साथ नही जाती थी। काश्मीरी स्त्रियां रण-क्षेत्र मे जाया करती थी। वे पति के साथ युद्ध मे आवश्यकता पड़ने पर भाग लेती थी।

राजा दामोदर की देवी यशोवती पत्नी थी। पति के वीरगति प्राप्त होने पर, वे विकल हुईं। वे उस समय गर्भवती थीं। उन दिनो युद्ध प्रणाली वर्तमान युग की बर्बर-पद्धति पर आधारित नही थी। निर्दोषो की हत्या नही की जाती थी। आज गोले-गोली उन्हें भी मारते हैं जो निरपेक्ष रहते हैं।

युद्ध-समाप्ति के पश्चात शत्रुता का अन्त भारतीय मानते थे। शत्रु सेना के सैनिक बन्दी नही बनाये जाते थे। युद्ध वन्दियो को, उन्हे कारागार अथवा कन्सन्ट्रेशन शिविरो में रखने की, व्यवस्था नहीं थी। भारतीय धर्म युद्ध मे विश्वास करते थे। युद्ध की स्वत एक आचार संहिता थी।

दामोदर की वीरगति के पश्चात भगवान कृष्ण ने पता लगाया। उन्हे मालूम हुआ, देवी यशोवती युद्ध-क्षेत्र मे थी। काश्मीर शिविर मे थी।

भगवान ने देवी यशोवती को आमन्त्रित किया। बन्दी तुल्य नही, एक पराजित देश की रानी की तरह नही, अपितु एक गौरवशाली देश तथा गौरवशाली राजा की पत्नी के रूप मे, राजकीय सम्मान के साथ भगवान के सम्मुख उपस्थित हुईं। लोगो को आश्चर्य हुआ। उन दिनो विधवा की स्थिति आज के ही समान दयनीय थी। उन्हे राज्य तथा पति के उत्तराधिकार का अधिकार नही था। सम्पत्ति पति की सन्तानो को जाती थी।

भगवान के सम्मुख देवी उपस्थित हुईं। भगवान ने सादर देवी का स्वागत किया। उनके प्रति सहानुभूति दिखायी। उन्हे सन्ताप दिया। ढाढस दिया। युद्ध-क्षेत्र मे वीरगति प्राप्त दामोदर की वीरता की प्रशंसा की।

देवी भगवान के सम्मुख शान्त खडी थी। नीरव थी। भगवान ने पूछा—
"देवी! आप गर्भवती हैं?"

यशोवती ने मस्तक नत कर लिया।

भगवान ने एक बार देवी को ऊपर से नीचे तक देखा। उन्हें देवी के रूप एवं लक्षणो से लक्षित हो गया, देवी की कुक्षि मे गर्भ था। भगवान कुछ समय तक नीरव खडे थे। अनन्तर नील गगन की ओर देखा। उत्तर काश्मीर दिशा की ओर

देखा। पर्वत-मालाओं को देखा जिसके पृष्ठ भाग में पवित्र काश्मीर मण्डल था।

अकस्मात् श्रीकृष्ण के पतले अधरों पर स्मृत रेखा फैली। उनमें सरलता थी किन्तु उस सरलता में दृढ़ता थी। उनके नेत्र स्थिर होने लगे। उन्होंने समीपवर्ती दौवारिक को आदेश किया :

"दौवारिक!"

"भगवन्!" दौवारिक ने सादर अभिनन्दन किया।

"विप्रों को आमन्त्रित करो।"

दौवारिक चकित हुआ। यशोवती कुछ समझ न सकी। भगवान ने आदेश दिया : "दौवारिक! जाओ, शीघ्रता करो।"

दौवारिक अभिदान कर चला गया। भगवान ने देवी यशोवती से सस्नेह कहा : "देवी! काश्मीर का सिंहासन सूना नहीं रह सकता।"

देवी की प्रश्नपूर्ण दृष्टि भगवान की ओर उठी। काश्मीरी मन्त्रि-परिषद शंकित हुई। उन्हें भय हुआ—भगवान काश्मीर को अपने राज्य में सम्मिलित करते हैं, उपनिवेश बनाते हैं अथवा कोई राजा वहां नियुक्त करते हैं? काश्मीर का भविष्य अधर में झूल रहा था। वे चिन्तित हुए। उदास हो गये। किन्तु रानी शंकित नहीं थी। संयत थी। शान्त थी। किसी भी घटना का वीर नारी तुल्य सामना करने के लिए सन्नद्ध थी। सभी मन्त्रियों की दृष्टि एक-दूसरे से मिलती रानी पर स्थिर हो गयी। राजा दामोदर की मृत्यु के पश्चात् मन्त्रि-परिषद ही काश्मीर की सर्वेसर्वा थी।

श्रीकृष्ण ने द्वन्द्व में फंसे मन्त्रि-परिषद की ओर देखा। रानी की ओर देखा। उसकी चिन्तित मुद्रा की ओर देखा। "प्रतिहारी! मन्त्रि-परिषद आमन्त्रित करो।" भगवान ने आदेश दिया।

काश्मीरी मन्त्रि-परिषद की शंका और बढ़ी। यादव मन्त्रि-परिषद न जाने क्या करे। नत मस्तक यथास्थान बैठे रहे। प्रतिहारी ने अभिवादन किया। मन्त्रि-परिषद बुलाने चला गया। भगवान की मुद्रा विचारशील हो गयी।

यादव मन्त्रि-परिषद श्रीकृष्ण के सम्मुख समवेत थी। मन्त्रिगण गम्भीर थे। वह किसी निश्चय पर पहुंच गये थे। निश्चय पर पहुंचने की जो नैसर्गिक प्रसन्नता होती है, वही उनकी मुद्रा से परिलक्षित हो रही थी। श्रीकृष्ण ने सस्मित प्रश्न किया—

"आप लोग किसी निश्चय पर पहुंचे?"

"भगवन्! वे पराजित हैं।"

"यह तो स्पष्ट है।"

"आक्रामक को दण्ड मिलना चाहिए।"

"हा !" भगवान के मन मे बात बैठी नही।

"दण्डनीति !"

"नही।"

"नीति यही कहती है।"

"सब स्थान पर एक ही नीति नही चलती।"

परिषद चकित हुई।

"तो ?" भगवान ने प्रश्न किया।

"राजदण्ड।"

"काश्मीर और राजदण्ड ?" भगवान ने हँसकर उत्तर दिया।

"कारण ?" परिषद बोली।

"काश्मीर पवित्र भूमि है।"

"किन्तु आक्रामक सर्वदा आक्रामक है। वस्तुस्थिति इससे बदलती नही।"

"काश्मीर देवभूमि है।"

"भगवन् !"

"आप लोगो को पुराण का शब्द स्मरण है ?"

"पुराण ?" मन्त्रिपरिषद चकित हुई।

"हा।"

"भगवन् !"

"पुराण का वचन है

काश्मीरा पार्वती तत्र राजा ज्ञेय शिवाशज ।
नाऽवज्ञेय स दुष्टोऽपि विदुषा भूतिमिच्छिता ॥"

भगवान मुसकराये, मन्त्रि-परिषद की प्रतिक्रिया जानने के लिये उनकी तरफ देखने लगे।

परिषद् विचारशील हुई।

"पुराण वचन की कैसे अवहेलना की जा सकती है। काश्मीर की भूमि पार्वती स्वरूप है। वहा का राजा शिव का अश है। विदुषी जनो के लिए वह दुष्ट होन पर भी अवज्ञा का पात्र नही है।"

"आपका अभिप्राय, यादवेन्द्र ?" परिषद ने प्रश्न किया।

"काश्मीर राज्य काश्मीरियो का ही रहेगा।"

"यह नहीं होगा।" सचिवगण स्पृहणीयता से भुनभुना उठे।

"मैंने निश्चय कर लिया है।"

"मधुसूदन !" परिषद ने कुछ कहने का प्रयास किया।

"काश्मीर राज्य पर काश्मीर का उत्तराधिकारी शासन करेगा।"

"कोई उत्तराधिकारी नहीं है।"

"है।"

"कौन ?"

"दामोदर का गर्भस्थ शिशु।"

"यह कैसे होगा ? कौन जानता है गर्भ में क्या होगा ?"

"मैं जानता हूं।"

परिषद मौन हो गयी।

"यशोवती के गर्भ में शिशु है। मैं अभिषेक करूंगा।"

"किसका ?"

"यशोवती का।"

"वह विधवा है।"

"इसमें क्या ?"

"वह स्त्री है।"

"कोई अन्तर नहीं पड़ता।"

"यह अधर्म है।"

"नहीं, धर्म है।"

"क्यों ?" क्रुद्ध सचिवगण बोले।

"मैं उसी विधवा का अभिषेक करूंगा।"

"भगवन् ?"

"दौवारिक !" भगवान ने आदेश दिया।

"यावदपते !" दौवारिक ने सादर वन्दना की।

"द्विजों को बुलाओ।"

सचिवगण भुनभुनाने लगे। उन्हें बात रुचिकर नहीं लगी। किन्तु वे भगवान के आदेश को वृथा करने का साहस नहीं कर सके। भगवान ने कहा—

"सचिव प्रवर ! काश्मीर पर पुण्य बल द्वारा ही विजय प्राप्त की जा सकती है।"

"क्यों राजेन्द्र ?"

"वहां के निवासी परलोक से भयभीत होते हैं। शस्त्र-बल से, सैनिक शक्तियों से नहीं डरते।"

"तो ?"

"उन पर बल से, शक्ति से, शासन नहीं किया जा सकता। शक्ति से उन पर राज्य नहीं किया जा सकता।"

भगवान की गम्भीर किन्तु निश्चयात्मक वाणी गूंज उठी।

मन्त्री परिषद उदास हो गई। सचिवगण भुनभुनाने लगे।

"द्विजगण !"

श्रीकृष्ण ने द्विजो को सम्बोधन किया।

"नृपेन्द्र ! आशीर्वाद।"

ब्राह्मणों ने आशीर्वाद देकर, स्थान ग्रहण किया। श्रीकृष्ण ने सादर निवेदन किया "काश्मीर के राज-सिंहासन पर, देवी यशोवती का अभिषेक किया जाय।"

"यह कैसे होगा ?"

"क्यो ?"

"वह विधवा है।"

"किन्तु प्राणी है।"

"स्त्री है "

"वह मानव है।"

"यह परम्परा-विरुद्ध है।"

"द्विजवर ! आज से नवीन परम्परा चलेगी।"

"नवीन ?"

"हा।"

"क्या परम्परा होगी, यादवेन्द्र ?"

"आज से विधवा को भी सम्पत्ति का अधिकार होगा।"

"यह नीतिसम्मत नही है।"

"मनुष्यो की दृष्टि स्त्रियो को निगौरव क्यो समझती है,!"

"भगवन् !"

"उन्हें भोग्य पदार्थ क्यो समझती है।"

"तो ?"

"विप्रगण ! वह माता भी है। बहन भी है। कन्या भी है। देवी भी है।'

"इसका अर्थ ?"

"वह राजमाता है।"

"राजमाता ?"

"हा, वह प्रजा की माता है।"

"यह नयी परपरा होगी।"

"होनी ही चाहिए।"

"नयी नीति है।"

"यही आज से नीति होगी।"

"किन्तु धर्म ?"

"यह धर्म सम्मत होगा। स्त्री का भी अधिकार है।"

"भगवन् !"

"विप्रगण ! वह राजमाता है। माता सर्वदा शुभ होती है। वैधव्य मातृत्व का हरण नही करता। स्नेह का हरण नही करता। उदात्त भावनाओं का हरण नही करता। वह मानव को अमानव नही बनाता।"

"मधुसूदन !"

"द्विजगण ! काश्मीर का शासन विधवा नही राजमाता करेगी। यदि पुरुष सिंहासन पर बैठ सकता है, तो क्या स्त्रियां उससे वंचित रखी जायेंगी ?"

"स्त्री का अधिकार···?"

"स्त्री होना कोई अपराध नही है। स्त्री होने के कारण कोई अधिकारों से वंचित नही हो जाता।"

विप्र-मण्डली चुप हो गयी।

"देवी !" भगवान ने यशोवती को सम्बोधित किया।

यशोवती ने भगवान को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया।

"आपका अभिषेक होगा।"

"मेरा ?" यशोवती चकित हुई।

"हां।"

"मैं स्त्री हूं।"

देवी के नेत्रों में आंसू आ गये।

"राजमाते ! तुम्हारी मन्त्रि-परिषद कहां है ?"

"यही है, मधुसूदन !"

यशोवती ने विनम्रतापूर्वक भगवान को अंजलिबद्ध उत्तर देते हुए कहा।

"उन्हें बुलाइये।"

देवी के विस्मित हर्ष समन्वित पद उठे।

"मन्त्रिगण !" भगवान ने काश्मीरी सचिवों को सम्बोधित किया।

"आज्ञा, यादवेन्द्र !"

"देवी यशोवती का अभिषेक काश्मीर के सिंहासन पर होगा।"

"भगवन् !"

"आप लोग देवी की अनुमति से राज्य-शासन चलायेंगे।"

"भगवन् !"

"गर्भस्थ शिशु राज्य का राजा है।"

"किन्तु···गर्भ ?"

"गर्भ में पुत्र है। आप लोग विश्वास रखिये।"

काश्मीरी मन्त्रि-परिषद् ने नत मस्तक आभार प्रकट किया।

"देवी! काश्मीर-राज्य, आपके पति का राज्य, आपको, आपके पुत्र को समर्पित करता हूं।"

काश्मीरी मन्त्रि-परिषद् और रानी यशोवती ने आश्चर्यमिश्रित श्रद्धा-भक्ति से भगवान का शिरसा नमन किया।

मंगल वाद्य बज रहे थे। अभिषेक की सामग्री एकत्रित थी। विप्रगण मंगल-पाठ कर रहे थे। यादव मन्त्रि-परिषद उदास थी। उसे जो कुछ हो रहा था पसन्द नहीं था।

भगवान ने संकेत किया। द्विजों ने शंख-ध्वनि के साथ, तूर्य-ध्वनि के साथ, मंगल-गान के साथ देवी यशोवती का अभिषेक काश्मीर के राज्य सिंहासन पर कर दिया।

भारत के विधि संहिता में एक नवीन परंपरा स्थापित हुई—स्त्रियों के अधिकार का, उनके सम्मान का। और प्राप्त हुआ उन्हें राजमाता कहलाने का गौरव।

आधार ग्रन्थ राज तरंगिणी १ ७०-७३, ८ ३४०८, नीलमत पुराण ६,२३।

गोनन्द द्वितीय

उस दग्ध वंश वृक्ष में, अंकुर तुल्य देवी यशोवती ने, समय पर दिव्य लक्षणों युक्त पुत्र प्रसव किया। भगवान श्रीकृष्ण की वाणी सत्य हुई।

पुत्र उत्पन्न होते ही धर्मतः रानी यशोवती की राजसत्ता समाप्त हो गयी। नवजात शिशु राज्य का उत्तराधिकारी था। वही विधिपूर्वक राजा था।

देवी यशोवती ने राज्य-त्याग का निश्चय किया। काश्मीर के द्विजों ने नवजात शिशु का जातक कर्म किया। अन्य सम्बन्धित संस्कार किए।

शिशु का राज्य सिंहासन पर राज्याभिषेक विप्रों ने पूरे धार्मिक एवं राज-नैतिक संस्कार से विधिवत् किया। उस बाल भूपति ने राजश्री के साथ ही साथ, समय पर अपने पितामह गोनन्द का नाम भी प्राप्त किया। काश्मीर इतिहास में वह बालक राजा गोनन्द द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

यशोवती बालक राजा की अभिभाविका थी। राजमाता थीं। राज्य-कार्य मन्त्रि-परिषद के साथ देखने लगी। बालक राजा के वार्धक्य एवं परिचर्या के लिए दो धात्रियां सन्नद्ध रहती थीं। एक पयः प्रस्रवणी धात्री थी। दूसरी थी सर्व संयत प्रसूता पृथ्वी।

उस बालक के अधरों पर अकारण स्मित रेखा देखकर, मंत्रीगण उसकी प्रसन्नता को सफल देखने की अभिलाषा से पार्षदों को पुरस्कार दे दिया करते थे।

अबोध शिशु की वाणी का आशय एवं आदेश समझने तथा पालन करने में असमर्थता का अनुभव कर, वे मंत्रीगण अपने को स्वयं अपराधी समझते थे।

पिता के सिंहासन पर स्थित बालक का पद पादपीठ पर छोटा होने के कारण नहीं पहुंच पाता था। अतएव स्पर्श-सुख का अभिलाषी पादपीठ निराश हो जाता था।

चामर मरुत के द्वारा बालक के काक पक्ष उल्लोलित हो जाते थे। उसे नृपासन पर बैठाकर, मंत्रीगण विवादों को सुनते थे। धर्म संशयों का सविधि निर्णय करते थे। रानी यशोवती बालक के वार्धक्य में अपने पुण्य के वार्धक्य का अनुभव करती थी।

उसी समय महाभारत का युद्ध आरम्भ हो गया। कौरव एवं पाण्डवों दोनों पक्षों ने राजा को अबोध जानकर भारत-युद्ध में आमंत्रित नहीं किया। वीर काश्मीर सेना युद्ध-उत्सुक होने पर भी राजा की अबोधता के कारण महाभारत

युद्ध मे अपना शौर्य-प्रदर्शन नही कर सकी। यही कारण है महाभारत मे भारत के सभी राजा तथा उनकी सेनाओ ने भाग लिया था। केवल काश्मीर राजा तथा उनकी काश्मीर सेना निरपेक्ष युद्ध से दूर रही।

आधार ग्रन्थ राज तरगिणी, तरग ३ ७४-८२, नीलमत पुराण।

लव, कुश, खगेन्द्र, सुरेन्द्र गोधर, सुवर्ण, जनक, शचीनर

गोनन्द द्वितीय के पश्चात् काश्मीर के पैंतीस महीपालों के नाम तथा कर्म, परम्परागत लेखादि नष्ट हो जाने के कारण, विस्मृत सागर में लुप्त हो चुके हैं।

अनन्तर जयश्री का प्रिय पात्र उल्लोलित दुकूलधारी, भूमिभूषण, लव काश्मीर का राजा हुआ। उसकी वीर सेना के निनाद ने विश्व की निद्रा तिरोहित कर दी थी। केवल काश्मीरी सेना के नाद के कारण शत्रुगण लम्बी नींद में सो गये थे।

उस राजा ने पाषाण वेश्म बनवाकर लोलोर[1] नगर का निर्माण कराया। लेदरी[2] स्थित अग्रहार लेवार[3] द्विज परिषद को दान देकर महाभुज अनिन्द्य उस शौर्यशाली राजा ने स्वर्गारोहण किया।

उसके पश्चात उसका पुत्र कुशेशयाक्ष प्रताप कुशल पुत्र कुश राजा हुआ। उसने कुरुहार[4] अग्रहार दान किया। वह काश्मीर मण्डल का यशस्वी राजा था।

कुश के पश्चात, उसका पुत्र रिपुराग कुलान्तक, पार्थिवेन्द्र श्रीमान खगेन्द्र ने काश्मीर राज सिंहासन की शोभा-वृद्धि की। वह शौर्यशाली था। जन नेता था। खोनमुष[5] तथा खागी[6] अग्रहारों का कर्त्ता था। शिव के हास तुल्य उज्ज्वल उसने अपने शुभ कर्मों से स्वर्गलोक क्रय कर उसमें निवास किया।

उसके पश्चात, उसका पुत्र सुरेन्द्र राजा हुआ। वह पापों से दूर था। उसमें असीमित महानता थी। उसके कार्यों से जगत आश्चर्य-चकित था। इन्द्र भी सुरेन्द्र कहे जाते हैं। किन्तु इस काश्मीर राजा सुरेन्द्र से इन्द्र की तुलना नही की जा सकती थी। इन्द्र अर्थात् सुरेन्द्र शतमन्यु अर्थात् शत क्रोधी थे। और राजा सुरेन्द्र

---

१. लोलोर=इस स्थान का निश्चित पता अभी तक नहीं लगा है।

२. लेदरी=वर्तमान लिदर स्थान है।

३. लेवार=लिदर नदी के दक्षिण तट पर दक्षिणपुर परगना में लिव्र स्थान है।

४. कुरुहार=वर्तमान कुलर स्थान है।

५. खोनमुष=वर्तमान खुनमोह स्थान पामपुर से तीन मील दूर स्थित है। वह कवि बिल्हण का जन्मस्थान है।

६. खागी=वर्तमान खग गांव बीरु परगना में है।

शान्त मन्यु अर्थात् शान्त क्रोध थे। यह राजा सुरेन्द्र गोत्र अर्थात पर्वत रक्षक था और सुरेन्द्र इन्द्र गोत्र भिद अर्थात् पर्वत महारक था।

राजा सुरेन्द्र ने दरद देश के समीप सोरक[1] नामक पत्तन बसाया। उसने नरेन्द्र भवन विहार[2] का निर्माण कराया था। उस अखण्ड यशशाली पुण्यकर्मा राजा ने काश्मीर मण्डल मे सौरस[3] विहार की स्थापना की। राजा अपनी सुकृतिया तथा उदारता के लिए प्रसिद्ध था।

राजा सुरेन्द्र ने सन्तानहीन स्वर्ग गमन किया। उस समय अन्य कुलोद्भव राजा गोधर काश्मीर मण्डल का राजा हुआ। उसने सुरम्य पर्वतो सहित पृथ्वी का भार उठाया। उस उदार राजा ने गोधर[4] तथा हस्तिशाला[5] अग्रहार द्विजो को प्रदान किया। राजा ने आजीवन पुण्य कर्म सम्पादन करते हुए स्वर्गगमन किया। अनन्तर याचको का सुवर्णदाता राजा गोधर का पुत्र सुवर्ण काश्मीर का राजा हुआ। कराल[6] मे सुवर्ण मणि कुल्या[7] निर्माण कर जल लाया। उसके गोलोक पधारने पर प्रजागण के लिए जनक तुल्य उसका पुत्र जनक राजा हुआ। उसने जालोर[8] विहार तथा अग्रहार निर्मित किया।

शचीपति तुल्य शचीनर राजा सुवर्ण का पुत्र था। पिता के परलोकधाम पहुचने पर उसने पृथ्वी की रक्षा का भार उठाया। उस श्रीमान क्षमाशील के शासन का कोई स्वेच्छया उल्लघन नहीं करता था। इस राजा ने राजकीय अग्रहार शमगासा[9] तथा शनार[10] की स्थापना की। राजा निःसन्तान था। उसने इन्द्र का आधा सिंहासन प्राप्त किया।

आधार ग्रन्थ=रा० त० १ ८३

---

१ सोरक=यह स्थान काश्मीर मण्डल के कही बाहर था।

२ नरेन्द्र भवन विहार=इस स्थान का अभी तक पता नहीं चला है।

३ सौरस=नरगिम परगना मे सग फेद नदी पर ग्राम सुरस हो सकता है।

४ गोधर=विशोका नदी के दक्षिण तट पर दिवसर परगना मे है।

५ हस्तिशाला=दिवसर परगना मे अस्थेल स्थान गुदर से एक मील उत्तर पूर्व विशोका नदी के बलुये द्वीप पर है।

६ कराल=यह वर्तमान जेनपोर स्थान है। अदुविन परगना मे है।

७ *सुवर्ण मणि कुल्या=वर्तमान सुनमन कुल है।*

८ जालोर=यह जोलुर गाव जैनगिर परगना मे है।

९ शमगासा=अरपथ नदी के वामतट पर यह सागस गाव कुथर परगना मे है।

१० शनार=यह वर्तमान गाव शार है। यहा पर शार अर्थात् लोहा का काम प्राचीन काल मे होता था।

अशोक

शचीनर आदि महान् राजाओं के पश्चात सत्यसंघ अशोक जो शकुनी का प्रपौत्र तथा भूपति शचीनर उसका प्रपितृव्य था, वसुधरा पर राज्य किया।

कल्हण पंडित ने अशोक को देवनामप्रिय तथा प्रियदर्शी पदवियों से विभूषित नहीं किया है। इन दो विरुदों के स्थान पर अशोक को सत्यसंघ विरुद से सम्बोधित किया है। काश्मीरियों ने अशोक को उस दृष्टि मे नहीं देखा था जिस दृष्टि से शेष भारत ने देखा था।

काश्मीर के लिए अशोक आदर्श राजा था। सत्य प्रतिज्ञ था। सत्य संकल्प था। सत्यवादी था। काश्मीर द्वारा अशोक को प्रदत्त 'सत्यसंघ' शब्द 'देवामनाम् प्रिय' तथा 'प्रियदर्शी' से कम महत्त्व नहीं रखता है।

निस्सन्देह काश्मीर का राजा अशोक था। यह प्राप्त प्रमाणों से प्रमाणित हो चुका है। यह निर्विवाद है। इसे कल्हण कहता है—

"अशोक के पाप शान्त हो गये थे। उसने जिन शासन स्वीकार किया था। अशोक ने काश्मीर मण्डल मे बुद्ध धर्म की पताका फहराई थी। उसने शुष्कलेत्र[1] तथा वितस्तात्र[2] क्षेत्र को स्तूपों से आच्छादित कर दिया था।"

अशोक ने काश्मीर में प्रथम बार स्तूप का निर्माण कराया था। राजा सुरेन्द्र के समय में बुद्धधर्म काश्मीर में आ गया था। उसने विहार निर्माण कराया था। अशोक ने बुद्धधर्म को व्यापक बनाया। बुद्ध शासन चलाया।

बुद्ध एवं सनातन धर्म काश्मीर में एक साथ स्थान कर गये थे। चौदहवीं शताब्दी तक यह स्थिति थी। बौद्धधर्म समस्त भारत मे जब उच्छिन्न हो चुका था, उसके शताब्दियों पश्चात् तक वह काश्मीर में पनपता रहा। वहां से विदेशों में भारतीय धर्म तुल्य पहुंचा। काश्मीर के धर्म-प्रचारक त्रिपिटकों की पिटारी लिए लद्दाख, तिब्बत, चीन होते जापान तक पहुंचते थे।

आज कितने लोग जानते है। काश्मीर राजा गुणवर्मा के कारण बुद्धधर्म दक्षिण-पूर्व एशिया में पहुंचा था। आज भी कम्बुज, मलेशिया, वियतनाम, लाओस, ताइवान के नब्बे प्रतिशत व्यक्तियों का यह धर्म है। यह थाईलैण्ड और बर्मा का

---

१. शुष्कलेत्र = दुन्त परगना में दुच लितर गांव है।

२. वितस्तात्र = पिथ वुतूर ग्राम वेरी नाग से एक मील पर है।

विधिवत राजधर्म घोषित किया गया है।

अशोक ने काश्मीर मे निवास किया था। उसे अपनी पवित्र भूमि समझकर पवित्र मन्दिरो, चैत्यो, शिवालयो की शृंखलाओ से शोभित किया था।

अशोक ने काश्मीर मे चैत्य निर्माण कराया था। उसका प्रथम निर्मित चैत्य वितस्तात्रपुर के धर्मारण्य विहार मे था। वह चैत्य इतना ऊचा था कि उसके शिखर तक आखें नही पहुच पाती थी। उसका कलश काश्मीर उपत्यका के कोने-कोने मे दिखाई देता था।

श्रीनगर! काश्मीर का हृदय श्रीनगर! यह अशोक की देन है। इस नगर को अशोक ने सुयोजित योजनानुसार स्थापित किया था। काश्मीर की पुरानी राजधानी पुराधिष्ठान थी। यहा आज बादामी बाग है। पढरेथन का मन्दिर है। शकराचार्य पर्वत मूल मे श्रीनगर पामपुर सडक पर इस समय जहा सैनिक छावनी है, यही पुराधिष्ठान था। काश्मीर की पुरानी समृद्धशाली राजधानी थी।

अशोक दूरदर्शी था। कल्पनाकार था। उसमे सकल्प था। उसने सकल्प किया—वितस्ता के समीप, डल लेक के समीप, नगर आबाद करने का। उसने अपना सकल्प पूरा किया। श्रीनगर आबाद हुआ।

श्रीनगर अशोक का है। उसका दिया श्रीनगर नाम है। निस्सदेह वह काश्मीर मण्डल की श्री है।

उस श्रीमान अशोक ने श्रीनगरी की स्थापना की। उस श्रीनगरी का महत्त्व उसके लक्ष्मी द्वारा समुज्ज्वल दान एव लाभ गेहो के कारण थी। श्रीनगरी को अशोक ने सपदापूर्ण किया। यशपूर्ण किया। कीर्तिपूर्ण किया। वृद्धिपूर्ण किया।

आज भी वह प्रिय श्रीनगरी वृद्धता को प्राप्त करती अपना आकार बढाती जा रही है।

योग वासिष्ठ रामायण मे महर्षि वाल्मीकि ने पुराधिष्ठान का सुन्दर वर्णन किया है। हृदयग्राही वर्णन किया है। परन्तु अशोक द्वारा निर्मित श्रीनगर, उस पुरातन पुराधिष्ठान से कही बढकर है।

मुस्लिम काल मे श्रीनगर नाम बदल दिया गया। श्री लक्ष्मी का नाम था। हिन्दू देवी का नाम था। इस कारण मुसलमान काश्मीरी राजाओ ने श्रीनगर को काश्मीर कहा। परन्तु इतिहास श्रीनगर को नही भूल सका। जनता श्रीनगर को नही विस्मृत कर सकी। राजसत्ता जबर्दस्ती किसी मौलिक चीज को अमौलिक बहुत दिनो तक नहीं बना सकती। अशोक की श्रीनगरी आज जीवित है। जागृत है। प्रेरणाप्रद है। प्रकृति के अक की सुन्दर सुषमा है।

अशोक जब तक काश्मीर मे रहा उसमे धार्मिक सकुचित भावना नही पनप सकी। कट्टर बौद्ध न हो सका। उसे प्रभावित किया था बौद्ध एव सनातन दोनो

धर्मों ने। काश्मीर की सहिष्णुता, धर्मों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण उदार भावना ने अशोक को धर्मों के समन्वय की ओर प्रेरित किया। वह किसी एक धर्म का होकर न रह सका।

काश्मीर निवासी बुद्ध एवं शिव दोनों की पूजा करते थे। दोनों की अर्चना करते थे। दोनों की वन्दना करते थे। अशोक बन गया काश्मीरी विचारधारा का प्रतीक। काश्मीरियों ने उसे असहिष्णु, एकांगी नहीं बनने दिया। यही कारण है कलिंग युद्ध तक अशोक पूर्णतया सनातनी था। यद्यपि बुद्ध विचारधारा उस समय भारत में फैल चुकी थी।

काश्मीर की स्वस्थ सैनिक परम्परा से अशोक प्रभावित हुआ था। उसने म्लेच्छों के संहार की कल्पना की। उनके संहार निमित्त शिव से जलौक पुत्र की आकांक्षा की। उसने शस्त्र की शरण ली। काश्मीर मण्डल में फैले म्लेच्छों से देश की रक्षा के लिए। काश्मीर का अशोक उदार, उदात्त विचारक और सहिष्णु था।

अशोक के विषय मे भ्रान्त धारणाएं है। उसने यदि जिन शासन का प्रसार किया तो दूसरी ओर उसने काश्मीर में शिव मन्दिरों की भी स्थापना की। उस अवसाद-रहित शान्त राजा ने विजयेश्वर (बिज ब्रोर, बिजहेरा) में दो प्रासादों का निर्माण कराया। विजयेश्वर देवस्थान के पवित्र सभा-स्थान में उसने अशोकेश्वर शिव मन्दिर की स्थापना की।

विजयेश्वर काश्मीर में शारदा पीठ के पश्चात संस्कृत विद्या, पठन-पाठन तथा अध्ययन का केन्द्र था। तीर्थ क्षेत्र था। धार्मिक केन्द्र था। सांस्कृतिक स्थान था। उन दिनों और आज भी प्रथा है, मन्दिर निर्माता अपने नाम पर शिव मन्दिर मे ईश्वर तथा विष्णु मन्दिर में स्वामी शब्द जोड़कर मन्दिर एवं देवस्थान का निर्माण करते हैं। अपने नाम पर उनका नामकरण करते हैं। अशोक ने आज से २३०० वर्ष पूर्व विजयेश्वर क्षेत्र में अपने नाम में ईश्वर लगाकर अशोकेश्वर मन्दिर की स्थापना की।

उन दिनों समीपवर्ती सीमान्त स्थानों से म्लेच्छों के प्रवेश के कारण काश्मीर मण्डल म्लेच्छ जनाकीर्ण हो गया था। काश्मीर म्लेच्छों से संच्छादित हो गया था। उनसे काश्मीर की रक्षा करना आवश्यक था। अशोक भारत का सम्राट था। वह सर्वदा काश्मीर में उपस्थित रहकर म्लेच्छों के उन्मूलन में अपना सब समय नहीं लगा सकता था। एतदर्थ अशोक ने इस कार्य के लिए पुत्र-रत्न की आकांक्षा की; जो उसके छोड़े कार्य को पूरा कर सके, जो म्लेच्छों से काश्मीर मण्डल की रक्षा कर सके, काश्मीर मण्डल म्लेच्छ-विहीन कर सके।

अशोक भूतेश्वर (बुतसर) मे चला गया। वहां उसने घोर तपस्या की। पुत्र-प्राप्ति हेतु तपस्या की। उसकी कठोर तपस्या से शिव द्रवीभूत हुए। अशोक ने म्लेच्छों के संहार-हेतु जलौक नामक पुत्र-रत्न प्राप्त किया।

अशोक को काश्मीर स्मरण रखेगा। उसने स्तूप, चैत्य तथा विहारो का निर्माण कराकर काश्मीर जीवन मे बौद्ध विचारधारा का प्रवेश कराया था। बौद्ध विचारधारा ने काश्मीर के सार्वजनिक जीवन तथा रहन सहन को प्रभावित किया था। चौदहवी शताब्दी तक काश्मीर में भगवान बुद्ध का जन्म-दिवस धूमधाम से मनाया जाता रहा है, जब शेष भारत मे लोग भूल गये थे कि बुद्धधर्म नाम का भी कोई धर्म इस जगत् मे था।

अशोक काश्मीर के पश्चात पाटलिपुत्र चला गया। पाटलिपुत्र उसका कार्य-क्षेत्र हो गया। काश्मीर इतिहास मे इस अत्यन्त सक्षिप्त उद्धरण के अतिरिक्त अशोक के सम्बन्ध मे और कुछ उल्लेख नही मिलता।

काश्मीर के पुरातन लेखको ने जो कुछ लिखा है, अशोक का जो चरित्र चित्रण किया है, उससे अशोक और ऊपर उठ जाता है। उसे सहिष्णु, बुद्ध-भक्त के साथ ही शिवभक्त के रूप मे काश्मीर के पुरातन शैव धर्म का आदर करने वाला सत्य सघ कहा गया है।

आधार ग्रन्थ राजतरगिणी तरग १ १०१–१०७।

जलौक

जलौक काश्मीर का कल्कि था। 'म्लेच्छ निविड़ निधने करियसि करवालम्' पद से जयदेव कवि ने भगवान कल्कि की स्तुति की है। कल्कि अवतार भविष्य में सम्भल में होगा।

जलौक कल्कि अवतार तुल्य था। अपनी शक्ति एवं साधनों द्वारा काश्मीर से म्लेच्छों का उन्मूलन किया। उसे काश्मीर का कल्कि अवतार कह सकते हैं।

भगवान भूतेश से भूतेश्वर में तपस्या कर सम्राट अशोक ने वर प्राप्त किया था। वह सफल हुआ। उसे जलौक पुत्र हुआ। उसके पश्चात वह काश्मीर का राजा हुआ। काश्मीर से चले जाने पर अशोक का पुनः काश्मीर-आगमन नहीं हुआ।

जलौक ने अशोक की कल्पना साकार की। उसका संकल्प पूरा किया। काश्मीर की पवित्र भूमि म्लेच्छ-विहीन हो गयी। काश्मीर की पवित्र भूमि पुनः पुण्यभूमि हो गयी।

अशोक का पुत्र जलौक राजा हुआ। काश्मीर का यशस्वी राजा था। वह अपने पिता से भी महान था। वीर था। अपने धवल यश द्वारा ब्रह्माण्ड मण्डल को उसने शुद्ध कर दिया था। भूतल पर इन्द्र तुल्य तेजस्वी था। पराक्रमी था।

उस महान राजा के दिव्य प्रभावों की कथा देवता सुनते थे। आश्चर्यचकित होते थे। स्तम्भित होते थे। जलौक नर रूप में देवता था। वह देवताओं के लिए स्पृहणीय था। काश्मीर के नर-नारियों का स्नेह-भाजन था।

उसके प्रताप की गाथा काश्मीर साहित्यकार गाते नहीं थकते। वह गाथा इतनी रुचिकर है; इतनी पवित्र है; इतनी पुण्य है कि उसके श्रवण मात्र से चित्त पुलकित होता है। उस राजा के चरित्र, उसका गुण, उसकी प्रतिभा देवोपम थी। यदि काश्मीर-निवासी उस पर गर्व करें तो आश्चर्य नहीं है।

कोटि वेधिनी रस द्वारा वह सोना बनाता था। उसने इतनी सुवर्ण राशि, कोटि वेधिनी रस से बना ली थी कि शून्य गगनमण्डल को, उस सुवर्ण राशि के दान से भर सकने में सक्षम था।

इस भूलोक में राजा जलौक ने रस से सोना बनाने का वैज्ञानिक कार्य सम्पन्न किया था। उन दिनों काश्मीर ने विश्व के सम्मुख इस अद्भुत आविष्कार के कारण प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। महाभारत काल से पिप्पीलिका अर्थात स्वर्ण चूर्ण के व्यापार में काश्मीर ने ख्याति प्राप्त की थी। जलौक ने उस ख्याति को

सुरक्षित रखा।

उस राजा की विचित्र कथाएं आश्चर्यचकित प्रतीत होगी। यदि उन्हें तत्कालीन विश्व-साहित्य की तुला पर तौला जाय, तो वे केवल साहित्यिक कृति मात्र ही नहीं, उनके सत्य मानने मे कठिनाई का बोध नहीं होगा।

उस राजा ने सिद्धि प्राप्त की थी। भगवान भूतेश का प्रसाद प्राप्त किया था। भूतेश की उस पर असीम कृपा थी। उसके लिए दुनिया का कोई काम कठिन नहीं था। कठिन से कठिन काम कर सकने मे वह सक्षम था।

राजा नाग सरोवरो का जल स्तम्भित कर देता था। उनमे तरुणी फणि कन्याओं के साथ प्रवेश कर, अपना तारुण्य सफल करता था।

जल स्तम्भन एक विद्या थी। महाभारत मे वर्णन मिलता है। दुर्योधन ने अपनी प्राणरक्षा हेतु सरोवर का जल स्तम्भित किया था। सरोवर मे निवास किया था। पुरातन बाइबिल इस जल-स्तम्भन का उल्लेख करती है। महात्मन मूसा मिश्र से यहूदियों के साथ देश त्यागकर, फिलस्तीन की ओर चले थे। मार्ग मे सिनायी मरुभूमि पहुचने के पूर्व समुद्र मिला। पीछे मिश्र का राजा फरोहा महान, सेना के साथ यहूदियो का पीछा कर रहा था। उनके सहार पर तुला था। महात्मन् मूसा की कृपा से समुद्र जल स्तम्भित हो गया। सभी यहूदी पार चले गये। जब फरोहा की सेना फरोहा के नेतृत्व मे आयी, तो जल स्तम्भित नही रहा। समुद्र जल पूर्ववत हो गया। फरोहा सहित समस्त मिश्री सेना समुद्र-जल में विलीन हो गयी।

जलौक ने यही किया। यही सिद्धि प्राप्त की थी जिसका वर्णन तत्कालीन इतिहास एव साहित्य मे प्राप्त होता है। यदि बाइबिल सत्य है, तो कोई कारण नहीं जलौक की गाथा क्यो न सत्य मानी जाय?

राजा का ज्ञानोपदेशक तेजस्वी दार्शनिक एक अवधूत था। राजा जलौक उसका शिष्य था। राजा जलौक हर का प्रसाद था। अवधूत की कृपा से उसे शैव-दर्शन का पूर्ण ज्ञान हुआ। शैव दर्शन पर उसकी दृढ आस्था थी। किन्तु शैव होने के कारण, उसने अपने पिता अशोक द्वारा प्रचारित, बौद्ध-धर्म के विरुद्ध धार्मिक अभियान नहीं किया।

उसके गुरु अवधूत ने बौद्ध धर्मावलम्बियो, दार्शनिको एव विद्वानो को शास्त्रार्थ मे परास्त किया। काश्मीरी जनता को बौद्ध मत की घनीभूत होती छाया से पुन शैव-प्रभावित आश्रय-स्थान मे लाकर बैठा दिया। उन दिनो अशोक का राजाश्रय प्राप्त कर काश्मीर मण्डल मे बौद्धभिक्षु प्रबल हो उठे थे। वही अवस्था भारत के अन्य स्थानो की भी थी।

बौद्ध-धर्मावलम्बी एव भिक्षु गर्व से फूल उठे थे। बौद्धधर्म के प्रसार तथा प्रवर्तन के कारण उनका विचार सकुचित हो गया था। बौद्धधर्म प्रवर्तक धर्म था।

हिन्दू धर्म प्रवर्तक धर्म नहीं था। उसने मत-परिवर्तन लोभ से, भय से, भ्रामक प्रचार से, लौकिक प्रसाधनों से नहीं किया। यही अवस्था हिन्दू धर्म की आज भी है। हिन्दू धर्म की यह सहिष्णुता, यह उदारता कभी-कभी उसके लिए महान घातक सिद्ध हुई है। इतिहास साक्षी है।

राजा जलौक कट्टर शिव-भक्त था। वह महान सत्यवादी राजा था। उसकी सत्यपरायणता अयोध्यापति राजा हरिश्चन्द्र से किसी दृष्टि से कम न थी।

उसने प्रतिज्ञा की, नन्दि क्षेत्र स्थित ज्येष्ठेश तथा विजय क्षेत्र स्थित विजयेश्वर का प्रतिदिन दर्शन तथा पूजन किया करेगा।

नन्दि क्षेत्र तथा विजय क्षेत्र के मध्य लगभग चालीस मील का अन्तर है इस लम्बी यात्रा समाप्त करने के लिए ग्राम-ग्राम मे अश्व-परिवर्तन हेतु पड़ाव निश्चित किये गये थे। अश्वारोही राजा की लम्बी यात्रा कष्टप्रद होती थी।

काश्मीर का एक नाग राजा के इस कष्ट से द्रवित हो गया। वह उन्हें अविलम्ब ज्येष्ठेश्वर से विजयेश्वर नित्य पहुँचा दिया करता था।

तपस्या द्वारा राजा ने अमित बल प्राप्त किया। म्लेच्छों के संहार में तत्पर हो गया। उसने वसुधा का म्लेच्छों से उद्धार किया। विजय-यात्राओं के कारण समुद्र मेखलाधारिणी मही को उसने विजय किया।

पृथ्वी-विजयी राजा ने म्लेच्छों को काश्मीर में जिस स्थान पर उज्झटित किया था, उसे काश्मीरी उज्झट डिम्ब[1] कहते थे। कल्हण के समय तक लोगों को यह स्थान इसी नाम से स्मरण था। म्लेच्छ संहार की गाथा काश्मीर के नर-नारी मुस्लिम शासन के पूर्व तक नहीं भूल पाये थे।

बौद्धों के कारण, म्लेच्छों की व्यापकता के कारण, काश्मीर मे चातुर्वर्ण व्यवस्था विघटित हो गयी थी। राजा इस स्थिति से अत्यन्त दुःखी था। वह वर्ण व्यवस्था पुनः स्थापित करना चाहता था।

म्लेच्छों से काश्मीर मण्डल विहीन हो जाने से ही समस्या का निराकरण नहीं हुआ। प्रश्न था सनातन वर्ण-व्यवस्था पुनः काश्मीर में किस प्रकार स्थापित की जाय?

राजा जलौक के नेतृत्व में काश्मीर वाहिनी शताब्दियों पश्चात पुनः काश्मीर की सीमा के बाहर विजय-अभियान हेतु निकली। राजा गोनन्द ने मथुरा पर आक्रमण किया था। राजा दामोदर ने गान्धार में श्रीकृष्ण की सेना पर आक्रमण किया था। काश्मीरी सेना पुनः केसरिया तिलक लगाकर चतुरंगिणी सेना युक्त काश्मीर मण्डल के बाहर विजय-अभियान के लिए चल पड़ी।

---

१. उज्झट डिम्ब=इस स्थान का निश्चयात्मक रूप से पता नहीं चलता। काश्मीर के दक्षिण-पश्चिम अथवा पश्चिम में होना चाहिए।

काश्मीर सेना ने मरतनापूर्वक कान्यकुब्ज विजय किया। उन्होंने विजयोत्सव कन्नौज मे जाह्नवी के तट पर अपने पूर्वजो को श्रद्धाजलि अर्पित कर मनाया। काश्मीर सेना ने इस बार विजय प्राप्त की थी। वह विजयी सेना थी।

राजा जलौक ने सुअवसर देखा। उन दिनो कन्नौज धार्मिक केन्द्र था। चातुर्वर्ण धर्म-व्यवस्था वहा कायम थी। अशोक के धर्म-घोष के बावजूद चातुर्वर्ण व्यवस्था नष्ट नही हो सकी थी।

कान्यकुब्ज राज्य जीतकर जलौक ने उसे काश्मीर राज्य मे सम्मिलित नही किया। उपनिवेश नही बनाया। उसने कन्नौज से चातुर्वर्ण-अनुयायी जन-समूह, वहा के धर्म तथा व्यवहार निपुणो को, उनकी स्वेच्छा से, अपने साथ लाकर, काश्मीर मे बसाया।

कन्नौज से आये द्विजो तथा चातुर्वर्ण अनुयायियो का काश्मीर मण्डल ने सादर स्वागत किया। लुप्तप्राय वर्ण-व्यवस्था पुन काश्मीर मे स्थापित हुई। सनातन धर्म की ओर लोगो की रुचि बढ़ी। इसके लिए उसने किसी प्रकार का प्रलोभन नहीं दिया, जोर-दबाव नही दिया। म्लेच्छ प्रभाव को दूर करने के लिए कन्नौज से लाये गये जन समुदाय का उसने स्वेच्छया उपयोग किया।

म्लेच्छो तथा बौद्धो के कारण पुरानी व्यवस्था सकर हो गयी थी। वर्ण-सकरता बढ गयी थी। व्यवहार तथा धर्मादि का विकास रुक गया था। काश्मीर की शासन-व्यवस्था भारत के अन्य सामान्य राज्यो तुल्य हो गयी थी। उसमे शिथिलता आ गयी थी।

जलौक विकासवादी था, सुधारक था। उसे काश्मीर की जडता रुची नहीं। काश्मीर राज्य में राज्याधिकारी, अर्थात् धर्माध्यक्ष, धनाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, चमूपति, दूत, पुरोधा एव दैवज्ञ केवल सात प्रकृतियो की व्यवस्था पर आधारित शासन-पद्धति प्रचलित थी। इन्ही सातो राज्याधिकारियो के हाथो मे काश्मीर के राज्य की व्यवस्था थी। शासन सुनियन्त्रित नही था।

महाराज युधिष्ठिर के समय अठारह कर्मस्थान राज्याधिकारियो के थे। राजा जलौक ने महाराज युधिष्ठिर की परम्परा का अनुकरण किया। अपनी राज्य-व्यवस्था महाभारतकालीन व्यवस्था पर निर्धारित की।

राजा जलौक ने काश्मीर की शासन-पद्धति अठारह कर्मस्थान अर्थात् राज्याधिकारियो के अधीन की। राज्य का पुनर्गठन किया।

उग्रधीमान राजा जलौक पुण्यकर्मा था। उसने अपने विक्रम एव स्व-उपार्जित धन से वारवालादि[1] अग्रहार दान किया।

---

१ बारवल—वर्तमान ग्राम बारवुल है। सिन्धु तथा कनकी नदी के सगम स्थान से एक मील ऊर्ध्वभाग मे कनकी नदी के दक्षिण तट पर स्थित है।

राजा जलौक की रानी का नाम ईशानदेवी था। ईशानदेवी अपने पति तुल्य धर्मपरायण एवं धर्मभीरु थी। ईशानदेवी ने सीमान्त के द्वार देशों पर तथा प्रदेशों मे प्रभावशाली मातृ-चक्रों की स्थापना की। वे चक्र अपनी दैवी शक्ति के कारण विशिष्टता रखते थे।

राजा जलौक ने एक समय व्यास के अन्तेवासी से नन्दिपुराण सुना। नन्दि, सोदर तथा अन्य स्थानों की तीर्थयात्रा करने लगा। उसकी यात्रा शोभनीय होती मालूम पड़ती थी, जैसे वह नन्दीश से स्पर्धा कर रहा था।

ज्येष्ठ रुद्र, अथवा ज्येष्ठेश का पवित्र मन्दिर भूतेश्वर में था। भूतेश्वर वशिष्ठाश्रम (वगथ) से दो मील और ऊपर है। कनक वाहिनी नदी के दक्षिण तट पर है। श्रीनगर से लगभग पन्द्रह मील पड़ता है। ज्येष्ठेश अथवा ज्येष्ठेश्वर का सर्वदा दर्शन श्रीनगर मे होता रहे, एतदर्थ उसने ज्येष्ठेश किंवा ज्येष्ठ रुद्र की स्थापना श्रीनगर में की। नन्दीश क्षेत्र मे सोदर तीर्थ था। सोदर तीर्थ मे स्नान कर भक्तगण ज्येष्ठ रुद्र का दर्शन भूतेश्वर में करते थे। राजा ने सोचा बिना सोदर तीर्थ श्रीनगर में हुए, नन्दीश की स्पर्धा नहीं की जा सकती थी।

एक दिन राजा कार्य-व्यग्रता के कारण सुदूर स्थित सोदर तीर्थ में नित्य-क्रिया एवं स्नान करना भूल गया। इस विस्मृति के कारण राजा अत्यन्त दुर्मन हो गया।

राजा ने देखा, एक जलहीन स्थान में अकस्मात जलस्रोत उद्भूत हो गया। राजा चकित हुआ। वह जल वर्ण, स्वाद एवं अन्य गुणों में सोदर तीर्थ जल तुल्य था।

उस प्रादुर्भूत तीर्थ में राजा ने स्नान किया। उसे सोदर तुल्य स्नान जैसी प्रसन्नता का अनुभव हुआ। नन्दि-रुद्र-स्पर्धा का कार्य पूर्ण होता देखकर, उसे परम सन्तोष हुआ।

वह वास्तव में तीर्थ था या नहीं? राजा ने परीक्षा करनी चाही। वह निश्चय करना चाहता था, नव प्रादुर्भूत जल सोदर का ही जल था या नहीं। राजा ने एक सुवर्ण भृंगार का मुख सीसा से बन्द किया। उसे भूतेश्वर स्थित मूल सोदर तीर्थ मे छोड़ दिया।

ढाई दिन पश्चात् भूगर्भ जल-पथ की यात्रा करता, वह स्वर्ण भृंगार श्रीनगर पार्श्व स्थित नव सोदर तीर्थ में निकल आया। राजा का सन्देह दूर हो गया। उसे सोदर तुल्य समझकर वहीं स्नान तथा नित्य-कर्म करने लगा। निस्संदेह राजा नन्दीश का अवतार था। स्वयं नन्दीश था, अन्यथा उस प्रकार का अलौकिक कार्य सर्वथा असम्भव था।

राजा एक समय श्रीनगर से विजयेश्वर जा रहा था। मध्य मार्ग में एक अबला उसके सम्मुख मार्गावरोध कर खड़ी हो गयी। राजा ने अबला की ओर देखा। उसने मृदु स्वर में पूछा, "नारी! तुम्हारा प्रयोजन?"

"राजन् ! निवेदन करू ?"

"अवले, अवश्य करो। मेरा राजधर्म, तुम्हारी बात सुनने के लिए, प्रेरित कर रहा है।"

"भूपति ! मैं भूखी हू।"

"देवी ! तुम्हारी भोजन से सन्तुष्टि हो जायेगी।"

"नृपति ! आप वचन देते हैं ?"

"सुभगे ! मेरा यह कर्तव्य है।"

"काश्मीरेन्द्र ! मुझे मानव-मास की स्पृहा है।"

"मानव मास ?" राजा चकित हुआ।

"हा, नृपेन्द्र !" स्त्री ने शब्दो पर ज़ोर देकर कहा।

"मैं जीव हिंसा से विरत हू।"

"किन्तु आपने वचन दिया है।" स्त्री मुसकरायी।

"मैं किसी मानव की हत्या कर, उसका मास, कैसे तुम्हे दे सकता हू ?"

"राजन् ! क्या आप वचन-विमुख होंगे ?"

"नहीं, देवी !"

"तो ?"

"मेरा मास ग्रहण करो।"

"आपका ?"

"हा देवी ! मैं अपने वचन का पालन करता हू।"

"किन्तु राजा का मास ? "

"वह भी नर-मास है, शोभने !" राजा ने सस्मित प्रसन्नतापूर्वक कहा।

"राजन् !" वह स्त्री आश्चर्य-स्तम्भित हो गयी। उसने राजा की शान्त, निर्विकार मुद्रा पर दृष्टिपात किया। राजा ने उसे सकोच करते देखकर कहा

"देवी ! सकोच क्यो करती है ? मेरा यह शरीर उपस्थित है।"

"पृथ्वीपाल ! आप निश्चय कोई बोधिसत्व हैं।"

"बोधिसत्व क्या होता है, देवी ?" राजा बौद्ध भाषा नहीं समझता था। उसने मृदु स्वर मे पूछा।

वह स्त्री राजा की ओर एकटक देखने लगी। कुछ बोली नहीं।

"देवी ! मैं तुम्हारा अभिप्राय नहीं समझ सका।"

"भूपाल ! बोधिसत्व के अतिरिक्त और कौन ऐसा सत्यव्रती हो सकता है ?"

"क्यो ?"

"महात्मन् ! आपने प्राणियों पर दृढ करुणा प्रदर्शित की है।"

राजा शिवभक्त था। वह स्त्री की बात नहीं समझ सका। उसने पुन पूछा "भद्रे ! बोधिसत्व क्या है ? मुझे आपने क्यो बोधिसत्व समझा है ?"

"राजन् ! मैं उन बौद्धों द्वारा भेजी गयी हूं, जिन्हें आपने क्रोध के कारण दुखी कर दिया है।"

"सुभाषिनी ! मैं क्या आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूं ?"

"भूपति ! मैं कृत्या हूं।"

"कृत्या ?" राजा दो पग पीछे चकित होकर हट गया।

"हा, राजन् ! मैं लोकालोक पर्वत के पार्श्व मे तम-निवासिनी कृत्या हूं।"

स्त्री ने कृत्या का रूप धारण कर लिया। राजा इस घटना से और चकित हो गया। बोला : "देवी ! तुम्हारा कार्य ?"

"भूपाल ! मुक्ति की आकांक्षा से बोधिसत्व की शरण में रहती हूं।"

"धन्यवाद, देवी ! बोधिसत्व का मैं अर्थ नही समझ सका हूं।"

"काश्मीरेन्द्र ! भगवान् लोकनाथ से आरम्भ होकर, अब तक इस लोक में कुछ प्राणीगत क्लेश हो चुके हैं। उन्हे बोधिसत्व कहा जाता है।"

"बोधिसत्व क्या करते हैं, देवी ?"

"भूपति ! बोधिसत्व पापियों पर क्रोध नहीं करते।"

"अच्छा ?"

"उन पर करुणा करते है।"

"और ?"

"वे अपनी क्षमाशीलता के कारण बुरे का बदला नही लेते।"

"और देवि !"

"वे केवल अपने लिए बोधि नही चाहते।"

"तो ?"

"राजन् ! बोधिसत्व विश्व की मुक्ति हेतु उद्यत रहते हैं, विश्व-हेतु बोधि चाहते हैं।"

राजा विचारशील हो गया। राजा की सरल चिन्तनीय मुद्रा देखकर, उस कृत्या ने साहसपूर्वक कहा : "एक दिन विहार की तूर्य ध्वनि के कारण, आपकी निद्रा भंग हो गयी थी।"

"ओह ! तो ?"

"कतिपय खलो ने आपको प्रेरित किया।"

"मुझे ?"

"हां, राजन् ! आपने उनकी प्रेरणा पर, क्रोधित हो विहारों के दलन का आदेश दे दिया।"

"मैंने ?"

"हां, राजन् !"

"फिर क्या हुआ ?" राजा ने जिज्ञासा प्रकट की।

"विहार के भिक्षु उत्तेजित हो गये। उन्होंने मेरा आह्वान किया।"

"किसलिए ?"

"आपकी हत्या करूं।"

"अरे !" राजा क्रोधित नहीं हुआ। उसने हंसकर पूछा, "तब क्या हुआ ?"

"उस समय बोधिसत्व ने मुझे बुलाया।"

"तुम्हारे बोधिसत्व ने क्या किया, देवी ?" राजा ने गम्भीरतापूर्वक कृत्या की ओर देखते हुए विनय स्वर में पूछा।

"राजन् !" कृत्या ने कहा, "उन्होंने मुझे सदुपदेश दिया।"

"भद्रे !" राजा ने निवेदन किया, "क्या मैं उस उपदेश के सुनने का अधिकारी हू ?"

"निश्चय, भूपति !" कृत्या ने नम्र स्वर में कहा, "उन्होंने कहा—'कल्याणी, वह राजा महाशाक्य है। तुम उसका वध नहीं कर सकती।'"

कृत्या कहते-कहते रुक गयी। राजा ने निर्निमेष दृष्टि से कृत्या की ओर देखा। कृत्या ने जैसे दूर क्षितिज के पार देखते हुए कहा "उन्होंने कहा, उनका दर्शन करने से, तुम्हारा तम क्षीण हो जायगा। राजा ने खलों की प्रेरणा से दोष किया है। तुम हमारे नाम से उसे प्रेरित करना।'"

"देवी ! उन्होंने क्या शब्द आपके द्वारा मुझे भेजा है ? यदि कष्ट न हो तो कहिए।" कृत्या तुष्णीभू हो गयी। राजा ने विनम्र जिज्ञासा की।

"राजन् !" कृत्या ने राजा की ओर पवित्र दृष्टि से देखते हुए कहा, "आप अपना हेम सभार देकर नष्टप्राय विहारों का पुनर्निर्माण करायें। इस प्रकार कार्य करने के कारण आप विहार-उच्छेद के दोष-भागी नहीं होंगे। जिन खलों ने आपको उत्तेजित किया है, उनके और आपके दोषों का इस प्रकार प्रायश्चित्त हो जायगा।"

राजा शान्त हो गया। वह कृत्या की पवित्र कान्ति की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखता रहा। उसे उसके प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी। कृत्या ने राजा की ओर देखते हुए पूछा, "राजन् !"

"देवी ! मैं वचन देता हू। विहारों का पुनर्निर्माण कराऊंगा।"

प्रहर्षो फुल्लनयना कृत्या राजा की ओर देखकर बोली, "नृपवर ! मैंने अपना रूप परिवर्तन किया था।"

"कारण, देवी ?" सौम्य वाणी से राजा ने जिज्ञासा प्रकट की।

"आपके सत्व की परीक्षा लेना चाहती थी।"

"ओह !" राजा सरलतापूर्वक मुसकराया।

"आपके दर्शन से मेरे पाप क्षीण हो गये हैं। मैं जाती हू। स्वस्ति, राजन् ! स्वस्ति।"

कृत्या अदृश्य हो गयी। राजा विचारशील मुद्रा में खड़ा रहा। उसने वेमर

की क्यारियों की ओर एक बार देखा। पुनः वितस्ता में मस्तूल उड़ाती जाती नावों की ओर देखा। और देखा दूर पर पर्वतमालाओं पर हरित पादप श्रेणी को। राजा ने अपनी यात्रा विजयेश्वर की ओर आरम्भ की।

उस वसुधापति राजा जलौक ने कृत्या के नाम पर कृत्याश्रम[१] विहार का निर्माण कराया। वहां पर राजा ने क्षीण तमस कृत्या देवी की उपासना की। काश्मीर में बौद्धों के विहार पुनः निर्मित हो गये। भयग्रस्त बौद्ध भिक्षु निर्भीक काश्मीर मण्डल में विचरण करने लगे।

राजा के मन मे बौद्धों के प्रति राग-द्वेष नहीं था। परन्तु उसकी शिव-भक्ति में किंचित् मात्र न्यूनता नहीं हुई।

राजा ने नन्दि-क्षेत्र मे भूतेश का अश्म प्रासाद निर्माण कराया। उसने अपने कोष के साथ ही साथ रत्नों मे भगवान् की विधिवत् पूजा की। वह भूतेश का आदर्श उपासक अहर्निश बना रहा।

किन्तु समय आता है, इस संसार मे विदाई का। राजा जलौक का भी समय आया। काल की छाया गम्भीर होने लगी। राजा ने शरीर त्याग का निश्चय किया।

भगवान राम ने स्वतः शरीर विसर्जन किया था। युधिष्ठिर ने स्वतः हिम में गलने के लिए पाण्डवों और द्रौपदी सहित प्रस्थान किया था। राजा राज्य-प्रासाद मे, राज-सुख में, राज-प्रसाधनों में रहते भी, इच्छानुसार मृत्यु प्राप्त करना चाहता था।

राजा योगियों तुल्य, देवों तुल्य, स्वेच्छया मृत्यु का आकांक्षी हो गया। मृत्यु उसके लिए भयप्रद नहीं थी। वह मृत्यु को जीवन का एक कर्म समझता था। उसने श्रीनगर राजभवन का त्याग किया।

राजा राजप्रासाद मे निकला। श्रीनगर के नर-नारी राजपथों पर निकल आये। राजपथ कमल की पंखड़ियों से भरा था, पुष्पों से शोभित था, मंगल घटों से सज्जित था।

उसने राज्य से कुछ नहीं लिया। जिस प्रकार उसने जन्म लिया था, उसी प्रकार वह अपने गृह से अपनी नग्नावस्था को मर्यादा रखने के लिए एक वस्त्र के साथ निकला।

कान्यकुब्ज-विजेता, म्लेच्छ-संहारक, हिन्दू-धर्म पुनर्स्थापक, पैदल चला। कुछ साथ लेकर नहीं चला। सब त्याग चला। काश्मीरवासियों को काश्मीर

---

१. कृत्याश्रम—बारहमूला से पांच मील अधोभाग में वितस्ता के वाम तट पर किरस होम ग्राम है।

देकर चला। अपना कर्तव्य पूरा कर चला। काश्मीर मण्डल की सेवा कर चला।

वह श्रीनगर से चला। स्थान-स्थान पर पुर-बालाएं अश्रुपूर्ण नेत्रों से उसकी आरती उतारती थी। सबके हृदय में स्थित राजा की यह विदाई हृदयस्पर्शी थी, पत्थर को भी रुला देने वाली थी।

काश्मीर-ललनाएं अंचल से नेत्र ढक अश्रु गिराती थी। बालक सिसकते थे। शोक-विह्वल सैनिकों के अस्त्र-शस्त्र हाथों से छूटकर गिरते थे। रणक्षेत्र के सिंहनाद करने वाले वीर शिशुओं की तरह रोते थे।

राजा के नेत्र निमग्न थे। नीलोत्पल तुल्य प्रस्फुटित थे। मुद्रा निर्विकार थी। पद धीरे-धीरे उठते थे। गोपाद्रि की ओर राजा चला। जल तट पथ से भूतेश्वर की ओर चला।

मार्ग में पादपों ने पुष्प वर्षा से उस महान् तपस्वी को अर्घ्य दिया। वृक्षों की शाखाओं ने झुककर उसे छाया दी। पक्षियों की टोली मंगल गान करती उड़ चली।

नाग भ्राता का कल-कल नाद शान्त हो गया। वे मूक वेदना में मूक हो गये थे। राजा की पुण्यश्री मार्ग स्थित नर-नारियों को शान्त करती चलती थी। राजा की पवित्रावस्था की झांकी लेने के लिए जगत् सब-कुछ भूलकर राजपथ पर चला आया था। ईश्वर होते राजा ने भिक्षु उपत्यका में प्रवेश किया।

मृदु गति से राजा पहुंचा चीर-मोचन तीर्थ। वह पवित्र तीर्थ सिन्धु नदी तथा कनकवाहिनी नदी के समीप था। कनकवाहिनी भूतेश्वर स्थान का स्पर्श करती राजा के लिए पवित्र चरणामृत लिए पहुंच रही थी।

चीरमोचन में राजा ने आसन लगाया। वह ब्रह्मासन पर बैठ गया। वह स्पन्दनहीन पाषाण मूर्ति तुल्य लगता था। उसने उस पवित्र स्थान में प्रकृति के अंक में अनेक रात्रियां ध्यानरत व्यतीत की।

पुण्यात्मा जलौक राजा की इच्छा थी, वह सदेह नन्दीश का स्पर्श करता। किन्तु कनकवाहिनी की कल-कल धारा नन्दि क्षेत्र से, भूतेश के स्थान का स्पर्श करती, नन्दिक्षेत्र का स्पर्श करती, आ रही थी। अस्तु उसकी उत्कण्ठा कुण्ठित हो गयी थी।

उस महान् काश्मीर-सूर्य राजा की धर्मपत्नी ईशान देवी अपने पति से विरत नहीं रह सकी। वह भी चीरमोचन तीर्थ में पति के साथ आसन लगाकर बैठ गयी। उनकी वह तपस्या शिव एवं उमा की तपस्या का स्मरण दिलाती थी।

समय आया। राजा ने काल का सपत्नीक अभिनन्दन किया। भूतेश की ओर मुख उठाकर सपत्नीक वन्दना की। उन्हें नमस्कार किया। कनकवाहिनी के पवित्र जल से मार्जन किया। उपस्थित जन समुदाय को प्रणाम किया। निर्विकार, पद्मासन लगाकर बैठ गये। उन्होंने अपनी आत्मा का आह्वान किया। आत्मा ने

शरीर त्याग किया। स्वर्ग की ओर चला। और जड़ काया, जड़ता का प्रदर्शन करती जड़ पृथ्वी पर गिर पड़ी।

आधार-ग्रन्थ : राजतरंगिणी १ : १०८-१५२; जान राजतरंगिणा ५७८; नीलमत-पुराण ११९०, ११११, ११६१, ११२४, १३१४-१३१५, १३२५, १३२८, १३३०, १५३६, १५४१; मनुस्मृति ६, ५, २६४, २६६ २६७; नाति-सार ४ : ५, ७५; महाभारत सभापर्व ५ : ३८; अनुशासन पर्व २५ : २५; रघु-वंश १७ : ६८; शिशुपाल वध १४ : १६; ऋग्वेद ६ : १०२ : ४, १० : १२० : ३, १ : १ : ७; नन्दी पुरण महावंश २ : २३।

दामोदर द्वितीय

जलौक, प्रतीत होता है, निःसन्तान था। उसके पश्चात् अशोक कुलोत्पन्न अथवा अन्य कुलोद्भव, दामोदर नामक भूपति काश्मीर मण्डल का भूमिरक्षक हुआ।

उस महान राजा की ऋद्धि में जाज्वल्यमान, महीश्वर शिव-उपासकों में शिखामणि के अद्भुत प्रभाव की गाथा, भुवन में निरन्तर श्रवण होती थी।

राजा हर प्रसाद का पात्र था। सच्चरित्र था। विद्यानुरागी था। सुखी था। राजा से स्वयं वैश्रवण कुबेर मैत्रीसूत्र में बंधे थे। राजा कुबेर तुल्य था। गुह्यक-गण राजा के आज्ञानुवर्ती थे। उसने तत्कालीन निर्माण-कार्य तथा स्थापत्य-कला में निपुण गुह्यकों को दीर्घ गुद्सेतु[1] निर्माण हेतु नियोजित किया था। सेतु दृढ़ था। सेतु ठोस था। तत्कालीन बाध-निर्माण कला का उत्कृष्ट नमूना था।

इस सेतु किंवा बांध द्वारा राजा दामोदर सूद क्षेत्र में जल लाया। वहां अपने नाम पर दामोदर सूद नगर स्थापित किया। नगर के जलाभाव को दूर करने के लिए दीर्घ सुदृढ़ बांध बंधवाया।

दामोदर सूद श्रीनगर से आठ मील दक्षिण दिशा में एक सूखी अधित्यका पर स्थित है। आजकल यहां पर दामोदर सूद नामक हवाई अड्डा है। दामोदर करेवा को दामोदर सूद नाम से पुरा साहित्य में सम्बोधित किया गया है।

प्रायः देखा गया है, जब कोई उन्नतात्मा कोई महान् लोकोत्तर कार्य करना चाहता है तो अनायास मार्ग में विघ्न उपस्थित हो जाते हैं। श्रीकल्हण इस विघ्न के लिए कहता है—"उस विघ्न को धिक्कार है जो मनुष्यों की अल्प पुण्यशीलता के कारण उपस्थित हो जाता है।"

राजा सफल नियोजक था। काश्मीर की समस्याओं का प्रत्यक्ष ज्ञान-अर्जन किया। लोगों के सुख-दुःख को समझा। सार्वजनिक कार्यों में रुचि ली। व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर समस्याओं का तुरन्त निराकरण किया।

जल-विप्लव काश्मीर का चिर-शत्रु है। जल-विप्लव, अग्नि-दाह तथा तुषार-

---

१ गुद्सेतु—पुराधिष्ठान के दक्षिण-पश्चिम दिशा में यह स्थान है। इसके धुर दक्षिण एद्धारा नदी और पूर्व-दक्षिण दुग्ध गंगा पड़ती है।

वर्षा काश्मीर मण्डल के त्रिशत्रु कहे जाते हैं। वे आज भी वर्तमान हैं। समय-समय पर अपना उग्र रूप प्रकट करते हैं। विप्लव जैसा दृश्य उपस्थित कर देते हैं।

प्राचीन काल में काष्ठ के प्रायः मकान काश्मीर में बनते थे। आज भी काश्मीर के पुराने मकानों में लकड़ी के कामों की अधिकता है। नवीन भवन-निर्माण में भी लकड़ी का अधिकाधिक प्रयोग होता है। ये लकड़ियां सामान्यतः देवदार वृक्ष की होती हैं। देवदार की लकड़ी में अग्नि सत्वर गति से स्थान कर लेती है।

काश्मीर उपत्यका में अग्निदाह से मुहल्ले का मुहल्ला तथा नगर का नगर भस्म हो जाता है। यह चिरकाल से होता रहा है।

काश्मीर का दूसरा शत्रु जलप्लावन है। अत्यधिक वर्षा होते ही रोड़े, पत्थर एवं सिकता जल-प्रवाह में वेग के साथ आते हैं। सरिताओं के पात्र को भर देते हैं। पानी का प्रवाह बन्द हो जाता है। जलप्लावन काश्मीर की खेती तथा उपज नष्ट कर देता है। तैरते खेत नष्ट हो जाते हैं। वृक्ष टूटकर गिर जाते हैं। सरिता में वह निकलते हैं। मकानों को प्रबल प्रवाह बहा ले जाता है।

यही अवस्था तीसरे शत्रु तुषारपात की है। तुषारपात के कारण शीत ऋतु में जनता मकानों में बन्द हो जाती है। समस्त उपत्यका श्वेत वस्त्र पहन लेती है। नव विधवा नारी तुल्य लगने लगती है।

राजा ने जल-विप्लव शान्त करने के लिए यक्षों की सहायता ली। यक्ष हिमालय की पर्वतीय जाति थी। उत्तर दिशा में रहती थी। वे निर्माण कला में दक्ष थे। शक्तिशाली थे। उनका शरीर पुष्ट था। वे शारीरिक परिश्रम सुगमतापूर्वक कर सकते थे। वास्तु एवं स्थापत्य कला में उन्होंने विशेषता प्राप्त की थी। अपने समय के अभियन्ता थे। काश्मीर के महान् भवनों, मन्दिरों की रचना का श्रेय उनको दिया जाता है।

राजा ने गुह्यकों की सेवा लेकर, बांध किंवा बन्ध बनवाया था। उनसे जल की सुविधा दामोदर सूद में प्राप्त हुई थी। तत्पश्चात राजा का ध्यान काश्मीर को जलप्लावन से रक्षित करने की तरफ गया।

राजा ने स्वमण्डल में जल-विप्लव से देश को बचाने के लिए यक्षों की सहायता से सुनियोजित योजना बनवायी। पाषाणमय दीर्घ सेतुओं के निर्माणों द्वारा उसने जल रोकने का शुभ प्रयास आरम्भ किया।

सेतु का अर्थ पुल तथा बांध दोनों होता है। काश्मीर उपत्यका की फसलों तथा आबादी दोनों की रक्षा के लिए सेतु-निर्माण की योजना बनायी गयी। तत्कालीन चतुरकर्मी यक्षों ने अपनी बुद्धि तथा कार्यदक्षता दोनों का श्रेष्ठ परिचय दिया।

काश्मीर के निर्माण तथा विकासशील राजाओं में दामोदर का नाम आदर

के साथ सदा लिया जायेगा। काश्मीर का यह प्रथम राजा था जिसने जनता के हितार्थ सार्वजनिक कार्यों में नियोजन को अंगीकार किया था। नगर-निर्माण काश्मीर के अन्य पूर्ववर्ती राजाओं ने अपनी स्मृति बनाए रखने के लिए किया था। किन्तु सार्वजनिक कृषि, वाणिज्य, उद्योग एवं आर्थिक तथा हितकारी कार्यों को बड़े पैमाने पर करने का प्रथम श्रेय राजा दामोदर को मिलेगा।

तथापि इस उदार श्रेष्ठ राजा को भी भयंकर कष्टों का सामना करना पड़ा। कल्हण कहता है—"उग्र तेजस्वी द्विजों की तपोविभूतियां अचिन्त्य होती हैं, क्योंकि दामोदर जैसे राजा का भी प्रभाव उन्होंने नष्ट कर दिया। दायाद किंवा बंधु-बांधवों आदि के बल से नष्ट श्री का पुनरुत्थान देखा गया है। किन्तु विप्रों की अवज्ञा द्वारा नष्ट श्री का पुनः लौटना असम्भव है।'

घटना इस प्रकार घटी। श्राद्ध का काल था। राजा श्राद्ध-हेतु स्नान करने के लिए किसी समय उठा। उस समय कतिपय बुभुक्षु ब्राह्मण राजा के सम्मुख उपस्थित हुए। उन्हें असमय देखकर, राजा को आश्चर्य हुआ। उसने विनम्र भाव से सादर प्रणाम किया। उसने जिज्ञासा की

"विप्रवर ! अकारण, आपका दर्शन, किस शुभ कार्य का हेतु होगा ?"

"आशीर्वाद, राजन् !" ब्राह्मणों ने हाथ उठाकर, राजा के प्रणाम का उत्तर दिया।

"महात्मन् ! क्या आपका प्रयोजन यह अकिंचन जान सकेगा ?"

"पृथ्वीपते ! हम भूखे हैं।" ब्राह्मणों ने भोजन की आशा में सत्वर उत्तर दिया।

"द्विजगण ! भोजन यथेष्ट मिल जायेगा।" राजा ने श्रद्धापूर्वक कहा।

"साधु, राजन् ! साधु !" ब्राह्मण प्रसन्न हो गये।

"इस समय !" राजा ने वाक्य पूरा नहीं किया था कि ब्राह्मणों ने व्यग्रता-पूर्वक कहा "हमें इसी समय चाहिए !"

"महात्मन् ! मैंने अभी स्नान नहीं किया है।"

"इससे क्या होता है ?" ब्राह्मणों ने सवेग कहा।

"बिना स्नान किये, कैसे मैं श्राद्ध कर सकूंगा ? और बिना श्राद्ध किये कैसे आपको भोजन दे सकूंगा ?" राजा ने संकोच के साथ निवेदन किया।

"क्यों ?"

"विप्रवर ! आप क्षिन हैं। वितस्ता स्नान करने जाता हूं। स्नान कर, आपको पूर्ण तुष्ट करूंगा।"

"ओह ! आप वितस्ता स्नान करने जायेंगे ?"

"हां !"

"विलम्ब होगा !" ब्राह्मण अधीर होने लगे।

"स्वाभाविक है।"

"देर होगी।" विप्रों की वाणी में रुक्षता आने लगी।

"मैं शीघ्र ही लौटूंगा।"

"लेकिन हमें भोजन अभी चाहिए।" ब्राह्मणों ने आतुरतापूर्वक कहा।

"हमें इस समय क्षमा करें।" राजा ने असमर्थता प्रकट करते हुए कहा।

"किन्तु हमें इसी समय चाहिए।" ब्राह्मणों ने हठ किया।

"अभी क्षमा कीजिये।" राजा ने उन्हें नमस्कार करते हुए कहा। राजा की वाणी में तिरस्कार की भावना थी। उसे ब्राह्मणों की ज़िद पसन्द नहीं आयी।

"राजन् ! देखो यह वितस्ता तुम्हारे सम्मुख है।" ब्राह्मणों की वाणी में उग्रता ने प्रवेश किया।

ब्राह्मणों ने अपने तेज-बल से राजा के सम्मुख वितस्ता सरिता उपस्थित कर दी। राजा चकित हो गया। ब्राह्मण गर्व से बोले, "राजन् ! यह वही वितस्ता है। इसे आप देखिए। स्नान कर, शीघ्रतापूर्वक हमें भोजन दीजिये।"

राजा ने वितस्ता सरिता का सम्मुख उपस्थित होना माया समझा।

"विप्रो ! बिना स्नान किये, मैं भोजन नहीं दे सकूंगा।" उसने उपेक्षापूर्वक कहा।

"क्यों ?" ब्राह्मण क्रोधित हो चले।

"यही परम्परा है। आप कृपया सर्पत होइये।" राजा ने किंचित् परिहास के साथ कहा।

"सर्पत ?" ब्राह्मणों की मुद्रा अत्यन्त उग्र हो गयी।

"हां, सर्पत होइये।" राजा ब्राह्मणों का उग्र रूप देखकर मुसकराया।

"ओह, यह अनादर !" एक ध्वनि उठी।

"यह तिरस्कार !" दूसरी ध्वनि गूंजी।

"ओह ! यह उपेक्षा ?" तीसरी ध्वनि-घोष से स्थान गूंज उठा।

ब्राह्मणों के नेत्रों से क्रोध-ज्वाला निकलने लगी।

राजा उनकी भयावह मुद्रा देखकर भयभीत हो गया। उसकी समझ में नहीं आया, क्या करे। वह कुछ कहना ही चाहता था कि ब्राह्मणों ने उसे शाप दिया, "सर्प हो जाओ !"

राजा शाप सुनते ही, कांप उठा। ब्राह्मणों के पैरों पर गिर पड़ा। क्षमा मांगने लगा। अपने कर्म के लिए पश्चात्ताप किया। अनेक प्रकार से ब्राह्मणों को प्रसन्न करने का प्रयास करने लगा।

"राजन् ! तुम्हारी क्या इच्छा है ?" राजा के विनय से ब्राह्मण सरल हुए।

"महात्मन् ! शाप से मुझे मुक्त कीजिए।"

"शाप की शान्ति होगी।" ब्राह्मणों ने सस्मित कहा।

"किस प्रकार, विप्रवर ?"

"सम्पूर्ण रामायण एक दिन सुनने पर शाप-मोचन होगा।"

राजा ने सादर ब्राह्मणों की वन्दना की।

राजा शापग्रस्त हुआ। सर्प बन गया। सर्प बने राजा को उष्ण स्वास के धूम से काश्मीरी जनता पहचानती थी। शापग्रस्त काश्मीरेन्द्र तृष्णा से व्याकुल राजा नहुष के समान सर्प बना दामोदर सूद में यत्र-तत्र घूमता दिखाई देता था। काश्मीर के नर-नारी राजा की इस दुर्दशा पर आंसू गिराने न थकते।

आधार-ग्रन्थ राजतरंगिणी तरंग १ १५-१६७।

जविष्क-कनिष्क-हविष्क

राजा दामोदर के पश्चात् काश्मीर में तीन तुरुष्क राजा हुए। उनके नाम जविष्क, कनिष्क एवं हविष्क थे। वे शक थे। इतिहास-लेखक उन्हें कुशानवंशीय कहते हैं।

दामोदर के पश्चात् और कुशानवंशीय राजाओं के मध्य कितने राजा हुए अथवा काश्मीर की राजनीतिक अवस्था क्या थी, इस पर किसी दिशा से कुछ प्रकाश नहीं पड़ता।

'तुरुक्ष' शब्द ऋग्वेद में दास के लिए प्रयुक्त किया गया है। यह शब्द आर्येतर जाति और दास हुए आर्यों के लिए प्रयोग किया जाता रहा है। इस शब्द का उल्लेख प्रायः यवनादि राजाओं के सन्दर्भ एवं सम्बन्ध में किया गया है। पुराणों ने तुरुष्कों को 'बाह्यतोः नरा.' शब्द से अभिहित किया है। इससे प्रकट होता है कि तुरुष्क भारत के बाहर से आये थे। काश्मीर की सीमा तुर्किस्तान से पूर्वकाल में मिली थी। आज भी मिलती है। अफगानिस्तान अर्थात् आर्याना से तुरुष्क कुंभा नदी की उपत्यका में आये। वहां से गान्धार में प्रवेश किया। गान्धार में तक्षशिला था। वहां से उन्होंने काश्मीर में प्रवेश किया।

यह मार्ग तुर्किस्तान-काश्मीर सीमावर्ती मार्ग से अधिक सुगम था। गिलगित दिशा से काश्मीर में सेना तथा बड़ी संख्या में जन-समुदाय का प्रवेश, मार्ग की दुरूहता तथा भोजनादि की कमी के कारण कठिन था। शक किंवा कुशानों को काश्मीर की जलवायु तुर्किस्तान जैसी लगी। गान्धार तथा भारत में तुर्किस्तान से अपेक्षाकृत अधिक गर्मी पड़ती थी। अतएव काश्मीर में उनका आबाद होना स्वाभाविक था।

वर्तमान तुर्किस्तान पूर्वकालीन 'तुषार' अंचल था। यही तुर्क किंवा तुरुष्कों का मूल स्थान है। तुशार, तुषार, तोखरी, तुरुष्क, तुर्क सब संज्ञाएं एक ही जाति की बोधक हैं।

तुषार-निवासियों किंवा तुरुष्क जाति का सम्पर्क महाभारत काल से ही भारत के साथ रहा है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में तुषारगण सम्मिलित हुए थे। उनके जिम्मे रसोई परोसने का कार्य दिया गया था।

राजा मान्धाता तुषार राजा थे। महाभारत में उल्लेख है कि वह चक्रवर्ती राजा थे। सात द्वीपों तक उनका साम्राज्य विस्तृत था। तुरुष्क जाति मूलतः हिन्दूकुश

पर्वत के उत्तर दिशा मे निवास करती थी।

मार्कण्डेय पुराण मे तुषार किंवा तुर्कों का उल्लेख काम्बोज, दरद, बबर तथा चीन जातियो के सन्दर्भ मे किया गया है।

काश्मीर का हुष्क राजा भारतीय इतिहास उल्लिखित कुशानवशी राजा हुविष्क था। जुष्क कुशानवशीय राजा वशिष्क था। कनिष्क सुविख्यात भारतीय शक सम्राट् था। तीनो एक ही जाति, वश एव गोत्र के थे।

कल्हण ने कुशानवशीय राजाओं का क्रम हुष्क, जुष्क एव कनिष्क रखा है। यह क्रम भ्रामक है। सम्राट् कनिष्क का हुविष्क पुत्र था। उसकी मृत्यु के पश्चात् काश्मीर राज्य का उत्तराधिकारी हुआ था।

राजा वशिष्क ने जुष्कपुर ग्राम आबाद किया था। यह वर्तमान ग्राम जुकर है। श्रीनगर के उत्तर मे स्थित एक बडा ग्राम है। यहा के विहारो, मन्दिरो तथा देवस्थानो के अलकृत शिलाखण्ड मैने मजारो, कब्रो, जियारतो तथा मस्जिदो मे लगे देखे हैं। आज न वहा विहार है और न कोई देवस्थान। काश्मीरियो के धर्म-परिवर्तन के कारण स्थानों के रूप मे भी आमूल परिवर्तन हो गया है, इतना परिवर्तन हो गया है कि लोग भूल गये हैं कि यह स्थान घट, घडियाल, तूर्य, शख घोष से गुजित मन्दिरो से भरा था। विहारों मे त्रिपिटको का पाठ होता था। बौद्ध भिक्षु मध्याह्न-पूर्व सुआच्छादित होकर वीथियो में पिण्डपात करते थे।

राजा वशिष्क किंवा काश्मीरी नाम जुष्क ने यद्यपि विहारो की स्थापना की थी, परन्तु उसने जयस्वामी की भी स्थापना की थी। सनातन धर्म के प्रति आस्था प्रकट की थी। जयस्वामी[१] विष्णु का मन्दिर था। जविष्क ने अपने नाम पर मन्दिर का नाम जयस्वामी रखा था। प्रतीत होता है राजा बौद्ध होते हुए भी वैष्णव धर्म-प्रेमी था, अन्यथा वह विष्णु की मूर्ति तथा मन्दिर का निर्माण न करता।

राजा सहिष्णु था। उसने काश्मीर की धर्म-सहिष्णुता, धर्म-निरपेक्षता की परम्परा का निर्वाह किया। काश्मीरी जनता मे प्रचलित दोनो सनातन तथा बौद्ध धर्मों का आदर किया। विचार सन्तुलित रखा।

सम्राट् कनिष्क ने कनिष्कपुर बसाया था। यह वर्तमान ग्राम कानिशपुर है। श्रीनगर बारहमूला राजपथ पर स्थित है। यह स्थान था सम्राट् कनिष्क का निवास-स्थान। काश्मीर मण्डल के साथ भारत का शासन-सूत्र यहा से सचालन करता था।

तीनो राजा यद्यपि तुरुष्क वश-उद्भूत थे परन्तु उन पुण्यात्मा राजाओ ने शुष्क लेत्रादि क्षेत्रो मे मठ तथा चैत्यादि का निर्माण कराया था। यह क्षेत्र दुन्त परगना मे हुकालेनर किंवा हुकालेनगी ग्राम है। श्रीनगर से लगभग चौदह मील

---

१ जयस्वामी—इस स्थान का निश्चयात्मक पता नही चला है।

दक्षिण-पश्चिम स्थित है।

जलौकादि राजाओं ने काश्मीर में सनातन धर्म को पुनःप्रतिष्ठापित किया था। परन्तु उक्त तीनों तुरुष्क किंवा शक राजाओं की बौद्ध धर्म की ओर विशेष रुचि थी। उनके समय में कश्मीरी जनता का झुकाव पुनः बौद्ध धर्म की ओर हो गया था। प्रव्रज्या ज्योति से बौद्ध उन शक्तिशाली राजाओं के विस्तृत राज्यकाल में काश्मीर मण्डल का प्रायः उपभोग करते थे।

उस समय भगवान् शाक्य सिंह को इस महीलोक में परिनिर्वाण हुए एक सौ पचास वर्ष, कल्हण की समय-गणना से हुए थे। इस प्रकार कल्हण कुशान राजाओं का काल भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के डेढ सौ वर्ष पश्चात् देता है। किन्तु सिंहली परम्परा के अनुसार भगवान् का जन्म ईसापूर्व ५४४ वर्ष मे हुआ था। यही कारण है कि भगवान् बुद्ध की पचीससौवी जन्म-शताब्दी समस्त विश्व में सन् १९५६ में मनायी गयी थी।

महाराज अशोक का राज्याभिषेक भगवान् के परिनिर्वाण के २१८ वर्ष पश्चात् हुआ था। यदि कल्हण की काल-गणना मान ली जाय तो कुशानवंशीय राजाओं का काश्मीर में शासन-काल ईसापूर्व ४१६ वर्ष ठहरता है। इस प्रकार अशोक के राज्याभिषेक के ६१ वर्ष पूर्व कुशान राजाओं का काल होता है। हुएनसांग कनिष्क का शासन-काल भगवान् बुद्ध के निर्वाण के ४०० वर्ष पश्चात् रखता है। अस्तु, कल्हण की काल-गणना तुला पर ठीक नही उतरती।

महाराज कनिष्क के समय काश्मीर ने बौद्ध जगत् में अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त की थी। काश्मीर के षड्हर्द्धन[1] (हरवान) में नागार्जुन निवास करता था। वह कल्हण के मत से बोधिसत्व भी था।

हरवान में सम्राट् कनिष्क के समय में चतुर्थ बौद्ध परिषद् हुई थी। वहां से प्राप्त सामग्रियों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि तत्कालीन काश्मीरी संस्कृति, सभ्यता तथा वहां का कलात्मक विकास अपूर्व था। काश्मीर में हाथी नहीं मिलते, परन्तु हरवान से प्राप्त मृत्तिका पात्र पर हाथी का चित्र मिलता है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि भारत के अन्य भागों के समान काश्मीर में हाथी खूब मिलते थे। वे सेना के काम में भी आते थे। योगाभ्यास का भी हरवान केन्द्र था। काकासनादि मुद्रा में बैठे योगियों की आकृतियां खपड़ों तथा पात्रों पर बनी मिली हैं।

नागार्जुन महा मेधावी विद्वान् था। बौद्ध धर्म के माध्यमिक सम्प्रदाय का समर्थक था। यह दर्शन शून्यवादी कहा जाता है। नागार्जुन की दृष्टि में मूल तत्त्व शून्य है। आधुनिक युग में नागार्जुन दर्शन का पुनर्जागरण हुआ है।

---

१. हरवान—इसका प्राचीन नाम षड्हर्द्धन है।

एक मत है, नागार्जुन ने अश्वघोष से काशी में शिक्षा प्राप्त की थी। प्रथम सम्पर्क बौद्ध महायान सिद्धान्त से यहीं हुआ था। नागार्जुन की बीस रचनाएं आज चीनी साहित्य में उपलब्ध हैं। इस महान हरवान निवासी नागार्जुन की मूर्ति काश्मीर से दो हजार मील दूर नालन्द के खनन-कार्य में सन् १९२० में प्राप्त हुई है। इसी से प्रकट होता है कि काश्मीर की इस महान् आत्मा का समस्त भारत में कितना आदर था। सम्राट् कनिष्क 'बुद्ध चरित्र' के प्रसिद्ध लेखक अश्वघोष के संरक्षक थे।

सम्राट् कनिष्क द्वारा काश्मीर में आयोजित चतुर्थ बुद्ध परिषद में त्रिपिटकों के पाठ का शुद्धीकरण किया गया। उन्हें ताम्र पत्रों पर खुदवाकर काश्मीर में किसी स्तूप अथवा चैत्य में गाड़ दिया गया। ये ताम्रपत्र अभी तक काश्मीर में नहीं मिले हैं। यदि वे कभी खनन-कार्य में मिल जाएं तो काश्मीर विश्व में त्रिपिटकों का शुद्ध पाठ देने का गौरव प्राप्त अनायास कर लेगा।

सम्राट् कनिष्क ने काश्मीर के विहारों, चैत्यों, मठों की परम्परा कायम की। उसने गिरते बौद्ध धर्म को काश्मीर में पुनः उठाने का प्रयास किया। काश्मीर में कनिष्क का राज्यकाल भारत के इतिहास का उज्ज्वल पृष्ठ है।

कनिष्क ने राज्य, धर्म तथा शासन तीनों की आदर्श मर्यादा स्थापित की थी।

विश्व को दो सम्राट् देने का श्रेय काश्मीर को प्राप्त है। प्रथम सम्राट् अशोक तथा द्वितीय सम्राट् कनिष्क थे। क्या काश्मीरवासी यह गौरव नहीं करेंगे कि काश्मीर ने दोनों महान् सम्राटों के जीवन में परिवर्तन लाने, उन्हें मानव बनाने, उन्हें आदर्श सम्राट् होने के लिए पृष्ठभूमि प्रस्तुत की थी?

कनिष्क का राजनैतिक महत्त्व धार्मिक महत्त्व से कुछ कम नहीं था। उसका साम्राज्य पश्चिम में चीनी तुर्किस्तान से लेकर पूर्व में गाधिपुर तथा दक्षिण में चम्बल और विन्ध्या पर्वतमाला तक विस्तृत था। जिस समय वह सिंहासन पर बैठा था उसका पैतृक साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था। प्रदेश स्वतन्त्र हो गये थे। केन्द्रीय शक्ति दुर्बल हो गयी थी।

वह साम्राज्य के संगठन में लग गया। इसके लिए उसने भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों शक्तियों का आश्रय लिया। सर्वप्रथम उसने काश्मीर का शासन संगठित किया। काश्मीर उसका धार्मिक तथा राजनैतिक कार्यक्षेत्र बन गया।

सम्राट् का अधिक समय चीन तथा मध्य एशिया की लड़ाकू जातियों से संघर्ष करते बीता था। उसने खोतान, यारकन्द और काशगर के राजाओं को परास्त किया, उन पर राज्य किया।

कनिष्क ने अपने साम्राज्य की दो राजधानियां बनाई थीं। शीतकालीन राजधानी पुरुषपुर अर्थात् पेशावर और ग्रीष्मकालीन राजधानी कपिसा अर्थात् अफगानिस्तान स्थित बेग्राम था। इसके अतिरिक्त नगहार (जलालाबाद) की सुन्दर उपत्यका में भी शरद तथा वसन्त ऋतु सम्राट् व्यतीत करता था।

एक मत है कि कनिष्क का झुकाव पारसियों के धर्म की तरफ प्रारम्भ में था। किन्तु उसका मत-परिवर्तन होता गया। वह हिन्दू देवताओं की भी उपासना करता था, यद्यपि बौद्ध धर्म को मान्यता उसने अधिक दी थी।

काश्मीर के बौद्ध और नागार्जुन के प्रभाव से उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। उस पर बुद्धघोष का भी प्रभाव पड़ा था। वह महायान सम्प्रदाय का समर्थक बन गया। वह सभी बौद्ध सम्प्रदायों एवं धर्मों का आदर करता था।

उसकी मुद्राओं पर हिन्दू, बाख्तरी, यूनानी तथा ईरानी देवताओं की मूर्तियां टंकणित मिलती है। वह अपनी मुद्राओं पर गान्धार राजा पद से अभिहित करता था। उसकी मुद्राएं ईरान, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान से लेकर मथुरा, श्रावस्ती, सारनाथ और गोरखपुर तक पायी गयी हैं।

कनिष्क के समय में पाटलिपुत्र से हटकर बौद्ध धर्म, दर्शन, प्रचार एवं विद्या का केन्द्र काश्मीर तथा गान्धार हो गया था। उस समय गान्धार क्षेत्र में काबुल नदी की अधो-उपत्यका, जिसमें पुरुषपुर (पेशावर), पुष्कलावती (चारसद्दा) तथा हद्दा (जलालाबाद) के जिले शामिल थे, गान्धार प्रदेश में हजारा, रावलपिण्डी के जिलों के साथ तक्षशिला भी प्रायः सम्मिलित होता तथा निकलता रहा है।

इसी प्रकार कपिसा सम्राट् की ग्रीष्मकालीन राजधानी थी। वहां अगणित विहार तथा चैत्यों का निर्माण किया गया था। कनिष्क ने यहां चीन के राज-पुत्रों को बन्दी बनाकर रखा था। चीन के राज-पुत्रों ने कपिसा में विशाल श्रीविहार का निर्माण कराया था। चीनी यात्री हुएनसांग ने अपने पर्यटन काल में इस विहार को अच्छी हालत में देखा था।

गान्धार से बौद्ध धर्म अफगानिस्तान होते, पश्चिम में अरब, मिस्र तथा रोम तक और उत्तर में तुर्किस्तान और मध्येशिया में पहुंचा था। काश्मीर से बौद्ध धर्म लद्दाख, तिब्बत, चीन, कोरिया, जापान की यात्रा करते अलास्का के मार्ग से अमेरिका तक गया था।

कनिष्क ने केवल काश्मीर में ही बौद्ध विहार, स्तूप तथा चैत्यों का निर्माण नहीं कराया था। उसने पेशावर (पुरुषपुर), में जो उदयन प्रदेश का एक अंचल था, संघाराम का निर्माण कराया था। वहां पर उसने एक सौ पचास फुट ऊंचा स्तूप बनवाया था। उस समय वह विश्व में सबसे ऊंचा स्तूप था। कनिष्क ने समस्त काश्मीर मण्डल धर्मार्थ अर्पण कर दिया था।

कनिष्क ने तत्कालीन विद्वानों का उत्तम संग्रह किया था। उनमें अश्वघोष, वसुमित्र, नागार्जुन तथा चरक थे। उक्त विद्वानों का सम्बन्ध काश्मीर से विशेष था। उन्होंने काश्मीर की विचारधारा को प्रभावित किया था। काश्मीर जगत् तथा विश्व को उनकी देन अपूर्व है।

कनिष्क के समय में यूनानी-बौद्ध शाखा कला का विकास हुआ था। यूनान

की मूर्तिकला के प्रभाव के कारण बुद्ध की मूर्ति सर्वप्रथम भारत में बनायी गयी। जातक कथाओं को भी स्तूपों तथा चैत्यों पर खुदवाया जाने लगा। अफगानिस्तान के विद्वानों का मत है कि इस कला को आर्यन बुद्ध शाखा कहना चाहिए।

सन् १९३६ में कुन्दूज (कोहिन दिज) तथा तिरमिज के समीप हुए खनन कार्य से बाल्हीक (बलख) के एक कला-शाखा का पता चला है। पुरातत्त्व विद्वानों का मत है कि यूनानी-बाख्तरी तथा यूनानी-बौद्धकला का विकास बलख में हुआ था। वह कला प्रथम शताब्दी में मुख्यतः कनिष्क के समय गान्धार में आकर और विकसित हुई। उसका नाम गान्धार शैली पड़ गया।

गान्धार कला का सर्वप्रथम पता सन् १८३३-३४ में चला था। काबुल के समीप भगवान् बुद्ध-सम्बन्धी मूर्तियाँ तथा अलंकृत शिलाएँ मिली थीं। निस्सन्देह कनिष्क के समय में गान्धार कला अपनी पूर्ण गरिमा पर पहुँच गयी थी। उसने काश्मीर की मूर्ति, भास्कर, स्थापत्य तथा वास्तुकला को प्रभावित किया था। यूनानी मूर्तिकला के माध्यम से गान्धार कला ने बौद्ध विचारों को मूर्तिमान् किया था।

काश्मीर में राजा हुविष्क ने हुष्कपुर ग्राम स्थापित किया था। यह ग्राम आज भी बारहमूला से दो मील दक्षिण पूर्व वितस्ता के वाम तट पर उशकर नाम से प्रख्यात है। वर्तमान बारहमूला के डाक बंगला से आधा मील पर स्थित होगा। कल्हण ने इस स्थान को बाराह क्षेत्र में रखा है।

हुष्कपुर काश्मीर का सांस्कृतिक एवं धार्मिक केन्द्र था। कालान्तर में राजा ललितादित्य ने यहाँ पर विहार तथा मन्दिरों का निर्माण कराया था। चीनी पर्यटक ह्वेनसांग ने यहाँ निवास किया था, ऐसा प्रकट होता है। हुष्कपुर की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति थी। वह विद्या का केन्द्र था, अन्यथा विदेशी यात्री ह्वेनसांग वहाँ आकर अध्ययन एवं निवास न करता। वह बौद्ध तथा हिन्दू दोनों दर्शनों एवं धार्मिक ज्ञानार्जन का केन्द्र था।

मैंने अपनी काश्मीर-यात्रा में यहाँ एक ऊँचे टीले पर विशाल शिवलिंग देखा था। उस पर धनुष-बाण के चिह्न बने हैं। वह शिवलिंग लगभग छह फीट ऊँचा है। दूसरा भग्नावशेष मुकुलित शैली के अधिष्ठान पर निर्मित स्तूप है। स्तूप का केवल अधिष्ठान मात्र शेष रह गया है। स्तूप के अलंकृत शिलाखण्ड तथा प्रस्तर ग्रामवासी उठा ले गये हैं। कुछ जियारतों तथा मस्जिदों में लगे हैं। यहाँ से प्राप्त खण्डित मूर्तियों पर गान्धार शैली की छाया है। इससे प्रकट होता है गान्धार तथा काश्मीर की सीमा-मिलन के साथ कला तथा व्यापार का मिलन भी हुआ था।

आधार-ग्रन्थ राजतरंगिणी १ १६८-१७३, ह्वेनसांग १ २०, ऋग्वेद २ ४६ ३२, वायु-पुराण २ ३७, ९९ ३६० ९२,२७२ १९ २१, ब्रह्माण्ड पुराण ३ ६३ ६८-७३ ३ ७४ १७२-१७६, भागवत पुराण १२ १ ३०; मार्कण्डेय पुराण ५७ ३९, विष्णु पुराण ४ २४ ५३, महाभारत-सभा पर्व ५० १८५०, वन पर्व ५१ २५-२६, १७२ २१, शान्ति पर्व ६५ २४२९।

अभिमन्यु प्रथम

सम्राट् कनिष्क के पश्चात् निर्भीक एवं निष्कंटक अभिमन्यु काश्मीर का राजा हुआ। राजपथ कण्टकाकीर्ण कहा गया है। प्रथम वर्ग के कण्टक, दायाद, कुटुम्बी तथा सम्बन्धियों से वह मुक्त था। द्वितीय वर्ग के कण्टक, उत्तराधिकारियों एवं राज-लिप्सायुक्त जनों से दूर था। तृतीय वर्ग कण्टक, महत्त्वाकांक्षी सेनापति, आमात्य, मन्त्री एवं राज्यलोलुप राज्याधिकारियों के भय से रहित था। उसके सगे-सम्बन्धी उससे स्नेह करते थे। उसके उत्तराधिकारी राजा की उत्तरोत्तर वृद्धि चाहते थे। अधिकारी राजा की शक्ति तथा उत्कर्ष की कामना करते थे। राजा की वृद्धि मे अपने अधिकार-सीमा की वृद्धि देखते थे। इन दृष्टियों से राजा भाग्यवान था।

राजा की प्रवृत्ति धार्मिक थी। उसने कण्टकोत्स अग्रहार ब्राह्मणों को दान दिया था। आजकल का यह वीरु परगना में कन्कोर ग्राम है। हुवनितर ग्राम से अधिक दूर नही है। वह राजा इस पृथ्वी पर द्वितीय इन्द्र तुल्य था।

राजा ने काश्मीर मण्डल में अभिमन्युपुर नगर स्थापित किया। वह नगर विस्तृत था, वैभवशाली था। विशाल अट्टालिकाओं से मण्डित था। यह नगर वर्तमान श्रीनगर से चार मील नैऋत्य दिशा मे स्थित था। मूल अभिमन्युपुर नाम बिगड़कर इस स्थान का वर्तमान नाम 'बिमयन' ग्राम है।

अभिमन्युपुर मे शशांक शेखर का मन्दिर बनवाकर राजा ने उसमें शिव की प्रतिष्ठा की थी। अभिमन्युपुर नगर का मन्दिर आभूषण था। उस मन्दिर की भव्यता के कारण अभिमन्युपुर दिगंत में प्रसिद्ध हो गया था। नगर का हृदय वह मन्दिर था। सामाजिक एवं धार्मिक जीवन का केन्द्र था।

कुशान राजाओं, मुख्यतः सम्राट् कनिष्क के पश्चात् राजा अभिमन्यु ने काश्मीर की जनता को पुनः शैव धर्म की ओर मोड़ा। उसने शैवधर्म को मान्यता दी। बौद्धमत का विरोध न करते हुए भी, शैव मत को प्रश्रय प्रदान किया। राजा शैव धर्म की ओर झुका था। यह देखकर जनता के जीवन ने मोड़ लिया।

अभिमन्यु के समय काश्मीर में चौथी धार्मिक क्रान्ति हुई थी। सर्वप्रथम धार्मिक क्रान्ति सम्राट् अशोक ने बौद्ध धर्म को राज्याश्रय देकर की थी। द्वितीय क्रान्ति अशोक-पुत्र जलौक ने पुनः सनातन धर्म प्रतिष्ठित कर दी थी। तृतीय क्रान्ति सम्राट् कनिष्क

ने पुनः बौद्ध धर्म को राज्याश्रय प्रदान कर दी थी। चौथी क्रान्ति राजा अभिमन्यु ने सनातन धर्म को पुनः प्रतिष्ठित कर दी थी।

काश्मीर के इतिहास की वह एक विचित्रता है। वहां धार्मिक क्रान्तियां होती रहीं, परन्तु राज-विप्लव का रूप नहीं लिया। मतों का प्रभाव समयानुसार व्याप्त होता रहा, क्षीण होता रहा। काश्मीर की जनता उनको समयानुकूल स्वीकार करती रही अस्वीकार करती रही। जनता तथा राजा में धर्मविषयक प्रश्न को लेकर कभी विवाद नहीं हुआ,-कभी संघर्ष नहीं हुआ। काश्मीर इस दृष्टि से विश्व इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

बौद्ध मत के प्रचार के साथ पाली भाषा का प्रचार अनिवार्य था। बौद्ध ग्रन्थ पाली भाषा में थे। काश्मीर और काशी संस्कृत साहित्य के हृदयस्थल थे। संस्कृत साहित्य यहां विकसित हुआ था। संस्कृत पठन-पाठन को बौद्धों के कारण ठेस लगी थी।

अभिमन्यु ने अनुभव किया, संस्कृत साहित्य लुप्त होता जा रहा था। उसने इस प्रक्रिया को रोकने का बीड़ा उठाया। पाणिनि के व्याकरण को लोग भूल गये थे। पाणिनि पर लिखे पतञ्जलि भाष्य को भी लोग भूल गये थे। कभी के संस्कृत केन्द्र काश्मीर में संस्कृत व्याकरण लुप्तप्राय हो गया था। संस्कृत साहित्य के लिए काश्मीर में वह सबसे अधिक अन्धकारमय काल था।

कुशान राजा तुर्क थे। उन्हें संस्कृत से प्रेम नहीं था। उनकी वह मातृभाषा नहीं थी। बौद्ध धर्म-प्रेम ने उनमें पाली के प्रति रुचि उत्पन्न की। बौद्ध जगत् पाली का अध्ययन करने लगा। संस्कृत अपने स्थान पर जैसे सो गयी थी।

राजा अभिमन्यु ने चन्द्राचार्य का सहयोग प्राप्त किया। चन्द्राचार्य ने लुप्त-प्राय पतञ्जलि भाष्य का जनता में प्रचार किया। साथ ही उसने स्वरचित व्याकरण का भी प्रचार संस्कृत भाषा को पुनर्जीवित करने के लिए किया।

चन्द्राचार्य का नाम चन्द्रगोमि था। चन्द्राचार्य तथा चन्द्र नाम से इनकी ख्याति थी। चन्द्राचार्य ने चन्द्र व्याकरण की रचना की। उसे चान्द्र व्याकरण कहते थे। वह व्याकरण सरल तथा बोधगम्य थी। संस्कृत अध्ययन-अध्यापन के लिए उपयोगी सिद्ध हुई।

सुधी बोधिसत्व नागार्जुन द्वारा पालित, बौद्ध उस समय काश्मीर मण्डल में प्रबल हो उठे थे। बौद्ध विद्वानों ने काश्मीर में बौद्ध मत का ह्रास होते देखकर, पूरी शक्ति से उसे पुनप्रतिष्ठित करने का प्रयास किया।

आगम द्वेषी बौद्धों ने अपने विरोधी निखिल विद्वानों को वाद में परास्त कर, नीलमत पुराणोक्त धार्मिक क्रियाओं को उच्छिन्न कर दिया।

काश्मीर मण्डल में पुराने विहित आचार विलुप्त हो गये। बलि कर्म विच्छिन्न हो गया। परम्परागत पूजा, कर्मकाण्ड आदि बन्द हो जाने के कारण, नाग क्रुद्ध

हो गये। महान् तुषारपात होने लगा। हिमवर्षा के कारण काश्मीर मण्डल श्मशान तुल्य हो गया।

राजा बौद्धोंका विरोध नहीं कर सका। बौद्ध अपने तर्क तथा बुद्धि से सनातन-धर्मी विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किये थे। राजा इस प्रसंग में कुछ कर नहीं सकता था। उसने राजशक्ति का आश्रय बौद्धों की बढ़ती शक्ति दबाने के लिए नहीं किया। यह उसने उचित भी नहीं समझा। निरपेक्ष दर्शक मात्र रह गया।

किन्तु काश्मीर की नाग-शक्ति क्रुद्ध थी। उन्हें सनातन-व्यवस्था का नष्ट होना सुनकर प्रतीत नहीं हुआ। प्राकृतिक शक्ति की सहायता नागों ने ली। प्रति-वर्ष भयंकर हिम-वर्षा होने लगी। राजा परेशान हो गया। काश्मीर-त्याग के अतिरिक्त और कोई मार्ग उसे नहीं सूझा।

वर्ष में छः मास काश्मीर-मण्डल का त्याग कर देता था। स्वयं अपने स्वजन तथा पार्षदों सहित दर्वाभिसार जाता था। शीत-ऋतु समाप्त होने पर पुनः काश्मीर मण्डल में प्रवेश करता था।

दर्वाभिसार रावी तथा वितस्ता (झेलम) नदियों के अधोभागीय मध्य पर्व-तीय अंचल था। वर्तमान राजौरी का पर्वतीय क्षेत्र दर्वाभिसार में सम्मिलित था। प्रतीत होता है दर्वाभिसार काश्मीर राज्य के अन्तर्गत था। सिकन्दर के आक्रमण-काल में दर्वाभिसार का राजा सिकन्दर के आश्रय में आया था। उसने सिकन्दर को भेंट दी थी।

दर्वाभिसार की विचित्र अवस्था थी। कभी वह काश्मीर राज्य के अन्तर्गत हो जाता था। कभी काश्मीर राजा के दुर्बल होने पर स्वतंत्र हो जाता था।

दर्व एक जाति थी। यह जाति बल्लावर तथा जम्मू में रहती थी। चनाब तथा रावी का मध्यवर्ती भूखण्ड दर्व जनपद था। पुराणों में उनका उल्लेख त्रिगर्त अर्थात् कांगड़ा के साथ आया है।

अभिसार प्रदेश का उल्लेख बृहद्संहिता में वाराहमिहिर ने किया है। अभिसार जनपद झेलम-चनाब के मध्य था। दर्वा तथा अभिसार दो भिन्न जनपद थे। दोनों जनपदों को मिलाकर दर्वाभिसार नाम पड़ा था। काश्मीर के अधीन उस समय दोनों जनपद थे। इसलिए उनका एकसाथ उल्लेख किया गया है कि राजा शीत ऋतु में दर्वाभिसार में चला जाता था। यह बात आजकल भी प्रचलित है। शीत ऋतु में काश्मीर का सचिवालय जम्मू में आ जाता है। वहीं विधान सभा की बैठक होती है। यह प्रथा, प्रतीत होता है, राजा ने काश्मीर उपत्यका तथा बाहर के क्षेत्रों पर सम्मिलित शासन करने के लिए चलायी थी।

काश्मीर के ब्राह्मणों ने इस प्राकृतिक विप्लव से बचने का प्रयास किया। प्रकृति तथा दैव उनका सहायक हुआ। उस समय किसी अलौकिक शक्ति के प्रभाव

के कारण जिन काश्मीरी ब्राह्मणों ने बलि तथा होम विधिवत् किया, उनका नाश नहीं हो सका। परन्तु कर्मकाण्डहीन बौद्धों का निधन हिमपात के कारण होने लगा। राजा बौद्धों का प्राबल्य रोकने में असमर्थ हो गया, तो उस समय प्रकृति काश्मीर में बौद्धों का प्राबल्य रोकने के लिए स्वत अग्रसर हुई थी। इस प्रहार के कारण बौद्धों का प्राबल्य एवं उनकी शक्ति काश्मीर मण्डल में क्षीण हो गयी।

प्राकृतिक उत्पातों से मण्डल की रक्षा करने के लिए काश्मीर नागाओं के राजा तथा रक्षक नील नाग को प्रसन्न करने के लिए चन्द्रदेव तपस्या करने लगा।

काश्यप गोत्रीय चन्द्रदेव द्विज की घोर तपस्या से नील नाग प्रसन्न हुए। तुहिन विप्लव शान्त हो गया। नील नाग ने नीलमत पुराणोक्त यज्ञादि विधियाँ पुन सविस्तार चन्द्रदेव को समझायी। चन्द्रदेव ने लुप्तप्राय आर्य संस्कृति, धर्म एवं व्यवहार की रक्षा का बीड़ा उठाया।

आद्य चन्द्रदेव ने यक्ष विप्लव का शमन किया था और द्वितीय चन्द्रदेव ने काश्मीर मण्डल में दु सह भिक्षु विप्लव शान्त किया।

नीलमत पुराण चन्द्रदेव ब्राह्मण तथा नील समागम का विस्तृत उल्लेख करता है। एक मत है, नीलमत पुराण की इसी काल में रचना की गयी थी। नीलमत पुराण से प्रतीत होता है। चन्द्रदेव काश्यप वंशीय ब्राह्मण थे। वृद्ध थे।

शीत ऋतु तथा तुहिनपात के कारण काश्मीरी आश्वयुज मास में काश्मीर उपत्यका का त्याग कर देते थे।

वृद्धावस्था के कारण चन्द्रदेव काश्मीर उपत्यका का त्याग नहीं कर सका। पिशाच उसके साथ क्रीड़ा करने लगे। उसे रस्सियों से पहले बाँधकर रखा। तत्पश्चात् उसे मुक्त कर दिया।

चन्द्रदेव की समझ में नहीं आया, वह क्या करे? वह उपत्यका में यत्र-तत्र विचरण करने लगा। पर्यटन करते करते वह नील नाग के निवासस्थान पर पहुँचा। नील को उस वृद्ध ब्राह्मण की अवस्था पर दया आयी। उसने अतिथि रूप से उसका आदर सत्कार किया। पिशाचों तथा शीत निवारण हेतु नील नाग ने अनेक क्रियाएँ बतायी।

चैत्र मास में काश्मीरी पुन उपत्यका में लौट आते थे। वे लौटकर आये। उन्हें देखकर आश्चर्य हुआ, चन्द्रदेव पूर्ण स्वस्थ तथा हृष्ट-पुष्ट था। आश्चर्य-चकित लोगों ने उसे राजा के सम्मुख उपस्थित किया। चन्द्रदेव ने सब घटनाएं अक्षरश राजा से वर्णन की। राजा एवं प्रजा दोनों ने चन्द्रदेव के स्वस्थ तथा सुरक्षित रहने का कारण समझा।

राजा एवं प्रजा के आग्रह पर चन्द्रदेव ने नील नाग द्वारा विहित पूजा तथा क्रिया की विधि बतायी। राजा तथा प्रजा दोनों प्रसन्न हुए। नील नाग की बतायी पुरातन बलि, होम तथा आचार की पुनर्स्थापना काश्मीर मण्डल में हुई। परिणाम-

स्वरूप काश्मीर उपत्यका पिशाच-भय एवं उपद्रव से विहीन हो गयी।

कल्हण ने नील मत पुराण वर्णित 'पिशाच' शब्द के स्थान पर 'यक्ष' शब्द का उल्लेख किया है। कतिपय लेखकों ने पिशाच एव यक्ष को समानार्थक माना है। किन्तु यक्ष तथा पिशाच दो विभिन्न जातियां थी। पिशाच-गण पैशाची भाषा बोलते थे, जिसमें गुणाढ्य ने 'कथा-सरित्सागर' लिखा है। उसका संस्कृत अनुवाद काश्मीरी पंडित सोमदेव ने किया है।

वर्णनों से प्रतीत होता है कि यक्ष संस्कृत भाषा बोलते थे। वे काश्मीर मण्डल के उत्तर दिशा में रहते थे। पिशाच काश्मीर मण्डल तथा उसके पश्चिम-दक्षिण दिशा में निवास करते थे। यक्ष धर्मविहित कार्य करते थे, परन्तु पिशाचों का आचार-विचार भिन्न था। वे धर्म-विरोधी तथा अविहित कार्य भी करते थे। अभिमन्यु का उत्तरार्द्ध जीवन किस प्रकार बीता, इस पर कहीं से कुछ प्रकाश नहीं पड़ता।

आधार ग्रन्थ : राजतरंगिणी तरंग १ : १७४-१८४।

गोनन्द तृतीय, विभीषण, इन्द्रजीत, रावण, विभीषण द्वितीय

अभिमन्यु के पश्चात् राजा गोनन्द तृतीय काश्मीर मण्डल का राजा हुआ। गोनन्द तृतीय ने किस प्रकार राज्य प्राप्त किया, उसका वंश-गौरव क्या था आदि पर काश्मीरी पुरा साहित्य किंचित् मात्र प्रकाश नहीं डालता। सम्भव है, राजा अभिमन्यु के समान उसने अपने भाग्य अथवा पराक्रम से राज्य प्राप्त किया था।

राजा गोनन्द ने पूर्ववत् नाग-यात्रा, नाग यज्ञादि प्रवर्तित किया। वह बौद्धों के प्रभाव में नहीं आ सका। राजा ने नील नाग द्वारा विहित विधियों को प्रवर्तित किया। काश्मीर मण्डल बौद्ध भिक्षुओं तथा हिम दोनों दोषों से मुक्त हो गया। दोनों दोष सवन शान्त हो गये।

कल्हण कहता है, "प्रजा के पुण्य के कारण समय-समय पर ऐसे नृपों का जन्म सम्भव होता है, जो अत्यन्त छिन्न-भिन्न हुए राज्य का योजन करते हैं। जो प्रजा-पीडक राजा होते हैं, वे कुलसहित नष्ट हो जाते हैं, और जो नष्ट राज्य का सुव्यवस्थित करते है, उनके वंश की अनुगामिनी श्री होती है। विज्ञ जन राजाओं के इन प्रतिवृत्तान्तों को देखकर, भावी भूपालों के शुभाशुभ कर्म को समझ लेते हैं।"

नागार्जुन आदि बौद्ध विद्वानों के कारण बौद्धों की जो प्रगति काश्मीर में हुई थी, वह पुरातन सनातन धर्म एवं संस्कार की तरफ लौटने से रुद्ध हो गयी।

नाग-बलि, नाग-पूजा, होम, यज्ञ तथा विहित कर्म-काण्डों का पुनः काश्मीर में जोर हो गया। राजाश्रय बौद्ध धर्मावलम्बियों को प्रश्रय नहीं दे सका।

राजा गोनन्द ने देश में नव-जागरण किया। देश का नवीकरण किया।

गोनन्द के वंशज प्रवरसेन आदि सिद्ध थे। उन्होंने अपने सुकर्मों से पृथ्वी का चिरकाल तक भोग किया। यह राजा गोनन्द वंश में रघुवंशियों के राजा रघु तुल्य हुआ था। उसने पैंतीस वर्ष तक काश्मीर मण्डल का राज्य किया।

तत्पश्चात् गोनन्द नन्दन विभीषण ने क्षिति की रक्षा तिरेपन वर्ष छः मास तक की। विभीषण के पश्चात् इन्द्रजीत तथा रावण राजाओं ने क्रमशः पैंतीस वर्ष छः मास तथा तीस वर्ष काश्मीर को राजसिंहासन को सुशोभित किया।

रावण शैव मतानुयायी था। वह वटेश्वर शिव की नित्य उपासना किया

करता था। रावण द्वारा पूजित शिवलिंग कल्हण के समय तक पूजित होता रहा। शिवलिंग की एक विशेषता थी। उस पर चमकते बिन्दु तथा रेखाएं समय-समय पर भविष्य की सूचना देती थी। वे बिन्दु तथा रेखाएं परिवर्तित होती रहती थीं, जिनसे विज्ञजन भविष्य का अर्थ लगा लेते थे।

राजा रावण इतना शिवभक्त था कि उसने समस्त काश्मीर मण्डल का राज्य वटेश्वर पर चढ़ा दिया।

चतु:शाला मठ राजा ने निर्माण कराया था। इसी चतुःशाला मठ में वटेश्वर लिंग प्रतिष्ठित था। काश्मीर मण्डल को सर्वप्रथम कनिष्क ने धर्म हेतु अर्पण कर दिया था। इसी प्रकार राजस्थान में मेवाड़ के राणाओं ने मेवाड़ राज्य एकलिंग पर अर्पित कर दिया था। स्वयं अपने को एकलिंगजी का सेवक कहते थे।

चतु:शाला मठ तथा वटेश्वर लिंग काश्मीर में किस स्थान पर थे, अभी तक कुछ पता नहीं चलता है।

रावण के पश्चात् उसका पुत्र महाभुज विभीषण काश्मीर का राजा हुआ। उसने पैंतीस वर्ष छ: मास तक पृथ्वी का शासन किया।

आधार-ग्रन्थ : राजतरंगिणी तरंग १ :१८५-१९६।

नर (किन्नर)

विभीषण के पश्चात् जिस महान् राजा की विरदावली गायी जाती है वह नर किंवा किन्नर काश्मीर का राजा हुआ।

प्रारम्भ में नर सदाचारी था, सुचारु रूप से शासन-व्यवस्था चलाता था। किन्तु उसमें राज्यदोष के कीटाणु घर कर गए थे। उसके शरीर-मन्दिर में उन कीटाणुओं ने क्रमशः बढ़ते, विशाल रूप धारण कर लिया। शरीर-मन्दिर से आचरण, सदाचार, प्रजाप्रियता कीटाणुओं के उग्र रूप को देखकर, पलायन कर गये।

सदाचार आदि गुणों के शरीर से पलायन कर जाने पर, राजा विषय-दोष से ग्रसित हो गया। काश्मीर की जनता के भाग्य विपर्यय के कारण राजा अनर्थ करने लगा। प्रजा त्रस्त हो गयी।

राजप्रासाद में दुराचार ने प्रवेश किया। दुराचार ताप से प्रासाद विदग्ध होने लगा। किन्नर[1] ग्राम में एक विहार था। उसमें एक श्रमण रहता था। उसका अनुराग राजा की प्रिय रानी से हो गया। श्रमण योगी था। उसने योग बल का प्रयोग किया। राज-भवन से रानी का हरण कर लिया।

प्रायः देखा गया है, आचरणहीन, कुपथगामी तथा व्यभिचारी स्वयं कुकर्म करते हैं। कामरत बन जाते हैं। परन्तु चाहते हैं, उनकी मां, बहन, कन्या, प्रिया, स्त्री, कुटुम्ब के लोग, शुद्ध आचरणवान बने रहें। वे इस विषय में सतर्क रहते हैं। स्वयं कामाचारी होने के कारण, वे अपने घर, कुटुम्ब तथा सम्बन्धियों पर कड़ी निगाह रखते हैं। वे कुकर्म के दोषों का अनुभव करते हैं। स्वयं उसमें फँसे रहने पर भी, जब उसमें दूसरे फँसते हैं, तो ईर्ष्या करते हैं, नाराज होते हैं, संयम का त्याग कर देते हैं। यही प्रकृति तथा दुर्बलता राजा नर की भी थी।

राजा ने रानी-हरण की घटना सुनी। वह क्रोध-ज्वर में उन्मादित हो गया। उसने श्रमणों के संहार से अपना क्रोधानल शान्त करना चाहा।

एक श्रमण के दोष के कारण उस अविवेकी नृप ने काश्मीर-मण्डल में स्थापित सहस्रों विहारों को जलवा दिया। उसने मुहूर्त मात्र के लिए विचार नहीं किया। उसका यह कार्य अविवेकपूर्ण था, धर्म-विरुद्ध था। काश्मीर की सहिष्णु

१ किन्नर ग्राम—नागिम परगना में कानिर ग्राम यह हो सकता है।

परम्परा का विरोधी था। उसका यह कार्य ऐसा ही हुआ जैसे एक रावण के अपराध के कारण सारी लंका जल गयी।

विहारों की उठती ज्वालाओं से भी उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ। विहारों की लपटों ने उसकी क्रोधाग्नि को और प्रज्वलित कर दिया। उसने विहारों पर नड़े ग्रामों को मध्य मठ[१] के निवासी ब्राह्मणों को दे दिया। बौद्धों का आश्रय-स्थान, जीविका-स्थान, दोनों नष्ट कर दिये। यह पहली घटना थी जब किसी धार्मिक स्थान को राजा ने शक्ति प्रयोग द्वारा नष्ट किया था।

राजा ने वितस्ता पुलिन में एक नगर का निर्माण कराया। दिग्विजय द्वारा उपार्जित धन उसने नगर-निर्माण में लगाया। उस नगर में सुन्दर राजपथ थे। नगर अनेक स्थानों से राजपथों द्वारा सम्बन्धित था। राजपथों से आने वाले परिवहनों तथा व्यापारी सामग्रियों से नगर भरा रहता था।

केवल राजपथों से ही व्यापार नहीं होता था। उसने जल-परिवहन भी विकसित किया। वितस्ता नदी की गरिमा जल-परिवहन के कारण बढ़ गयी।

नगर उद्यानों से सुशोभित था। नगर में फलों के उद्यान थे। वे छाया के साथ ही नगर-निवासियों को फल भी देते थे।

उस नगर में पुष्प-उद्यान एवं उपवन सुरुचिपूर्ण ढंग से बनाये गये थे। रंग-बिरंगे फूलों की क्यारियों के पुष्पित पुष्प से नगर की शोभा बढ़ गयी थी। वहां अनायास ही मानव विश्राम एवं मनःशान्ति प्रकृति की सुषमा में पाता था।

वह नगर फल एवं पुष्प उद्यानों से इतना अधिक सुसज्जित किया गया था कि स्वर्ग-सदृश प्रतीत होता था। कुबेर की अलकापुरी उसके सम्मुख तुच्छ लगती थी।

यह नगर विजयेश्वर क्षेत्र के समीप था। यहां से विजब्रोर अथवा विजयेश्वर एक मील अधोभाग मे एक उदर है। उसे आज तस्कदर कहते हैं। यह पुराना चक्रधर का स्थान है। तस्कदर शब्द चक्रधर का अपभ्रंश है। वितस्ता इस स्थान पर प्रायद्वीप बनाती है। यहां पर वितस्ता पुलिन में प्राचीन यूनानी तथा भारतीय शककालीन मुद्राएं मिली हैं।

इससे स्पष्ट प्रकट होता है, राजा द्वारा निर्मित नगर यही था। यहीं पर राजा ने उक्त नगर बसाया था। देश-विदेश के व्यापारी इस स्थान पर आते थे। यह स्थान व्यापार-केन्द्र बन गया था। देशी एवं विदेशी मुद्राएं यहां मिलने से प्रमाणित होता है, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार-केन्द्र काश्मीर मण्डल बन गया था।

इसी नगर के किसी एक सुरम्य उद्यान में सुस्वादु जल का निर्मल सरोवर था। सुश्रुआ नाग का निवास-स्थान था। सरोवर उपकूल वृक्षों की घनी छाया में विश्राम योग्य सुख-स्थल था।

---

१. मध्य मठ—इस स्थान का पता नहीं लग पाया है।

किसी समय मध्याह्न काल मे विशाख नामक एक युवक ब्राह्मण दूर मार्ग से थका हुआ वहा आया। सरोवर-कूल मे, पादप की शीतल घनी छाया मे, विश्रान्ति हेतु बैठ गया। पादप तल की सुछाया मे, सुरभित समीर मे उसकी क्लान्ति शमन हो गयी। वह अपने ध्यान से उठा।

उसने सरोवर के स्वच्छ जल मे हाथ-मुह प्रक्षालन किया। आलस्य शीतल जल स्पर्श से दूर हो गया। वह तट पर बैठ गया। सत्तू की पोटली खोली। धीरे-धीरे सत्तू खाने लगा।

उसने ग्रास हाथ मे लिया था कि नूपुर ध्वनि सुन पडी। उस शीतल तट पर विहाररत हसो ने उस ध्वनि को पूर्व ही सुन लिया था। विशाख चकित हुआ। ध्वनि की गति की ओर उसने ध्यानपूर्वक देखा।

नील निचोलधारिणी, चारुलोचना दो कन्याओ को उसने मजरी कुज से निकलती अपने सम्मुख देखा। मनोज धवल अपाग की पतली अजन-रेखा उनके कर्ण-कुण्डल मे लगे पद्मराग नीलमणि के कमलनाल तुल्य लग रही थी। उनके *दोनो स्कन्धो पर मन्द-मन्द मरुत के आन्दोलन मे आकुल मजुल नेत्राचल सौन्दर्य* के पताका पल्लव सदृश लग रहे थे।

उन शशाक आनन कन्याओ को समीप आती देखकर, विशाख ब्राह्मण लज्जा-विमूढ हो गया। उसने सत्तू-भोजन बन्द कर दिया।

उसने किंचित् नेत्र घुमाकर देखा, कमल लोचना दोनो कन्याए कच्छ-गुच्छ फलियाँ खा रही थीं।

'धिक्कार है!' उसने मन ही मन कहा, 'इस रूप का यह भोजन?'

सामान्य तया दयार्द्र उस ब्राह्मण ने उन दोनो कन्याओ को सप्रेम बुलाया। "आप यहा आइयेगा!"

कन्याए समीप आ गयीं। विशाख उनके अनुपम रूप की ओर देखते हुए बोला, "सत्तू खाइये।"

कन्याए मुस्कराई। विशाख ने उन्हे समीप बैठने का सकेत किया। वे हरित दूर्वा स्थली पर समीप बैठ गयीं। विशाख ने उन्हे सत्तू दिया। वे प्रसन्नतापूर्वक खाने लगीं।

विशाख उठा। पत्रपुटक मे स्वच्छ एव शीतल सरोवर जल लाया। उन्हे पीने के लिए दिया। वे कृतज्ञता से दब गयीं। सत्तू खाकर जलपान की।

भोजनोपरान्त, जल से शुद्ध होकर, वे पुन आकर बैठ गयीं। विशाख पत्र ताल वृन्त से उन्हे विजन करता हुआ बोला, "पूर्वकृत सत्कर्मो से आप दोनो का दर्शन प्राप्त हुआ है।"

कन्याए विशाख की ओर देखकर किंचित् बाल-सुलभ चपलता से लज्जित हो गयी।

विशाख युवक-सुलभ चपलता के कारण मृदुल स्वर में बोला, "यदि आप कहें, तो यह जन कुछ जिज्ञासा करना चाहता है ?"

कन्याओं ने अपने नील-कमल लोचनों से उसे कहने का संकेत किया। "कल्याणिनी ! आप दोनों ने कहां और किस पुण्य जाति को अलंकृत किया है ?"

कन्याओं के मस्तक नत हो गये। उनमें से एक बोली, "हम सुश्रुवा नाग की कन्या हैं।"

"सुश्रुवा !" विशाख उनके रूप तथा वंश को जानकर चकित हो गया। उनका उच्च कुल सुनकर उसे प्रसन्नता हुई। कन्याएं किंचित् गर्व का अनुभव करती बोली, "हां।"

"किस कारण से आप इस प्रकार की नीरस एवं क्लान्त वस्तु का भोजन करती हैं ?" विशाख के नेत्रों में करुणा थी।

"सुस्वादु वस्तु के अभाव में हम क्या यह भी न खाएं ?" कन्याओं के नेत्रों में विवशता थी। वे लाचारी प्रकट करती हुई बोली।

"आपके पिता अब क्या चाहते हैं ?"

"पिता ने विद्यावरेन्द्र को मुझे देने की परिकल्पना की है।"

नाग कन्या लज्जित हो गयी। विशाख उसके लज्जा से अत्यन्त वृद्धिप्राप्त स्त्रीजन्य सौन्दर्य को देखकर, मुग्ध हो गया। उसने साहस कर पूछा, "आपका नाम ?"

"मेरा नाम इरावती है।"

"आपका···?"

"इसका नाम चन्द्रलेखा है। हम दोनों बहनें हैं।"

"किन्तु आप इतनी निष्किचन क्यों हैं ?"

"ओह, इसका कारण हम क्या जानें ?" दोनों ने कहा।

"तो ?"

"पिताजी जानते होंगे।"

"उनसे कहां मिल सकूंगा ?"

"ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी के दिन तक्षक नाग की यात्रा में उनका आगमन होगा।"

"कैसे पहचान सकूंगा ?"

"उनके जलस्पन्दी चूड़ा से आप तुरन्त उन्हें पहचान जायेंगे।"

विशाख प्रसन्न हो गया। कन्याएं उठती हुई बोली, "आप हम दोनों को भी उनके समीप देखेंगे।"

"वाह !" विशाख प्रमुदित बोल उठा। कन्याएं तत्क्षण तिरोहित हो गयीं।

जयवन[1] का रम्य स्थान है। समीप ही पवित्र स्वच्छ नाग है। वहां तक्षक नाग की पूजा होती है। यहां पर तक्षक नाग यात्रा का उत्सव अत्यन्त समारोह के साथ प्रतिवर्ष हिन्दू काश्मीर में मनाया जाता था।

काश्मीर के नर-नारी, बाल-वृद्ध, काश्मीर मण्डल के कोने-कोने से इस नाग-यात्रा में सम्मिलित होते थे। लोग सज-धजकर आते थे।

नट, चारण सकुल, प्रेक्षक समाकीर्ण नाग-यात्रा महोत्सव क्रम से आरम्भ हुआ। विशाख यथासमय उत्सव देखने के लिए आया।

कौतुकाकृष्ट द्विज विशाख शीघ्रतापूर्वक मेले में पर्यटन करता हुआ नाग-कन्याओं द्वारा बताये हुए, चिह्नयुक्त नाग की खोज करने लगा।

विशाख ने नाग को देखा। उसे पहचानने में कठिनता न हुई। वह तत्क्षण वर्णित चिह्न से ज्ञात नाग के समीप गया।

नाग के पार्श्व में उसकी दोनों कन्याएं इरावती तथा चन्द्रलेखा बैठी थीं। उन्होंने विशाख के साथ हुए वार्तालाप को सुश्रुवा नाग से बता दिया था।

विशाख को देखते ही कन्याओं ने प्रसन्न-वदन सकेत किया। विशाख अत्यन्त समीप आ गया। कन्याओं को देखकर विशाख प्रसन्न-मन किंचित् मुसकराया। सुश्रुवा के समीप आया ही था कि उस नाग नायक ने कहा

"स्वागत ब्रह्मन्!"

विशाख ने नाग को प्रणाम किया। नाग विशाख के उत्तम स्वरूप को देखकर प्रसन्न हो गया। विशाख में अपनत्व का भाव देखा। विशाख ने कहा, "नाग-राज, प्रसन्न हैं?"

सुश्रुवा की मुद्रा उदास हो गयी। उसने सुन्दर कन्याओं की ओर देखा। उत्सव के महान् कोलाहल की ओर देखा। प्रसन्न मुद्रा में लोगों को नाटक, खेल, इन्द्रजाल, सगीत आदि देखते हुए देखा। उस महान् उल्लासमय वातावरण में केवल सुश्रुवा ही विशाख ब्राह्मण को हतभाग्य व्यक्ति दिखाई दिया। विशाख ने करुण स्वर में पूछा

"नागराज! आप उदास क्यों हैं?"

नाग ने लम्बा निःश्वास लिया। वह तत्क्षण कुछ बोल न सका। कन्याओं की ओर विशाख ने देखा। विशाख की दृष्टि पड़ते ही कन्याओं की दृष्टि नत हो गयी। वे अपने पिता की उदासी से उदास हो गयी। विशाख ने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा, "यदि कष्ट न हो तो क्या मैं आपकी आपदाओं को जान सकता हूं?"

---

१ जयवन—वर्तमान ग्राम जेवन है। श्रीनगर के दक्षिण-पूर्व छह मील पर है।

स्वसनाशन ने आकाश की ओर देखा। उसने गम्भीर गगन में गम्भीरता-पूर्वक देखते हुए कहा, "ब्रह्मन् ! स्वाभिमानी, युक्तायुक्त विवेकी जन, अवश्यमेव भोग्य दुःखों को प्रकाशित करना उचित नहीं समझते।"

"नागवर !" विशाख ने सहृदयता प्रकट करते हुए कहा, "आप ठीक कहते हैं। परन्तु कभी-कभी इसका अपवाद भी देखा गया है।"

"द्विजवर !" नाग ने मन्द स्वर से कहा, "स्वभावतः सज्जन परदुःख सुनकर उपकार करने में असमर्थ होने के कारण हार्दिक व्यथा का अनुभव करते हैं।"

"नागेन्द्र !" विशाख किंचित् संकोच के साथ बोला, "आपकी बातों में तथ्य है। परदुःख देखकर सज्जन स्वभावतः दुःखी होते हैं।"

"ब्रह्मन् !" सुश्रुवा ने समीप ही पुनर्नियों का नृत्य देखते हुए भीड़ की ओर देखकर कहा, "मितमति साधारण जन दुखियों के दुःखों को देखकर, सुनकर, आत्मश्लाघा करता हुआ, उनकी अपेक्षा अपनी वृत्ति श्रेष्ठ समझता है।"

"नागराज !" विशाख ने कहा, "यदि ऐसा न होता तो मितमति की संज्ञा उन्हें क्यों दी जाती ?"

"विशाख !" नाग बोला, "तथापि वे हृदय में शोक धारण करते हुए, सहानुभूतिपूर्ण वचनों से उनकी योग्यता की स्पष्ट निन्दा कर देते हैं।"

"यह खलों का स्वाभाविक गुण है, नागराज !"

"द्विजवर !" सुश्रुवा ने पुनः निःश्वास लेते हुए कहा "वे दुःख बांट तो लेते नहीं, किन्तु दुःख-निवृत्ति हेतु कुत्सित उपायों के आश्रय की मन्त्रणा देते हैं।"

विशाख गम्भीर हो गया। नाग ने मानव-प्रकृति का विश्लेषण किया था। एक मानव होने के कारण उसे ठेस लगी थी। नाग-कन्याएं विशाख की ओर उत्सुकतापूर्वक देखने लगीं। सुश्रुवा नाग ने दीर्घ निःश्वास लेते हुए कहा, "अतएव विवेकियों के मन में आजीवन जीर्ण हुए, सुख-दुःख अन्त में चितानल ही जलाते हैं।"

सुश्रुवा ने अपनी कन्याओं की ओर किंचित् तिरस्कार की दृष्टि से देखते हुए कहा, "स्वभावतः, गम्भीर जनों की आपदाओं को बाहर कौन जान सकता है यदि बालक एवं भृत्य उसे प्रकाशित न करें ?"

दोनों कन्याएं लज्जा से नतमस्तक हो गयीं। उन्हें अपने कर्म पर ग्लानि होने लगी। विशाख से अपनी दुःख-कथा कहकर, उन्होंने अपराध किया था। पिता ने उनके कार्य को अच्छा न समझकर, अपनी राय प्रकट कर दी। कन्याओं को अपराधिनी-तुल्य लज्जित देखकर, विशाख स्वतः लज्जा का अनुभव करने लगा। सुश्रुवा ने अपनी कन्याओं की ओर तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा :

"साधो ! इन दोनों कन्याओं के बाल-स्वभाव द्वारा वस्तुस्थिति प्रकट हो जाने पर आपसे अब क्या गोपनीय है ?"

"नहीं-नहीं-नहीं ! हम दूसरे नहीं हैं।"

"ब्रह्मन् ! आपसे कुछ गोपनीय रखना अब उचित नहीं प्रतीत होता।"

विशाख प्रसन्न हो गया। कन्याओं की लज्जा कम हुई। विशाख उत्साहपूर्वक बोला "नाग ! आप निर्विकार भाव से अपना मन्तव्य कह सकते हैं। मैं उपकृत हूँगा।"

"कल्याणिन् ! सरलात्मा ! आप भी हमारे हित हेतु यदि हो सके, तो किंचित प्रयास कीजिए।"

"निश्चय, निश्चय, नागराज, निश्चय करूँगा।" विशाख ने विश्वास के साथ कहा। नाग-कन्याएं प्रसन्न हो गयीं।

"उस तरु तले मुण्ड जटाधारी व्रती को आप देखते हैं ?"

सुश्रुआ ने संकेत किया। विशाख ने देखा, एक मुण्ड क्रूर मुद्रा परिधान में पादप तले चुपचाप बैठा था। सुश्रुआ नाग तथा कन्याओं की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से कभी-कभी देख लेता था। विशाख मुण्ड की मुद्रा देखकर, किंचित् आश्चर्यचकित हुआ। सुश्रुआ उस मुण्ड की ओर आँख उठाते बोला

"इसी सस्यपाल ने हमें भयभीत कर रखा है।"

"क्यों ?"

विशाख ने चुभती दृष्टि से मुण्ड की ओर देखा। वह मुण्ड अपने-आपमें ही लीन था। उत्सव में होते नाटक, नृत्य, संगीत तथा खेलों का प्रभाव उस पर नहीं प   रहा था। वह जडवत् प्रतीत होता था।

"ब्राह्मण !" सुश्रुआ ने कहा, "यात्रिकों के नवान्न ग्रहण करने के पूर्व नाग अन्न नहीं ग्रहण करते।"

"यह क्यों ?"

"यही नियम है।'

'तो ?"

"यही हमारी दुर्दशा का कारण है।"

"स्पष्ट करिएगा।" विशाख ने मुण्ड की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए पूछा।

"इसके खेतों के रक्षक होते हुए, हम प्रेतों के समान, सरिता-जल तुल्य, फल सम्पत्ति देखकर भी ग्रहण नहीं कर सकते।"

"ओह !" विशाख की घृणापूर्ण दृष्टि यात्रिक मुण्ड की ओर उठी।

"ब्राह्मण !" सुश्रुआ ने आर्त स्वर में कहा, "आप हमारा उपकार करेंगे ?"

"प्राण रहते करूँगा।" विशाख ने निर्निमेष मुण्ड की ओर देखते हुए कहा।

"*आर कोई ऐसा उपाय निकालिए कि यह नैष्ठिक, जिसकी नवान्न न ग्रहण* करने की प्रतिज्ञा है, अपनी प्रतिज्ञा से भ्रष्ट हो जाए।"

"हूँ।" विशाख की मुद्रा गम्भीर हो गयी। वह भूमि की ओर देखने लगा।

कन्याएँ उत्सुकतापूर्वक उसकी ओर देखने लगीं। सुश्रुआ ने नत-दृष्टि पुनः कहा : "ब्रह्मण ! उपकारियों का योग्य प्रत्युपकार करना हम जानते हैं।"

सुश्रुआ की हृदयस्पर्शी बात सुनकर विशाख का हृदय द्रवित हो गया। उसने दृढ़ स्वर में कहा : "ऐसा ही करूँगा।"

नाग-कन्याएँ प्रफुल्लित हो गयी। सुश्रुआ नाग ने अपनी कन्याओं की प्रफुल्लता में देखा, अपनी आपदाओं का अवसान।

यात्रिक मुण्ड दृढ़-निश्चयी था, तथापि विशाख यत्न-तत्पर हो गया। सस्य-पाल मुण्ड को व्रत-भ्रष्ट करने मे लग गया। वह रात-दिन इसी चिन्ता में, इस यत्न मे व्यस्त रहता था कि किस प्रकार यात्रिक व्रती का व्रत नष्ट किया जाय।

विशाख ने नीति से काम लेना उचित समझा। व्रती खेत पर था। कुटी के बाहर बैठा था। भोजन कुटी मे पक रहा था। विप्र ने नैष्ठिक के पकने भोजन पात्र मे छिपकर, नवान्न डाल दिया।

यात्रिक को विशाख के षड्यंत्र का पता नहीं था। सर्वदा की भाँति वह कुटी मे आया। पात्र मे भोजन निकाला। स्वस्थ चित्त खाने बैठ गया।

यांत्रिक के तत्क्षण भोजन ग्रहण करते ही अहीन्द्र ने उपल तथा घनघोर वृष्टि द्वारा खेतों की अत्यधिक उपज हरण कर ली।

नागराज दारिद्र्य-मुक्त हुआ, विशाख से उपकृत हुआ। सरोवर से बाहर निकला। विशाख की बाट में बैठ गया।

विशाख दूसरे दिन सरोवर पर आया। नागराज ने उसका हार्दिक स्वागत किया। उसे हृदय से लगाया। अपने निवास-स्थान पर सादर ले गया।

विशाख नाग-स्थान पर पहुँचा। वहाँ हर प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। नाग-कन्याएँ उसे देखकर आह्लादित हुई, वे उसकी सेवा-शुश्रूषा में तत्पर रहने लगीं।

विशाख दिन-प्रतिदिन अमर्त्यों के सुलभ भोगों से तुष्ट होने लगा।। भोगमय नागस्थान में रहते-रहते उसके मन में नाग-कन्या के लिए अनुराग अंकुरित हुआ। किन्तु शिष्टता का ध्यान कर मुख नहीं खोल सका।

कालान्तर में विशाख घर जाने के लिए उत्सुक हुआ। उसने एक दिन सु-अवसर देखकर सुश्रुआ नाग से निवेदन किया : "महात्मन् ! यदि आज्ञा दें तो मैं स्वगृह के लिए प्रस्थान करूँ ?"

"कुछ दिन और ठहरिये।" नाग ने स्नेह से कहा।

"बहुत दिन हो गये।" कहते-कहते विशाख नीरव हो उठा।

नागराज को अपनी प्रतिज्ञा स्मरण हुई। उसने वर देने की प्रतिज्ञा की थी। प्रस्थान काल का अच्छा अवसर देखकर पूछा "आपके उपकार का प्रत्युपकार मैं किस प्रकार करूँ ?"

विशाख चुप था।

"ब्राह्मण !" सुश्रुआ ने जिज्ञासा की, "मैंने आपको वर दिया है। अपनी इच्छानुसार मेरे सामर्थ्य मे जो हो निःसकोच माँग लें।"

विशाख क्षितिज की ओर देखने लगा। सुश्रुआ ने उसे उत्तर न देते देखकर, प्रोत्साहित किया "द्विजवर ! सकोच का कोई कारण नही दिखाई देता।"

"आप क्या मेरी इच्छा पूर्ति करेंगे ?"

"निस्सदेह।" प्रसन्न दृढ स्वर मे सुश्रुआ ने कहा।

"मैं।" कहते-कहते विशाख ने लज्जा का बोध किया। वह चुप हो गया।

"इसमें लज्जा का आप क्यो अनुभव करते हैं ?"

विशाख नाग उद्यान की सुन्दर कलियों की ओर देखने लगा। सुश्रुआ ने पुन आग्रह किया "कहिये !"

"कहूँ ?" विशाख ने अपनी लज्जा पर विजय पाते हुए जैसे कहा।

"हाँ, मैं अपने वचन का पालन करूँगा।"

"आप रुष्ट तो नहीं होंगे ?"

"आपसे ? नहीं।" सुश्रुआ ने विशाख की ओर गम्भीरतापूर्वक देखते हुए उत्तर दिया।

"मुझे विश्वास है। आप अपनी प्रतिज्ञा का पालन करेंगे।" विशाख ने अपने स्वर मे बल लाते हुए कहा।

"धन्यवाद।" सुश्रुआ ने सस्मित कहा।

"चन्द्रलेखा ।" विशाख की दृष्टि नत हो गयी।

"चन्द्रलेखा !" सुश्रुआ की मुद्रा मे असीम आश्चर्य ने प्रवेश किया।

विशाख नीरव हो गया।

सुश्रुआ ने विशाख को ऊपर से नीचे तक कई बार देखा। 'विप्र ! क्या आप इस सम्बन्ध के योग्य हैं ?"

विशाख की दृष्टि नत थी।

"द्विज ! यह सम्बन्ध अयोग्य है, तथापि मैं कृतज्ञता द्वारा वाग्बद्ध हूँ।"

विशाख दूसरी ओर देखने लगा।

"विशाख !" सुश्रुआ ने निश्चयात्मक स्वर से कहा, "मैं अपने वचन का पालन करूँगा।"

विशाख अपनी विजय पर प्रसन्न होने लगा।

नाग वर से प्राप्त श्री तथा चन्द्रलेखा के साथ नरपुर में विशाख निवास करने लगा। नित्योत्सवों मे वहाँ बहुत समय व्यतीत किया।

भुजेन्द्र की कन्या चन्द्रलेखा अपने पति विशाख को देवता-स्वरूप मानती थी। पतिदेव-स्वरूप मानती थी। शील एवं आचरणादि गुणों से उसे संतुष्ट रखती थी।

किसी समय चन्द्रलेखा अपने सौधाग्र पर खड़ी थी। प्रांगण के बाहर सूखने के लिए धान्य फैला था।

अकस्मात् वहाँ विहरता एक अश्व आया। धान्य खाने लगा। अश्व को हटाने के लिए चन्द्रलेखा ने भृत्यों को पुकारा। परन्तु उस समय कोई भृत्य घर पर उपस्थित नहीं था। शिजान मंजुमजीरा वह स्वयं नीचे उतरी।

वेगपूर्वक आगमन के कारण शीर्शाशुक मूर्धा से खिसक गया था। उसके छोर को एक हाथ से पकड़े हुए, उसने दूसरे पाणि सरोज मे अश्व को दौड़कर मारा।

भोज्य को त्यागकर अश्व भागा। तुरग पर फणि स्त्री के कर-स्पर्श से सौवर्णी पाणि-मुद्रा अंकित हो गयी।

राजा नर ने अश्व देखा। उसकी पीठ पर पाणि-मुद्रा अंकित थी। वह आश्चर्य-चकित हुआ। स्वर्ण-पाणि अंकित अश्व उस नगर में प्रसिद्ध हो गया। उसे सब लोग चकित होकर देखते थे। साथ ही साथ चन्द्रलेखा की आख्यायिका जनरव-माध्यम से चारों ओर प्रख्यात हो गयी।

पता लगाने पर राजा नर को चन्द्रलेखा की बात मालूम हुई। इसके पूर्व चन्द्र-लेखा के सौन्दर्य के विषय में वह सुन चुका था। पाणि मुद्रा देखकर, वह बिना देखे चन्द्रलेखा पर मोहित हो गया। चारुलोचना द्विज वधू के प्रति अनुराग उसमे अंकु-रित हो गया। राजा निरन्तर नाग-कन्या चन्द्रलेखा तथा उसके सौन्दर्य का स्मरण करता था। अनुराग्नि उसे जलाने लगी।

लोकापवाद भयरूपी अंकुश राजा के धावित उन्मत्त अन्तःकरण गज को बल-पूर्वक नियन्त्रित करने मे असमर्थ रहा। राजा की उस उद्दीप्त रागाग्नि विप्लव में अश्व वृत्तान्त ने प्रचण्ड वायु का कार्य किया।

शशांक जिस प्रकार समुद्र को मर्यादाहीन कर देता है, उसी प्रकार कांचन करांकित सरल अंगुलियों की शोभा ने राजा को मर्यादा-रहित कर दिया। लज्जा-शृखला से निर्मुक्त, अभिप्राय-विज्ञ दूतों द्वारा उसे प्रलोभित करता, राजा ने उस सुन्दरी को उद्वेजित किया।

लोभी राजा ने सब साध्य उपायों से चन्द्रलेखा को अप्राप्य समझा। अन्ततः पति विप्र विशाख से भी उस सुन्दरी की याचना की। रागान्ध राजा को इसमें भी लज्जा का किंचित् मात्र बोध नहीं हुआ।

विशाख ने राजा के दुष्ट विचारों को समझा। उसका तिरस्कार किया। उसके पापपूर्ण प्रस्ताव को घृणित कहा। दृढ़ता के साथ अस्वीकार किया। विशाख की प्रगल्भता पर उसकी अस्वीकारोक्ति पर, राजा क्रोधित हो उठा। उसने सैनिकों को आदेश दिया "चन्द्रलेखा-हरण किया जाय।"

राज सैनिकों से विशाख ने अपना गृहाग्र घिरा देखा। उसने स्थान त्यागना उचित समझा। उसे अपनी प्रिय पत्नी का सतीत्व तथा अपना जीवन सङ्कटमय प्रतीत हुआ। नाग-भवन में चन्द्रलेखा के मन्त्रणानुसार शरण लेने का निश्चय किया। शरणार्थी द्विज सपत्नीक अन्य मार्ग से निकला। नाग-भवन में प्रवेश किया।

सुश्रुआ नाग से विशाख ने अपनी विपत्ति का वृत्तान्त निवेदन किया। पाप-कर्मी राजा की दुष्टता सुनकर, नागराज क्रोध से जल उठा। क्रोधान्ध फणीश्वर अपने सरोवर से बाहर निकला।

सुश्रुआ नाग ने काले मेघों में अन्धकार उत्पन्न किया। भयङ्कर गर्जना की। उसने घोर अशनि वृष्टि द्वारा नगर-सहित राजा को भस्म कर दिया।

दग्ध प्राणियों के अंगों से विगलित वसा, रक्त एवं अन्य तरल शरीर-तत्त्वों के बहने के कारण, वितस्ता सरिता मयूर पंख सदृश चित्रित हो गयी।

इस महान् विपत्ति से त्राण पाने के लिए, भयग्रस्त सहस्रों प्राणी, चक्रधर मन्दिर में शरण हेतु प्रविष्ट हुए। वे भी मुहूर्त मात्र में भस्म हो गये।

प्राचीन काल में मधु कैटभ के मेद से चक्रधर के दोनों उरु स्पर्श हुए थे। परन्तु इस समय उनका सर्वांग शरीर दग्ध प्राणियों के मेद में लिप्त हो गया था।

सुश्रुआ की बहन रमण्या ने विशाख काण्ड की बात सुनी। वह अपने गिरि-गह्वर से सवेग निकली। भाई की सहायता हेतु अश्म राशि सहित चली।

एक योजन नरपुर दूर रह गया। उसे अपने सहोदर भाई की सफलता का सन्देश मिला। आगे बढ़ना व्यर्थ समझ, उसने अश्मराशि की वृष्टि वहीं ग्रामों पर कर दी।

पाँच योजन-पर्यन्त ग्रामों की समस्त भूमि स्थूल शिलामयी हो गयी। उस स्थान का नाम 'रमण्य अटवी' पड़ गया।

यह स्थान वर्तमान लितर ग्राम है। स्थान पथरीली भूमिमय है। विजयेश्वर स्थित चक्रधर से यह स्थान आठ मील दूर पड़ता है। कल्हण के वर्णन में यह स्थान मिलता है।

घोर जन-क्षय के कारण नागराज पश्चात्ताप करने लगा। वह लोकापवाद से खिन्न हो गया।

इस घोर संहार के दूसरे दिन प्रातःकाल खिन्न मन नाग ने स्थान का त्याग कर पर्वतमाला की ओर प्रस्थान किया। उसने वहाँ से अति दूर पर्वत पर दुग्ध सागर तुल्य धवल एक सर का निर्माण कराया। अमरेश्वर की यात्रा में जनता उसे आज भी देखती है। उसका वर्तमान नाम शेषनाग है।

श्वसुर के अनुग्रह से नाग हुए द्विजन्मा का जामातृ सर (जामातर सर) नामक वहाँ एक दूसरा सरोवर और है। दोनों सर, रमण्य अटवी तथा नरपुर इस घटना की याद समस्त काश्मीर मण्डल में बहुत दिनों तक दिलाते रहे। कल्हण कहता है—"प्रजा-पालन के व्याज से प्रजा का निःशंक क्षय करने वालों के इस प्रकार के अन्तक अकस्मात् उत्पन्न हो जाते हैं। भस्म हुए उस नगर तथा चक्रधर के समीप छिछले सरोवर को देखकर इस घटना का लोग आज भी स्मरण करते हैं। संकुचित दृष्टि वालों के मतानुसार—'राजा का अनुराग कौन बड़ा दोष है ?' तथापि उस नाग ने इस राजा को इस प्रकार कर दिया, जैसा कहीं भी किसी के साथ नहीं हुआ था। सती स्त्री, देवता तथा विप्रों में किसी एक के भी प्रकोप से त्रैलोक्य में भी विप्लव का वृत्तान्त सुना गया है।"

राजा उनतालीस वर्ष नव मास भूमि का भोग कर अपनी दुर्नीति के कारण नष्ट हो गया। प्राकार एवं अट्टालिकाओं से पूर्ण उस नगर का अस्तित्व अल्पकाल तक ही रहा। तत्पश्चात् गन्धर्व नगर तुल्य केवल कल्पना मात्र रह गया।

आधार ग्रन्थ : राजतरंगिणी : तरंग १ : १९७-२७४।

सिद्ध

भाग्य वैचित्र्य भी विचित्र होता है। राजा का एक तनय अपनी धात्री के साथ विजय क्षेत्र गया था। इस संहार से केवल वही जीवित बच गया था। शेष राजा के कुटुम्बी बन्धु-बान्धव सभी नष्ट हो गये थे।

उसका नाम सिद्ध था। सिद्ध राजा ने शेष जनता में उसी प्रकार नवजीवन संचार किया, जिस प्रकार जलद दावानल से दग्ध पर्वत का पुनः नवीकरण करता है।

महामति राजा सिद्ध के लिए, पिता का महाश्चर्यपूर्ण इतिवृत्त, संसार के असारत्व के ज्ञान में, पुण्योपदेश सिद्ध हुआ। उसने जगत् की लीला का अर्थ समझा। उसके सम्मुख एक अत्यन्त लोमहर्षणपूर्ण घटना घटी थी।

किस प्रकार पाप का दण्ड प्रजा तथा राजा दोनों को एक साथ भोगना पड़ता था। आजन्म पठन-पाठन से उतना ज्ञान तथा सदुपदेश न मिलता, जितना अपने पिता की अकाल मृत्यु के कारण उसे मिल गया था। उसका जीवन सचमुच सिद्धों जैसा था।

पंक में निर्मल इन्दु प्रतिबिम्ब सदृश, वह राजा भोग-योग के मध्यगत होता हुआ भी, मलिन नहीं हो सका था। तत्कालीन विश्व के दर्प-ज्वर से संतप्त भूपालों के मध्य में सुधा सूति कला मौलि का रात्रि-दिन ध्यान करते हुए, केवल सिद्ध राजा ही स्वस्थ रह सका। मणियों को तृण-तुल्य त्यागते हुए, राजा खण्डेन्दु मण्डन की अर्चा को अखण्डित मण्डन मानता था।

जगत् में वही एक राजा था जिसकी राज्यश्री उसकी परलोकानुगामिनी थी, क्योंकि उसने इस भूमि पर अव्यभिचारी धर्म से, उस राज्यश्री को संयुक्त कर दिया।

राजा सिद्ध ने साठ वर्ष पृथ्वी का प्रशासन कर, निकटवर्ती अनुचरों सहित सदेह शशि चिन्तामणि के लोक पर आरोहण किया। उसके पिता राजा नर का आश्रय लेकर भृत्यों की शोचनीय दशा हुई थी। किन्तु उसके पुत्र प्रभु का समालम्बन लेकर उनकी भुवन में वन्दना हुई।

कल्हण कहता है, "जगत् में आश्रित, आश्रयदाता से प्राप्त, निन्दनीय अथवा सर्वजनश्लाघ्य, गति को प्राप्त करता है। क्योंकि कूप यंत्र का आश्रय वाली तृण की रस्सी नीचे जाती है और पुष्प का आश्रय लेकर, तृण सुर के सिर पर चढ़ता है।"

स्वर्ग में सुरगण राजा सिद्ध के पहुँचने पर "सिद्ध यह सदेह सिद्ध है" घोष करते हुए सात दिन तक पटह बजाते रहे।

उत्पलाक्ष हिरण्याक्ष-हिरण्यकुल-वसुकुल

राजा सिद्ध का पुत्र उत्पलाक्ष था। सदेह पिता के स्वर्गारोहण करने पर वह काश्मीर का राजा हुआ। वह पेशलाक्ष था। उसने काश्मीर का राज तीस वर्ष छः मास सुयोग्यतापूर्वक किया। वह सरल-शान्त प्रकृति था। उसके समय में काश्मीर में कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं घटी।

उत्पलाक्ष के पश्चात् उसका पुत्र हिरण्याक्ष काश्मीर का राजा हुआ। उसने अपने नाम पर हिरण्यपुर नगर बसाया। यह नगर श्रीनगर से सिन्ध उपत्यका जाने वाले राजपथ पर वर्तमान रनमिल ग्राम-स्थान पर था। हर मुकुट के यात्री हिरण्याक्ष नाग की यात्रा करते हैं। इस नाग को हिरण्य गंगा भी कहते हैं। हिरण्याक्ष ने पैंतीस वर्ष सात मास पृथ्वी का शासन किया था।

हिरण्याक्ष के पश्चात् उसका पुत्र हिरण्यकुल पृथ्वी का राजा हुआ। उसने साठ वर्ष पृथ्वी का राज किया। हिरण्यकुल की टंकणित मुद्रा मिहिरकुल की मुद्रा से मिलती है। उसने काश्मीर का साठ वर्ष राज्य किया था।

हिरण्यकुल का पुत्र वसुकुल था। पिता की मृत्यु के पश्चात् उसने काश्मीर राजसिंहासन सुशोभित किया। उसने भी साठ वर्ष तक पृथ्वी का शासन किया।

आधार ग्रन्थ : राजतरंगिणी : तरंग १ : २८६-२८८।

मिहिरकुल

वसुकुल की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मिहिरकुल काश्मीर के राज-सिंहासन पर अभिषिक्त हुआ। वह चण्ड चेष्टा था, काल समान था। उसके राज्यारोहण के समय काश्मीर मण्डल म्लेच्छ गणाकीर्ण हो गया था। म्लेच्छों की वृद्धि काश्मीर मण्डल में दिखाई पड़ती थी। म्लेच्छ के आतंक से जनता त्रस्त रहती थी। केवल काश्मीर मण्डल ही नहीं, समस्त उत्तर दिशा म्लेच्छों से व्याप्त हो गई थी। उत्तर दिशा उनके अनाचार से व्याकुल हो गई थी। म्लेच्छों के संहार हेतु महाभयंकर मिहिरकुल साक्षात् क्रूर मूर्ति ने काश्मीर मण्डल का शासन सूत्र ग्रहण किया।

मिहिरकुल हूण राजा था। उसकी दो राजधानियाँ थीं। भारतीय राजधानी साकल (सियालकोट) और अफगानिस्तान आदि पश्चिमी देशों की राजधानी बलख थी। उसका मुख्य सैनिक केन्द्र अफगानिस्तान स्थित बामियान स्थान था। बामियान हिन्दूकुश पर्वतमाला में स्थित है। यह अत्यन्त रमणीक एवं सुन्दर स्थान है। बौद्ध धर्म का केन्द्र था। विश्व की सबसे ऊँची बुद्ध भगवान् की अभय मुद्रा में मिट्टी की खड़ी दो प्रतिमाएँ यहाँ पर हैं। पर्वत में भिक्षुओं के रहने के लिए गुहा-गृह बने हैं। पर्वत में ही गुहा-विहार बनाये गये थे। मैं अतीत के वैभव इस स्थान को देखकर अपनी यात्रा में सबसे अधिक दुःखी हुआ था।

पर्वत मिट्टी का है। बहुत-कुछ पर्वत खिसककर गिर गया है। अनेक अलंकृत, चित्रित गुहा-मन्दिर तथा गृह गिर चुके हैं। कुछ शेष उस स्थान की गरिमा की याद दिलाते हैं। यदि पत्थर का पर्वत होता तो अजन्ता तथा एलोरा के समान प्राचीन कला सुरक्षित रह सकती थी।

मिहिरकुल को यशोधर्मन ने पराजित किया। वह बन्दी बना लिया गया। यशोधर्मन के माता के अनुरोध पर मुक्त किया गया। मुक्ति के पश्चात् उसने काश्मीर मण्डल में शरण ली। उसे जीतकर, वहाँ का राजा बन बैठा। काश्मीर में ही उसकी विचित्र मृत्यु हुई थी।

उत्तर दिशा ने दक्षिण दिशा पर विजय प्राप्त करने के लिए, दक्षिण दिशा के देवता, काल की स्पर्धा में, मिहिरकुल को यमराज तुल्य उपस्थित किया था। मिहिरकुल नृशंस क्रूर मानव घातक था।

उसका आगमन सुनते ही, जनता उसकी सेना द्वारा मारे जाने वाले मनुष्यों

के मांस भक्षक उत्सुक गृद्ध, काकादि पक्षियों को राजा के आगमन के पूर्व, आकाश में मँडराते हुए देखकर यह जान जाती थी। पक्षी भी समझते थे, उसकी सेना के साथ रहने पर नर-मांस-भक्षण में कमी नहीं होगी।

वह राजा नृशंस था। रक्त-पिपासु था। रात-दिन सहस्रों हत प्राणियों से घिरा, वह अपने विलास भवन में भी, वैताल स्वरूप निवास करता था। मानव स्वरूप में वह कालमूर्ति था।

घोर आकृति नृशंस और मानव-द्रोही उस राजा में बालकों के प्रति करुणा, स्त्रियों के प्रति घृणा तथा वृद्धों के प्रति गौरव भाव नहीं था।

उसने एक दिन अपनी प्रिया रानी को देखा। वह हेम पादांकित सिंहल देशीय कंचुकी पहने थी। कंचुकी पर अंकित पद रानी के कुचों पर पड़ते थे। राजा प्रिया के वक्षस्थल पर, किसी अन्य व्यक्ति के पद का अंक देखकर, क्रोध से प्रज्वलित हो उठा। उसने रानी से पूछा : "यह तुम्हें कहाँ से मिली ?"

"कंचुकी जानता होगा।" भीरु रानी ने उत्तर दिया।

"इस पर किसके पद का चिह्न है ?" मिहिरकुल बिगड़ा।

"मैं नहीं जानती।" रानी ने कम्पित स्वर में कहा।

"उतार फेंक !" मिहिरकुल की कर्कश ध्वनि से राजप्रासाद काँप गया।

भयभीत रानी वहाँ से भागी। राजा ने कंचुकी को बुलाया। कंचुकी ने राजा का रौद्र रूप देखा तो सहम गया। भय-विह्वल कंचुकी को देखते ही राजा फूट पड़ा : "रानी के वक्षस्थल पर हेम पादांकित कंचुकी मैंने देखी है।"

"हाँ, प्रभो !"

"रानी के वक्षस्थल पर पाद का अंक ?"

कंचुकी का प्राण-भय से कण्ठ सूख गया।

"यह वस्त्र कहाँ से आया है ?" मिहिरकुल ने पूछा।

"सिंहल से।"

"पादचिह्न किसका है ?"

"सिंहलराज का।"

"राजा का ?" मिहिरकुल सिंहतुल्य गरजा।

"प्रभो !"

"मेरी रानी के वक्षस्थल पर सिंहलराज का पादचिह्न ?"

क्रोध-जर्जरित मिहिरकुल प्रज्वलित हो गया। कंचुकी ने अवसर पाते ही प्रणाम या। प्राण-भय से भागा। दौवारिक ने मिहिरकुल की मेघ-गर्जन ध्वनि सुनी : म्पनाधिपति को शब्द दो।"

"आज्ञा !" दौवारिक कम्पनाधिपति के यहाँ दौड़ पड़ा।

"प्रभो !" कम्पनाधिपति ने सामरिक अभिवादन किया।

"सिंहल पर आक्रमण होगा।"

"आज्ञा, देव !"

"काश्मीर-वाहिनी सिंहल पर आक्रमण करेगी।"

"आदेश पालन होगा, प्रभु !"

"सिंहलराज को बिना दण्ड दिये मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।" मिहिरकुल ने अपने ओष्ठों पर जोर देते हुए कहा।

"शत्रु का नाश होगा।" कम्पनाधिपति ने सादर उत्तर दिया।

"मेरी रानी की कंचुकी पर उसका पादचिह्न—ओह !" मिहिरकुल स्मरण कर भभक उठा।

"राजन !"

"यह अपमान ?"

"उत्तर दिया जायेगा, नृपश्रेष्ठ !" कम्पनाधिपति ने अपने कृपाण की मूठ पर हाथ रखते हुए उत्तर दिया।

"हाँ, काश्मीर वाहिनी आक्रमण करेगी।" नत-मस्तक कम्पनेश ने आज्ञा ग्रहण की।

"सिंहलराज के ललाट पर काश्मीर का पादचिह्न होगा।" मिहिरकुल ने भूमि पर पैर पटकते हुए कहा।

कम्पनाधिपति ने शिरसा नमन किया।

"उसे रौंद डालना होगा, कुचल देना होगा।" राजा की मुट्ठी बँध गयी।

"भगवन् !" कम्पनाधिपति ने आदेश ग्रहण किया और सामरिक अभिवादन कर प्रस्थान किया।

क्रोध जर्जरित, घोराकृति राजा, कटघरे में बन्द भूखे सिंह के सदृश अलिन्द में चक्कर काटने लगा।

राज-प्रांगण अस्त्र शस्त्रों की झंकार से गूँज उठा। गजों के तुमुल गर्जन, अश्वों की हिनहिनाहट से भर गया। उसके मुख पर प्रसन्नता दिखायी दी, जब युद्धोन्मत्त गज परस्पर जूझ उठे, अश्व एक-दूसरे पर दुलत्ती चलाने लगे। काश्मीर सैनिक परिहासवश एक-दूसरे पर कृत्रिम आक्रमण करने लगे। अभियान के उत्साह में उन्हें कोलाहल करता देखकर, राजा ने जैसे मधुर संगीत श्रवण किया।

राज-प्रांगण में सेनापति ने प्रवेश किया। वहाँ कम्पनेश, दुर्गपाल, राष्ट्रान्तपाल, अटवीपाल, द्वारपति, द्वाराधिप, द्वारेश, द्वाराधिकारिन, द्रंगाधिपति, मार्गपति, गजाधिप, मण्डलेश—राज्य के प्रमुख अधिकारी उपस्थित थे। सेनापति ने उनके साथ मन्त्रागृह में प्रवेश किया।

लंका-विजय की विशाल योजना बनायी गयी। योजना इतनी व्यापक बनायी गयी थी कि क्रोधी राजा को कुछ कहने का अवसर नहीं दिया गया था। राजा के क्रोधी स्वभाव ने राज-कर्मचारियों को उत्तरदायित्व का महत्त्व समझा दिया था।

चतुरंगिणी सेना सज्जित करने का आदेश दिया गया। राजा की अनुपस्थिति में राज्य-व्यवस्था सुव्यवस्थित रखने के लिए द्वारपति, दुंगाध्यक्ष, मार्गपति, मण्डलेश, मन्त्री, पुरोहित, युवराज, प्रदेष्ट, नगराध्यक्ष, दण्डपति, महाप्रतिहार आदि को विस्तार के साथ समझाया गया। आन्तरिक विद्रोह कैसे दबाया जायेगा, म्लेच्छों के उभरने पर क्या कार्यवाही की जायेगी, इसकी भी सुविस्तृत योजना बनायी गयी।

भयंकर क्रूर कर्मा, प्रचण्ड, क्रोधी, विजयी, तेजस्वी सेनानी मिहिरकुल के नेतृत्व में काश्मीर सेना काश्मीरी पताका लहराती, दक्षिण पथ की ओर चली।

मिहिरकुल की सेना एक आँधी थी। वह अन्धकार-वेष्टित घोर आँधी थी जिसके सम्मुख जो आया वह शुष्क तृण सदृश उड़ गया। मिहिरकुल वह प्रबल अग्नि था, जिसके सम्मुख जो आया, वह सूखी घास की तरह जल गया। मिहिरकुल वह ध्वजधारी था जिसके सम्मुख भारतीय राजाओं की ध्वजाएँ स्वतः नत हो गयी। मिहिरकुल वह जल-प्लावन था, जिसमें प्रबल-से प्रबल वाहिनी बह जाती थी।

बिना अवरोध सत्वर गति से अभियान किया। समुद्र-तट पर पहुँचा। मार्गस्थ भूपतियों ने मस्तक झुका दिये। वह राजाओं की भूमि, उनका गर्व, रौंदता नील समुद्र-तट पर पहुँच गया।

उसकी सेना के गजों के गण्डस्थल से उद्भूत, मदधार मिलन से, दक्षिण समुद्र ने यमुना-मिलन-सुख का अनुभव किया। जिस समय श्री लंका के सौधों से निशाचरों ने उसकी सेना का दूर से ही अवलोकन किया, तो उन्हें लंका पर राघव के आक्रमण की पुनः आशंका हुई। उस क्रूर निश्चयी राजा की प्रचण्ड काश्मीर वाहिनी के घोष के सम्मुख, महासमुद्र की गरजती उत्ताल तरंगें भी लज्जित हो गयीं।

राजा मिहिरकुल समुद्र के उत्पात से भयभीत नहीं हुआ। गम्भीर नील सागर उसके मार्ग में बाधक नहीं हुआ। मिहिरकुल मार्ग के कण्टकाकीर्ण होने में विश्वास नहीं करता था। पर्वत-शिखर, मरुस्थल, हरित क्षेत्र तथा अर्णव की पर्वताकार लहरें उसे एक-जैसी लगती थीं। वह दुर्गम, दुरूह, कठिन मार्ग की कल्पना नहीं करता था। उसके चण्ड कल्पना के सम्मुख सभी मार्ग सरल हो जाते थे।

मिहिरकुल की सेना श्रीलंका पर उतरने लगी। क्षुभित समुद्र मिहिरकुल का अपूर्व साहस देखकर स्वतः स्तब्ध हो गया। श्रीलंकावासियों ने किसी प्रकार का प्रतिरोध नहीं किया। भारतीय समुद्रतट से श्रीलंका तट पर सेना उतरी। श्रीलंका का तट गौरवपूर्ण लहराती काश्मीर पताका से भर गया।

पादाक्ति प्रिया के कचुकी द्वारा उद्भूत क्रोध, उसने लकापति को पदाक्रान्त कर, शान्त किया। श्रीलकापति के आत्म-समर्पण करने पर भी मिहिरकुल का क्रोध शान्त नही हुआ। तीव्र शक्तिमान राजा ने सिहल के सिहासन पर दूसरे नृप को बैठाया। उसे अपना अधीनस्थ राजा बनाया। वहा से मार्तण्ड प्रतिमाक्ति यमुपदेव नामक वस्त्र लिया और भारतीय तट पर लौट आया।

इस विजय-काल मे भी उसके मुख पर किसी ने प्रसन्नता की रेखा नही देखी। उसकी क्रूर आकृति मे किसी प्रकार का अन्तर नही पडा। उसकी घोर क्रूर मुद्रा, क्रूर प्रवृत्ति ने किंचित् मात्र लघुता नही प्राप्त की।

व्यावृत्त राजा मिहिरकुल ने मार्ग मे चोल, कर्णाट, लाटादि नरेशो को उसी प्रकार परास्त कर दिया, जैसे गजराज मदगन्ध मे ही हाथियो को तितर-बितर कर देता है।

वह जहाँ गया, वहाँ नगर-का-नगर नष्ट हो गया, उजड गया। वहाँ के नृप उसके आगमन की बात सुनते ही पलायन कर जाते थे। उसके चले जाने पर, जब वे पुन लौटते थे, तो उनमे टूटी अट्टाल-मेखलाओ वाली नगरियो ने पराभव की दु खद कथा कही। उसकी क्रूरता की गाथा, नगरो म लौटते नृप सुनकर, रोमा-चित हो जाते थे। अनेक काल तक उसका नाम शिशुओ, बालको के भय हेतु मन्त्र बना रहा।

राजा मिहिरकुल ने दक्षिण-विजय समाप्त की। उत्तर काश्मीर द्वार पर उसकी विजयी वाहिनी पहुँची। पचाल धारा पर्वत मार्ग पर वह हस्ति वंज स्थान पहुँचा।

वहाँ उसने गर्त मे गिरे गजो का करुण आर्तनाद सुना। रुद्र का अद्भुत रौद्र रूप देखा। आसन्न मृत्यु-भय मिश्रित करुण आर्तनाद सुनकर, मिहिरकुल हर्ष मे रोमाचित हो गया। आर्तनाद उसे प्रिय लगा। सैकडो फीट नीचे गर्त मे लुण्ड-मुण्ड, अग भग, रक्त लुण्ठित हाथियो का रुदन, उनका क्रन्दन, उनका पैर तथा सूड पटकना, सूड उठाकर सहायता हेतु चिल्लाना, सुनकर क्रूर राजा की क्रूरता प्रसन्न हो गयी।

उन प्राणियो का मरना, उसके लिए मनोविनोद की सामग्री, जैसे दु खद घटना ने प्रस्तुत कर दी थी। वे युद्धक गज घोर वेदना से मूर्च्छित होते थे। अन्तिम श्वास तोडते थे। उनका पद एव सूँड कडा होता था। अचानक दो एक बार उठता था। और फिर हो जाता सर्वदा के लिए शान्त। जब तक सब हाथी वेदना-पूर्ण मृत्यु का आलिंगन नही कर चुके, वह उन्हें एकटक देखता रहा। आर्तध्वनि शान्त होने पर उसे निराशा हुई।

मिहिरकुल को पुन आर्तध्वनि सुनने की प्रबल क्रूर कामना हुई। वह काले

हाथियों को काल-कवलित मरणान्तक पीड़ा में कराहता देखकर हर्षित हो गया था। वह उसी हर्ष, उसी प्रसन्नता का पुनः अनुभव करना चाहता था। उस समय विरुद्ध थी प्रसन्न राजा ने उस घोष को पुनः सुनने के उत्साह में, सवेग आदेश दिया : "और हाथी गर्त में गिरा दिये जाएँ।"

उसका आदेश सुनते ही सेनापतिगण कम्पित हो गये। किसी को निर्दोष प्राणी हत्या के प्रतिरोध का साहस नही हुआ। वे जानते थे राजा की इच्छा के विरुद्ध कार्य का अर्थ था—क्रूरतापूर्ण दुःखद मृत्यु। द्वारेश ने अत्यन्त विनम्र स्वर में कहा : "युद्धक गज हैं।"

"हुआ करें।"

"शिक्षित हैं।"

"हुआ करें।"

"सेना दुर्बल होगी।"

"तुमसे मतलब ?" राजा चिल्ला उठा।

"कितने ?" द्वारेश ने विनय किया।

"ओह, कितने ! कितने ! ! कितने ! ! ! सौ हाथियों को।"

"आज्ञा !"

"अविलम्ब गिराया जाए।" मिहिरकुल चिल्लाया।

महावत हाथियों से उतर गये। दोनों ओर से पथ बन्द कर दिया गया। हाथी ढकेले जाने लगे। गर्त में गिरे मृत गजों को देखकर गजों को अपनी दुर्दशा, अपनी पीड़ा का ज्ञान हुआ। वे भागने लगे। वे युद्धक गज, जो शत्रुओं के प्रबल आक्रमण काल में पहाड़-तुल्य अडिग खड़े रहते थे, सम्मुख आसन्न मृत्यु देखकर घबरा गये, भयग्रस्त हो गये। मरणान्तक कोलाहल उठा। वे स्वत. गिरकर अपनी गति अपने साथियों की गति तुल्य नही करना चाहते थे। यत्र-तत्र भागने की चेष्टा करने लगे। अनियन्त्रित हो गये। उन्हें गर्त में गिरने के लिए बाणों से, बर्छों से, आहत किया जाने लगा। उस संकीर्ण स्थान में वे विशृंखलित हो गये। एक तरफ गर्त था, दूसरी तरफ क्रूर प्रहार था। वे बचने के लिए दौड़े। परस्पर टकराये। उथल-पुथल मे वे फिसले। अनायास गर्त में, घोर आर्तनाद के साथ गिर गये।

गर्त में उन्हें लोष्ठवत लुढ़कता, चिल्लाता, रोता, आर्तनाद करता, सुनकर राजा प्रसन्न हो गया। उसके क्रूर मुख पर शायद प्रथम बार लोगों ने मुसकान देखी। वह थी कितनी क्रूर मुसकान !

उसकी अन्य नृशंसताओं का वर्णन करना उसी प्रकार दूषित समझा जायेगा, जिस प्रकार पापियों के स्पर्श से अंग दूषित हो जाते हैं। पापियों का कीर्तन जिस प्रकार वाणी को सन्दूषित करता है, उसी प्रकार उसकी क्रूर कहानी कहने मे वाणी दूषित हो जाती है।

अद्भुत चेष्टा, सामान्य चेतन प्राणियों के कृत्य को कौन जान सकता है, जब कि वे भी मुक्ति-प्राप्ति हेतु धर्म का आश्रय लेते हैं ! राजा यद्यपि भीषण क्रूर था, तथापि उसने परोपकार किये थे। वे उसकी धार्मिक प्रवृत्ति प्रकट करते थे। उसके जीवन का यदि क्रूर इतिहास था, तो साथ ही साथ पुण्य-कार्यों से भी उसके इतिहास के पृष्ठ गौरवशाली हैं ।

उस दुर्बुद्धि राजा ने श्रीनगर में मिहिरेश्वर[1] तथा होलदा में मिहिरकुल नामक महानगरों की स्थापना की थी। होलदा अवन्तीपुर के दक्षिण दिशा में था।

राजा अपने उग्र तथा एकांगी विचारों के लिए प्रसिद्ध था। उसी के समान शील वाले द्विजाधम गान्धार ब्राह्मणों ने उससे दानस्वरूप अग्रहारों को ग्रहण किया था। वह काश्मीर के ब्राह्मणों से रुष्ट था। काश्मीर के ब्राह्मणों ने उस मानवहन्ता क्रूर राजा का दान लेना अस्वीकार कर दिया था।

घोर अन्धकारयुक्त मेघ का आगमन मयूर को प्रसन्न करता है। किन्तु उसी जलद का निर्मल अन्त हंस को प्रसन्न करता है। दाता एवं ग्रहीता की समान रुचि ही परस्पर प्रेम का कारण होती है।

एक समय की बात है, राजा मिहिरकुल चन्द्रकुल्या नामक नदी को अवतरित कर रहा था। मार्ग में एक बड़ी शिला ने व्यवधान उपस्थित कर दिया। उस शिला के कारण प्रवाह रुक गया। बिना शिला हटे जल-प्रवाह असम्भव था। राजा तथा उसके कर्मचारियों ने अतिशय प्रयत्न किया, परन्तु शिला हटी नहीं।

राजा शिला न हटने के कारण चिन्तित था। उसका क्रोध शिला हटाने में सहायक नहीं हुआ। उसकी क्रूरता शिला हटाने में असमर्थ हुई। उसका दृढ़ संकल्प, शिला हटाने में योगदान न कर सका। उसके विशाल राजकीय साधन शिला न हटाने में लज्जित हो गये।

उसने शक्ति से कार्य सफल होता नहीं देखा। उसने घोर तपस्या का आश्रय लिया। शिला हटाने के लिए तपस्या करने लगा। एक रात उसने स्वप्न देखा। देवताओं ने उससे कहा—"बलवान एवं ब्रह्मचारी यक्ष शिला पर आसीन है। यदि कोई साध्वी स्त्री उस शिला का स्पर्श करे, तो वह यक्ष कार्य निरोध में असमर्थ हो जायेगा।"

राजा ने स्वप्न में कार्यसिद्धि का संकेत पाया। वह प्रसन्न हो गया। उसने विचार किया, सती का पवित्र प्रदेश सतीसर काश्मीर, सती स्त्रियों से पूर्ण था। उनका मिलना सरल था। उसे किसी प्रकार की कठिनाई का बोध नहीं हुआ।

---

१ मिहिरेश्वर—अभी तक स्थान का पता नहीं चला है।

दूसरे दिन उसने अनेक सती-साध्वी नाम्नी स्त्रियों को आमंत्रित किया। उनसे शिला-स्पर्श करवाया। परन्तु शिला तिल मात्र विचलित नहीं हुई। काश्मीर के कोने-कोने से स्त्रियाँ आयीं। उनके स्पर्श से शिला टस से मस नहीं हुई।

उन कुलीन स्त्रियों के यत्न व्यर्थ हो जाने पर, एक कुम्भकार की स्त्री वहाँ आयी। उसका नाम चन्द्रावती था। उसने शिला का स्पर्श किया। वह सती थी। स्पर्श करते ही यक्ष ब्रह्मचारी शिला से हट गया। शिला सचल हो गयी।

चन्द्रावती कुम्भकार स्त्री के कारण चन्द्रकुल्या का प्रवाह मोड़ना सरल हो गया। राजा ने कुम्भकार की स्त्री के नाम पर कुल्या का नाम चन्द्रकुल्या रख दिया।

राजा काश्मीर की स्त्रियों, उनके पतियों तथा उनकी संतानों पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसका रौद्र रूप उस समय अत्यन्त भयंकर लगता था। उसने उन सबको अपराधी समझा और उनके अपराधों का दण्ड देने के लिए कृत-संकल्प हो गया। उसकी महाक्रूर प्रतिहिंसा जाग उठी। वह जनता में व्याप्त सताहीनता का ध्यान कर, विक्षिप्त हो गया।

उसने पर-पूर्वापर बिना विचार किये. काश्मीर के नर-नारियों को कठोर दण्ड से ताड़ित करने का निर्णय ले लिया। उसने जनता के सम्मुख भयावह उदाहरण उपस्थित करना चाहा। उस उदाहरण, उस दण्ड-भय से उसने सोचा था, जनता का आचरण सुधर जायेगा। उसने तत्कालीन समाज को दूषित मान-कर, उस दोष को निर्मूल करना चाहा। वह एक ऐसा मानव-समाज चाहता था, जो सरल, आचरणमय एवं सन्देह-मुक्त हो।

"पति, पुत्र, बान्धव-सहित काश्मीर की स्त्रियों की हत्या कर दी जाय।" जनता की आचरणहीनता से क्रुद्ध होकर मिहिरकुल ने आदेश दिया। जगत् का अश्रुत, अदर्शित, भयंकर हत्याकाण्ड मिहिरकुल के सैनिकों तथा उसके सेवकों ने स्वप्राण भय से आरम्भ किया। उस अपराध के कारण क्रुद्ध नरपति ने तीन करोड़ पति, भ्राता, पुत्र सहित कुल योषिताओं का वध करा दिया। सती भूमि काश्मीर, असती स्त्रियों, उनके पति एवं बन्धु-बान्धवों के रक्त से रक्तरंजित हो गयी।

जनता आचरणहीन थी। मनोबल खो बैठी थी। वह घास-फूस की तरह कटती रही। किसी भी दिशा से उसके कार्यों का प्रतिरोध नहीं हुआ। प्राण-रक्षा के निरर्थक लोभ में कायर प्राणी अनायास कटते रहे। मरते दम तक उनमें प्रतिरोध की भावना नहीं उत्पन्न हुई। मिहिरकुल का नाम इस भीषण हत्याकाण्ड के पश्चात् 'त्रिकोटि हन' पड़ गया।

जनता ने विरोध नहीं किया। मिलकर रक्षा का प्रयास भी नहीं किया। कुकर्मी हत्यारे राजा को पकड़कर, उसे बन्दी बनाकर, उसे प्राणदण्ड देकर, करोड़ों

प्राणियो की प्राण-रक्षा का, मनोबलहीन कायर जनता ने प्रयास नही किया।

काश्मीर मे जनश्रुति फैली थी—'क्षुद्र होने पर भी उस राजा की प्रजा ने हत्या नही की, क्योकि वह उन्ही देवताओ द्वारा रक्षित था, जिनकी प्रेरणा से उसने इन क्रूर कर्मों को किया था।'

यह संकेत था। जनता दुर्बल हो चुकी थी, पतित हो चुकी थी। पतित का साथ कारुणिक भगवान् भी नही देता। फिर मनुष्यो की क्या गणना की जा सकती थी?

निस्सदेह भाग्यवादी इसका स्पष्टीकरण करेंगे। दुष्कृत्यो के करने की प्रेरणा देव ने दी थी। देव ही क्रूर निर्दोष हत्या के उत्तरदायी थे। अतएव राजा की रक्षा देव ने ही की। देव ही सबका कारण था। वही कर्ता था। वही कर्म था। वही क्रिया था।

पत्ता खडकता था। भाग्यश्री आती थी, जाती थी। सब-कुछ पूर्वनिश्चित था। इस भाग्यवाद ने जनता को निष्क्रिय बना दिया। कायर बना दिया। कायरता एव निष्क्रियता ने उनमे जडता उत्पन्न कर दी। तत्कालीन काश्मीरी समाज जड हो गया था। जड नाशशील था। उस सर्वनाश का परिचय, उसका दर्शन काश्मीर की जनता ने अपने प्राणो की बलि देकर किया।

तथापि वह राजा पुण्यकर्मा था। वह जितना ही क्रूर था, उतना ही दानी था, उतना ही धर्मप्रिय था, सच्चरित्रानुरागी था, दुश्चरित्रो का शत्रु था। उसने जहाँ भी कही काश्मीर मे आचरणहीनता देखी, उसे विचारा, मत-परिवर्तन से बदलने का प्रयास किया। उसमे जब वह सफल नही हुआ, तो उसने दण्ड का आश्रय लिया। वह समाज का बिगडा ढाँचा बदलना चाहता था—अपने भीषण क्रूर-कर्म के भय तथा ताडन दण्ड द्वारा।

एक मत है, परिहार देने वाले उस राजा मिहिरकुल ने अपनी निर्दयता को अग्रहारादि पुण्य कर्मों द्वारा खण्डित कर दिया था।

काश्मीर मण्डल की पवित्रता, उसका आचार-विचार, धर्म प्रक्रिया तथा कर्म-काण्डादि भौट्टो, दरदो, म्लेच्छो तथा अनार्य जातियो के कारण नष्ट हो गया था। उनके अशुचि कर्मों द्वारा आक्रान्त विनष्ट धर्म, काश्मीर देश मे, राजा ने पुण्याचार का प्रवर्तन किया। उसने आर्य-देशीय जनो को पुन आचार-स्थापनार्थ काश्मीर मण्डल मे सस्थापित किया।

अन्य लोगो के मत मे यह ख्याति उपयुक्त है। किन्तु तथ्यत सकारण भी इतनी बडी सख्या मे प्राणहिसा शोभनीय नही कही जायेगी।

भूलोक भैरव मिहिरकुल ने सत्तर वर्षों तक भूमि का भोग किया था। उसके जीवन का अन्तिम अध्याय उसके जीवन की समस्त क्रूरताओ को भी मात देता है।

उसके जीवन का अन्तिम चरण कष्टमय था, परन्तु उस असह्नीय कष्ट ने भी

उसकी क्रूरता के सम्मुख सविनय मस्तक झुका दिया। उसने जीते-जी अग्नि-प्रवेश का निश्चय किया।

इस जगत् में उत्पन्न हुए नृपों में, अत्यन्त क्रूर, महान् क्रोधी, उद्यमशील, सर्वदा जागरूक वह राजा अत्यधिक रोगग्रस्त हो गया। उसे अपनी शरीर-व्याधि पर क्रोध आया। शरीर-व्याधि से विचलित नहीं हुआ। शरीर-व्याधि से संघर्ष-हेतु सन्नद्ध हो गया। उसने शरीर पर दया करने की कल्पना नहीं की।

राजा मिहिरकुल किसी का दयापात्र नहीं हुआ। वैद्यों एवं औषधियों का दयापात्र नहीं हुआ। दूसरों के आश्रयदाता ने अपनी अन्तिम अवस्था में, दुस्सह पीड़ा में, औषधि, भेषज्य एवं भिषगों का आश्रय ग्रहण नहीं किया। वह अपने बल पर, अपनी शक्ति पर, विश्वास करता था। उसी के कारण वह इतिहास के पृष्ठों में उत्तुंग विशाल शिखर तुल्य अवस्थित हुआ था। वह शिखर था, जो झुकता नहीं। वह शिखर था, जिसे जल-प्लावन स्पर्श नहीं करता; अपितु उसे स्नान कराने में अपने गौरव का अनुभव करता था। राजा वह शिखर था, जो तुहिनपात से शीतल नहीं हुआ था। शिखर ने तुहिनपात को उज्ज्वल किरीट बना लिया था। राजा वह शिखर था, जो भयंकर तूफान में, झंझावात में, गिरता नहीं था, उड़ता नहीं था। तूफान को रोककर, उससे अपना चरण स्पर्श कराता था।

मिहिरकुल अत्यन्त वृद्ध हो गया था। उसने सत्तर वर्ष राज्य किया। राज्याभिषेक के समय कम से कम वह तीस वर्ष का युवक रहा होगा। इस प्रकार उसकी आयु नब्बे वर्ष से ऊपर थी। वृद्धावस्था के कारण, ढलती उम्र के कारण, शिथिलता के कारण, उसकी क्रूरता में कमी नहीं आयी।

वह रुग्ण शरीर-भार से खिन्न था। जिस शरीर से दिग्विजय की थी, जिस शरीर से सत्तर वर्ष शासन किया था, वह शरीर उसकी इच्छानुसार व्यवहार नहीं कर रहा था। वह शरीर की इस शिथिलता पर, दुर्बलता पर, क्रुद्ध हो गया। शरीर से उदासीन हो गया। शरीर का मोह नहीं रह गया।

शरीर उसका साथ त्याग रहा था। इन्द्रियाँ उसका साथ त्याग रही थीं। शिराएं उसका साथ त्याग रही थीं। अंग-प्रत्यंग उसका साथ त्याग रहा था। वह उन पर क्रुद्ध हो गया। उसने इस शरीर को, इस काया को, इन्द्रियों को, अंग-प्रत्यंगों को, दण्ड देने का निश्चय किया।

शरीर को दण्ड देने के लिए उसने अश्रुत, अकल्पनीय क्रूर रूप अपनाया। उसने घोषित किया कि वह स्वयं व्याधिग्रस्त करने वाले शरीर को जलाकर नष्ट करेगा। उसे उसके दुष्कृत्यों के लिए दण्ड देगा।

उसने दारुण तपस्या आरम्भ की। उसने विजयेश्वर में एक सहस्र अग्रहार गान्धार देशीय द्विजों को दिया, दान एवं तपस्या से निवृत्त हुआ, अपने शरीर को अश्रुत कठोर दण्ड देने का निर्णय किया।

उसने स्वयं अपनी आँखों के सम्मुख विशाल चिता रचायी। उस चिता को अत्यन्त दाहक पदार्थों से भर दिया। धूप, गन्ध एवं अन्य पवित्र हवनीय पदार्थों से पूरित कर दिया। उसने इतनी विशाल चिता बनायी कि शरीर के उससे भाग निकलने की सम्भावना न थी।

उस चिता पर लौह फलक रखा गया। वह फलक उसकी अतिशय क्रूर प्रवृत्ति का परिचायक था। फलक क्षुर, खड्ग, असिधेन, कील आदि से जड़ित था। वह अपने शरीर को अग्नि-दाह से ही ताड़ित नहीं करना चाहता था, परन्तु उस अन्तिम काल में, अग्निदाह के समय भी, शरीर को घोर कष्ट देना चाहता था। क्रूरता की चरम सीमा पर पहुँचकर शरीर को ताड़ित करना चाहता था। घोर से घोर कष्ट शरीर को अग्नि में भस्म होते समय दिया जा सके, इसकी कल्पना की। उसने अपने जीवन की सबसे अधिक, सबसे विलक्षण, क्रूरता का प्रयोग स्वयं अपने शरीर पर किया।

अग्नि-ज्वालाएँ उसके शरीर को क्षणमात्र में भस्म कर सकती थीं। परंतु उसने शरीर को अग्नि में अविलंब नष्ट कर, उसे कष्ट से मुक्त नहीं करना चाहा। अपने शरीर को अत्यन्त कष्ट देने के विचार से, तप्त फलक पर धीरे-धीरे भूनना चाहा। अग्नि-ज्वाला में मुहूर्त मात्र में शरीर लोना, अपनी लीला, समाप्त नहीं करना चाहता था।

वह शरीर, जिसने उसे व्यथित कर रखा था धीरे धीरे सुलगता, भुनता अपनी लीला समाप्त करे—क्रूर कल्पना से भी वह सन्तुष्ट नहीं हुआ।

उसने कल्पना की—यह शरीर फलक पर लगे छुरी, असिधेन आदि से भुनते समय भी चुभता रहे। फटफटाता रहे। रक्त बहाता रहे। घोर कष्ट पाता रहे। खण्ड खण्ड होकर विगलित होता रहे। लथपथ शरीर फलक पर छनछनाता धुआँ बनकर धुएँ में लीन होता रहे। इस अत्यन्त लोमहर्षण, मानव मनसा से अकल्पित, शरीर को दण्ड देने के लिए राजा सोत्साह उत्सुक हो गया। उसे नष्ट करने की तीव्र प्रेरणा में, उसे अपनी इस क्रूर कल्पना में, प्रसन्नता का अद्भुत बोध हुआ।

इस क्रूर संकल्प से उसे विरत करने में कोई सफल नहीं हो सका। किसी का साहस नहीं हुआ कि इस क्रूर शरीरदाह प्रतिक्रिया से उसे विरत करने का प्रयास करे। अन्तिम समय में शान्ति आश्रय की ओर अग्रसर करे।

यथासमय राजा ने स्नान किया। व्याधि-ग्रस्त शरीर-भार को उठाया। शरीर देखकर मुस्कराया। वह घोर दण्ड पायेगा। इस कल्पना से हर्षित हो गया। उसका मन नाच उठा। आँखें चमक उठीं। प्रज्वलित ज्वाला में लाल हुए छुरिका आदि मण्डित तप्त फलक को देखा।

वह चिता के सम्मुख आकर खड़ा हो गया। श्मशान भूमि राज्योचित दाहकर्म

योग्य सज्जित नहीं थी। राजभय से किसी ने उसे सजाने का भी प्रयास नहीं किया। राजा की क्रूर वृत्ति, नृशंस उसकी धारा किस ओर किस समय मुड़ जाएगी, कोई भी इस लम्बे काल में समझ नही सका था। जब राजा किसी कार्य का स्वयं प्रारम्भक होता था, तो किसी का साहस नही होता था। उसके कार्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप अथवा उसे किसी प्रकार का सुझाव देने का प्रयास करता।

राजा ने अपने सम्मुख, उस श्मशान भूमि में एक नयी पीढ़ी खड़ी देखी। सत्तर वर्ष के लम्बे काल में उसके साथी, सहयोगी, सेवक, काल-कवलित हो गए थे। अथवा वृद्ध शरीर-भार लिए घरों में बैठे थे।

राजा ने अपने चारों ओर देखा। बहुत कम आकृतियाँ उसे परिचित दिखायी दीं। उसके सम्मुख, युवक एवं प्रौढ मानव-समूह खड़ा था, जो उसकी नृशंसता, क्रूरता की कहानी एवं दन्तकथाएँ सुनता आया था। देखता आया था। आज देखने खड़ा था। क्रूरता की चरम सीमा, उसके जीवन नाटक का अन्तिम, लोम हर्षणपूर्ण जीवन का पटाक्षेप।

राजा ने काश्मीर उपत्यका को एक बार देखा। उसे घेरकर खड़ी हुई पर्वत-माला को देखा। ज्येष्ठेश्वर एवं सारिका शिखर की ओर देखा। और देखी चिता के समीप वितस्ता की प्रवाहित निर्मल धारा।

भीषण चिता-ज्वाला को देखकर वह विचलित नही हुआ। शरीर के मोह से प्रभावित नही हुआ। जीवन-मोह से प्रभावित नही हुआ। दृश्य के दारुण भय से प्रभावित नही हुआ।

लोगों की कातरता देखकर, वह चकित हुआ। वह समझ नही पा रहा था। वह दण्ड दे रहा था, अपने शरीर को। उसके लिए अकारण अन्य शरीरधारी क्यों दुःखी थे ?

वह पुनः मुसकराया। उसका यह अन्तिम रौद्र मुसकान था। उसके रुद्र-रूप को देखकर जनता भयभीत हुई। परन्तु वह अपने अन्तिम क्रूर कर्म से भयग्रस्त नहीं हुआ। उसने क्षणमात्र के लिए चिन्तन नही किया। उसे यह सुन्दर जगत्, यह शीतल जगत् क्षणमात्र पश्चात् त्याग देना होगा। वह अग्नि में भुन उठेगा। भयंकर वेदना उसे पीड़ित कर देगी।

राजा ने अपनी अन्तिम शैया देखी। दहकती ज्वाला से लाल शैया देखी। वह शैया उसे भली लगी। वह हँसा।

धारा इस क्रूर दृश्य को देखती स्वतः स्थिर हो गयी थी, अचंचल हो गयी थी। वितस्ता में नावें नही थीं। सब तटों से बँधी खड़ी थीं। सब पर महान् मानव-समाज वेरी नाग से बारहमूला तक का एकत्रित था। मूक बैठा था। कुछ हाथ जोड़े थे। कुछ शोकाकुल थे। कुछ कौतूहलमय दृष्टि से वितस्ता पुलिन की चिता देख रहे थे।

जो जहाँ था, वहीं स्थिर था। स्तब्ध था। लहरों की चंचलता उदास थी। पवन का कम्पन इस भीषण दृश्य की भीषणता देखकर भयभीत हो गया था। निर्मल गगन में हिंस्र पक्षियों की जो सेना चहचहाती उड़ती जाती थी, वह मन मारे वृक्षों की शाखाओं पर बैठी थी। उदास थी। उनका पोषक, उनका पालक, उनका आश्रयदाता उनसे विदा हो रहा था।

राजा चिता के सम्मुख आया। उसने अपनी भयंकर चिता को करबद्ध नमस्कार किया। सबको भस्म करने वाली ज्वाला गगन-चुम्बन कर रही थी। सरल हृदय युवक वह दृश्य देखते ही काँप उठे। उन्होंने मुख ढक लिया।

उसने अपनी कटि पर भुके शरीर को शरीर की समस्त शक्ति लगाकर सीधा किया। पैरों पर जोर दिया। उसके दोनों हाथों की कुहनियाँ किंचित् पीछे गयीं। वे उठीं। राजा उचका। राजा कूदा। दूसरे ही क्षण तप्त फलक पर कूदकर आ गया। शरीर से रक्तधार फुहारे की तरह फूट निकली। ज्वालाओं में धुआँ बनती गगन व्योम में मिलने चली। किन्तु उस काल में वह सयत था। वह तप्त लौह फलक पर उत्तान शववत् सो गया।

उसका शरीर छुरियों, असिधेन, काँटों आदि के कारण क्षत विक्षत हो गया। वह भुना जा रहा था। अग्नि उस पर दया नहीं कर रही थी। किन्तु राजा तप्त लाल फलक पर विचलित नहीं हुआ। उसे दया की आकांक्षा भी नहीं थी। वह सीधा शयनशील था। उसका शरीर किंचित्मात्र अपनी रक्षा के लिए, अपना पीड़ा व्यक्त करने के लिए हिला-डुला नहीं, प्रकम्पित नहीं हुआ। वह देखते-देखते भुना श्याम मांस मात्र रह गया। उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी।

अग्नि-ज्वालाओं ने मुहूर्त मात्र में उसके शरीर को भस्म कर दिया। भस्म होता शरीर उस फलक पर सीधा पड़ा रहा। उसका श्वेत कंकाल किंचित् काल के लिए भुने काले मांस के भीतर से मुसकराया। एकत्रित जन-समूह को भय-ग्रस्त, श्मशान वैराग्यग्रस्त, देखकर दूसरे ही क्षण अट्टहास कर धू-धूकर जलने लगा। भस्म बनने लगा।

उसका अंग-प्रत्यंग वेदना से सिकुड़ा नहीं। वह मांस का पिण्ड नहीं बना। वह पूर्ण भस्म होने तक शव-रूप सीधा पड़ा रहा। फलक पर भुनता रहा। तीक्ष्ण धारा से बिंधता रहा। अपनी क्रूरता का अन्तिम दर्शन करता प्रसन्न होता रहा। अन्त में रह गया केवल भस्म, अपने भस्म होने क्रूरता की कहानी के साथ।

महाक्रूर के भी समर्थक होते हैं। वधिक के भी समर्थक होते हैं। हन्ता के भी समर्थक होते हैं। हत के भी समर्थक होते हैं। दण्डदाता के भी समर्थक होते हैं। दण्ड गृहीता के भी समर्थक होते हैं।

राजा के भी समर्थक थे। उसके भी पक्षपाती थे। उसके भी प्रशंसक थे। उस अविच्छिन्न जन-परम्परा में कतिपय लोगों ने घोष किया—'उस पुरुषसिंह का क्रूरता अनिन्दित थी। वह राजा निन्दा का पात्र नहीं था।' अन्य लोगों ने कहा—'रुष्ट नाग द्वारा किन्नर नगर नष्ट होने पर, वहाँ जिन खश जाति का बाहुल्य हो गया था, उनके नाश निमित्त उसने पूर्वोक्त वृत्तान्त किया था।'

उसके शरीर-त्याग पर गगन से यह भारती उच्चरित हुई, 'त्रिकोटिहन्ता वह मिहिरकुल मुक्त हो गया, जिसने अपने शरीर पर भी दया न की।'

आधारग्रन्थ : राजतरंगिणी-तरंग १ : २८९-३२४।

वक

जनता के तीव्र पुण्योदय के कारण, मिहिरकुल की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र सदाचारी वक का पौर जनों ने अभिषेक किया।

श्मशान में बने लीनाविवेश्य सदृश पूर्व संस्कार के कारण, उसके सिंहासन के सम्मुख भी, उसके पिता मिहिरकुल के त्रास की आशंका से लोग भयभीत रहते थे। अति संतापदायी मिहिरकुल से उत्पन्न, वह जन आह्लादक, उसी प्रकार हुआ, जैसे जलद द्वारा श्याम ग्रीष्मान्त दिन में उत्पन्न वृष्टि।

उस समय, जनता धर्म को लोकान्तर से आया समझती थी। अभय को चिर प्रवास से परावृत्त मानती थी। अद्भुत श्रीसम्पन्न राजा ने वक्रवभ्र में वकेश,[1] वकावती आपगा[2] तथा लवणोत्स[3] नगर निर्माण कराया। राजा ने पृथ्वी का शासन करते तिरेसठ वर्ष तेरह दिन व्यतीत किये।

किसी समय रजनी मुख काल में कोई भट्टा नाम्नी योगेश्वरी कमनीय कान्ता आकृति धारण कर, विशापति वक के समीप पहुँची। वक उसके रूप-लावण्य पर मोहित हो गया। उसके नव तारुण्य फल प्राप्त हेतु लालायित हो गया। उस कान्ता-कामिनी के साथ रति सुख में अपने जीवन-साफल्य की कामना की। भीरु काम पुतली के दर्शन के कारण राजा काम-विपाक्त हो गया। सुरुचिपूर्ण मधुर ललित संवाद काम विष, शरीर में व्याप्त होने लगा।

योगेश्वरी राजपुरुषों का अधिक से अधिक उपहार देवी चक्र पर चढ़ाकर, अपना योग सिद्ध करना चाहती थी। राजा का विवेक कामाग्नि में परिद्रवित हो चुका था। उसकी मनसा काम-विकार से विकृत हो चुकी थी। योगेश्वरी ने अपने कुटिल कटाक्षों से राजा की व्यामोहित स्थिति का लाभ उठाया।

राजा को कमनीय कान्ता की एकान्त वार्ता में रस मिलने लगा। राजा ने समझा वह उस पर अनुरक्त थी। वह उसके ही जैसी, उसके प्रणय की इच्छुक

---

१ वकेश-वक्रवभ्र।] इनका पता नहीं चलता।
२ वकावती आपगा]

३ लवणोत्स—श्रीनगर से भारत आने वाले पामपुर मार्ग पर पड़ता था। ठीक पता नहीं चलता।

थी। राजा उस रमणी के लावण्य में रम गया। राजा की जड़ता देखकर, योगेश्वरी मन ही मन प्रसन्न हुई।

उसने अत्यन्त सरल भोली-भाली मुद्रा बनाकर, राजा को अपने कृत्रिम अनुराग बन्धन में बाँध लिया। उसने लज्जित होते चंचल नेत्रों से राजा को अपने स्थान पर पधारने के लिए निमंत्रित किया।

उस कमनीय कान्ता के वचनों द्वारा नष्ट स्मृति एवं प्रसन्न राजा यागोत्स माहात्म्य देखने के लिए, उसके स्थान पर जाने के लिए, निस्संकोच उद्यत हो गया। मूर्धा पर बैठा काम भूत, राजा को मर्यादाहीन कर दिया। कामकेलि के लिए अति आतुर, राजभवन की अपेक्षा योगेश्वरी का स्थान पसन्द किया। राजा ने यागोत्स माहात्म्य को अपने काम-साफल्य का एक बहाना मात्र माना। उस ललना की विलक्षण बुद्धि की मन ही मन प्रशंसा करने लगा। उस पर, उसकी बातों पर, राजा को पूर्ण विश्वास हो गया।

राजा अपने शत पुत्र, पौत्रों सहित सोत्साह योगिनी के स्थान पर यागोत्स माहात्म्य देखने गया। उसका उत्साह उस बलि पशु के समान था, जो हरी-हरी घास के लोभ में कसाईखाने की ओर सोत्साह जाता है। किन्तु वध-स्थल पर पहुँचते ही रोता है। वहाँ से भागना चाहता है। बन्धन उसे भागने नहीं देता। वह मरने के लिए बाध्य हो जाता है।

राजा को वातावरण सुखकर नहीं लगा। वह आया था रति-सुख की सुखद लालसा से। वह काम-पीड़ा से मोहित होकर आया था। सुखमय भविष्य की कल्पना में आया था। उस कल्पना में ठेस लगी। उसने योगिनी का वास्तविक रूप देखा। हतप्रभ हो गया। अकस्मात् ग्रीष्मकालीन लतातुल्य सूख गया। कामवासना जीवन वासना मे परिणत हो गयी।

राजा ने वहाँ देवी चक्र देखा। वह काँप उठा। बलि की सामग्री देखी। भयग्रस्त हो गया। खंग देखा। कण्ठ सूखने लगा। वह स्वयं बलि था। देवी का उपहार था। वह घबड़ा गया। उसका शरीर पसीने से भर गया।

राजा ने वहाँ से भागना चाहा। किन्तु योगिनी ने अपनी यौगिक शक्ति से राजा को शक्तिहीन कर दिया।

राजा ने अपनी सन्तानों की ओर देखा। वह कुल संहार की कल्पना से कातर हो गया।

योगिनी ने उसे बलि रूप देखा। उसके कुटुम्ब को बलि रूप देखा। वह प्रसन्न थी। उल्लसित थी। अपनी सफलता पर मुग्ध थी।

राजा को कल की कान्ताकामिनी आज की रक्तप्रिय पिशाची लगी। उसे योगिनी पर क्रोध आया। उसके छल पर क्षुभित हुआ। उसे दण्ड देना चाहा।

परन्तु उसमें शक्ति शेष नहीं रह गयी थी। वह बंधे बलि पशु की तरह विवश हो गया था।

राजा में मानसिक दुर्बलता ने प्रवेश किया था। अब शारीरिक दुर्बलता उसे घेरने लगी। नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह चली। पुत्र पौत्र उसके बल के आश्रित थे। उसकी कातर अवस्था देखकर स्वयं रोने लगे। चिल्लाने लगे। परन्तु वे भी बंधे वध्य बलि के समान पराधीन हो चुके थे। अपनी स्वतन्त्रता खो चुके थे। अपनी शक्ति खो चुके थे। जड़वत् हो गये थे।

उन्होंने योगिनी का संहारक रूप, मातृ रूप के स्थान पर देखा। वात्सल्य-मुद्रा के स्थान पर, रौद्र मुद्रा देखी। वे प्राण भय से कातर हो उठे। बिलखने लगे। राजा से लिपट गये। उनका आर्तनाद सुनकर, उनकी अत्यन्त भयाकुल मुद्रा देखकर योगिनी हँस उठी। वह हास्य इतना भीषण था कि राजासहित उसके कुटुम्बियों के प्राण कण्ठ तक आ गये।

योगेश्वरी आह्लादित थी। अपने जीवन की सर्वश्रेष्ठ बलि, देवी को उपहार चढ़ाने जा रही थी। उसे राजा एवं राजकुल पर दया नहीं आयी। निरीह बालकों पर उसका नारी हृदय करुणा से द्रवित नहीं हुआ। उसने राजा सहित उसके कुटुम्ब को अपनी अलौकिक शक्ति का आश्रय लेकर, देवी चक्र पर उपहार चढ़ा दिया।

योगेश्वरी ने उस कर्म द्वारा सिद्धि प्राप्त की। उसने सशरीर परलोकगमन की कल्पना की। वहाँ एक शिला थी। उस पर जानुओं के आधार पर बैठ गयी। ऊपर उठने के प्रयास में कामना से शिला पर भार देकर उठना चाहा। वह व्योम की ओर उठी। उसके जानुओं की मुद्रा शिला पर अंकित हो गयी। देखते-देखते, योगिनी व्योम में लीन हो गयी।

देव शत कपालेश, मातृचक्र तथा वह शिला खेरी[1] के मठ में सुरक्षित रखी थी। उसे देखकर लोग इस घटना को स्मरण करते थे। कल्हण के समय बारहवीं शताब्दी तक उक्त मठ में वह शिला देखी जा सकती थी। मठ के लोग इस कथा का वर्णन, शिला पर मुद्रित जानु मुद्रा को दिखाकर करते थे।

आधार ग्रन्थ राजतरंगिणी—तरंग १ ३२५-३२६।

---

१ खेरी मठ—इस स्थान का निश्चित पता नहीं लग सका है।

क्षितिनन्द–वसुनन्द–नर-अक्ष

देवी की कृपा से वंशवृक्ष का मूल क्षितिनन्द इस हत्यामय उपहार-उत्सव से बच गया था। उसने भूमि पर तीस वर्ष राज्य किया।

राजा क्षितिनन्द का पुत्र वसुनन्द था। वह स्मर शास्त्र का उत्कट विद्वान् था। काम किंवा स्मर शास्त्र का प्रणेता था। उसने कामशास्त्र को वैज्ञानिक रूप दिया। उसने बावन वर्ष दो मास धरती की रक्षा की।

वसुनन्द का पुत्र नर द्वितीय पिता के पश्चात् काश्मीर का राजा हुआ। उसने साठ वर्ष राज किया। नर के पुत्र अक्ष ने भी साठ वर्ष शासन किया। उसने अक्ष-वल[1] ग्राम का निर्माण कराया।

आधार ग्रन्थ : राजतरंगिणी तरंग १ : ३३६-३३८।

---

१. अक्षवल—वर्तमान अचवल स्थान है।

गोपादित्य

अक्ष का आत्मज गोपादित्य था। पिता की मृत्यु के पश्चात् काश्मीर का राजा हुआ। सद्वीप पृथ्वी की रक्षा की। वर्णाश्रम धर्म के प्रतिपालन द्वारा आदि युग का जगत् में पुनः उदय हुआ।

राजा ने खोल[1] सहित, खगिका[2], हाडीग्राम[3], स्कन्दपुर[4], शमागमादि[5] मुख्य अग्रहार दान किया। गोपादित्य ने गोपाद्रि पर्वत पर ज्येष्ठेश्वर की प्रतिष्ठा की। यह शंकराचार्य पर्वत है। यहाँ पर ज्येष्ठेश्वर का मन्दिर था। मन्दिर अनेक बार बनता-बिगड़ता आज भी अपने गर्भ में शिव लिंग रखे वर्तमान है।

कृती राजा गोपादित्य ने आर्य देशीय द्विजों को गोप[6] अग्रहार दान किया था। राजा धर्मानुशासन में विश्वास रखता था। वह इस विषय में इतना कट्टर था कि लहसुन-भोजी विप्रों को भूक्षीर वाटिका[7] स्थान में निर्वासित कर दिया था। इसी प्रकार निज आचारहीन कश्मीरी ब्राह्मणों को खास्ता[8] में काश्मीर के अन्य स्थानों से लाकर बसा दिया।

काश्मीरी ब्राह्मणों की आचारहीनता, लहसुन भोजन आदि, निषिद्ध कर्मों के कारण उन्हें पवित्र किंवा पुण्य नहीं मानता था। काश्मीर के ब्राह्मण आमिष-भोजी थे। वे मांसाहारी थे। राजा ब्राह्मणों के लिए मांसादि भोजन निषिद्ध मानता था।

उसकी दृष्टि में काश्मीर के बाहर रहने वाले ब्राह्मण पुण्यकर्मा थे। वह सतीसर काश्मीर को पुण्य देश नहीं कहता था। वह शेष भारत को पुण्य देश मानता

---

१ खोल—उलर परगना में वर्तमान ग्राम खुली है।
२ खगिका—वर्तमान ग्राम काकी है।
३ हाडी ग्राम—वर्तमान आडग्राम है। इसे आन्दोम गाँव कहते हैं।
४ स्कन्दपुर—कुथर परगना में खोन्दर गाँव है।
५ शमागम—*वर्तमान समास है।*
६ गोप अग्रहार—गुपकर गाँव है। डल तथा पर्वत के मध्य है।
७ भूक्षीर वाटिका—वर्तमान बुढी वोर है।
८ खास्ता—सुन्दर वन के समीप यह स्थान होना चाहिए।

था। अतएव उसने पुण्य देशीय पवित्र ब्राह्मणों को काश्मीर में आमंत्रित किया। उसका मन्तव्य था काश्मीर में पुनः आचार की स्थापना की जाय। काश्मीर के ब्राह्मण अन्य भारतीय ब्राह्मणों के समान आचार-विचार, खान-पान में शुद्ध तथा पवित्र होकर दूसरों के लिए अनुकरणीय बनें। वे अपने कर्मों के कारण जनता के श्रद्धा-पात्र हो जाएँ।

राजा ने पुण्य देश से आगत ब्राह्मणों को, वाश्चिका[१] आदि अग्रहारों में आबाद किया। उसने यज्ञ के अतिरिक्त पशु हत्या सर्वथा बन्द कर दी। वह किसी भी अवस्था में पशु क्षय सहन नहीं करता था। उसने अपने पवित्र एवं सुधारवादी कार्यों के कारण प्रशस्तियों में 'यह उत्तम लोकपाल है' उपाधि प्राप्त की थी।

राजा ने साठ वर्ष छह दिन मेदिनी का पालन कर, पुण्य परिपाक भोग हेतु सुकृतियों के लोक में प्रस्थान किया।

आधार ग्रन्थ : राजतरंगिणी—तरंग १ : ३३९-३४५।

---

१. वाश्चिका—रामहार नदी के पूर्व दिशा अधोभाग में ऊँची गांव है।

गोकर्ण-नरेन्द्रादित्य

राजा गोपादित्य का पुत्र गोकर्ण पिता की मृत्यु के पश्चात् काश्मीर राज्य का राजा हुआ। उसने गोकर्ण महादेव की प्रतिष्ठा की। उसने तीन दिन कम अट्ठावन वर्ष पृथ्वी पर शासन किया।

राजा गोकर्ण का पुत्र नरेन्द्रादित्य अपर नाम खिखिल था। काश्मीर का राजा पिता की मृत्यु के पश्चात् हुआ। वह भूतेश्वर स्थित प्रतिष्ठान एवं अक्षयणियों का संस्थापक था।

राजा नरेन्द्रादित्य का शैव शक्ति प्राप्त प्रभावोत्कृष्ट एवं देवी का अनुग्रह प्राप्त उग्र नामक गुरु था। गुरु उग्र ने उग्रेश[1] तथा मातृ चक्र स्थापित किया था। पुण्यात्मा राजा ने छत्तीस वर्ष सौ दिन पृथ्वी का स्वामी रहकर, अत्यधिक सुकृतियों के कारण पुण्यलोक प्राप्त किया।

आधारग्रन्थ राजतरंगिणी तरंग १ ३४६-३४९।

---

१ उग्रेश—इस स्थान का पता नहीं चल सका है।

युधिष्ठिर

राजा नरेन्द्रादित्य का पुत्र युधिष्ठिर था। पिता की मृत्यु के पश्चात् युधिष्ठिर काश्मीर का राजा हुआ। सूक्ष्माक्ष होने के कारण उसे अन्ध युधिष्ठिर कहते थे।

राजा ने क्रमागत राज्य का शासन सावधानीपूर्वक किया। उसे अपनी वंश-परंपरा का ज्ञान था। उसने परंपरा निर्वाह का सत् प्रयास किया। कुछ समय तक अपने पूर्ववर्ती राजाओं की पद्धति का अनुकरण किया।

श्रीमद कठिन होता है। राजमद से संयतात्मा अपनी रक्षा कर सकता है। राजमद, धनमद, किसी भी व्यक्ति को पतित करने के लिए, मार्ग प्रशस्त करते हैं।

श्रीमद से उन्मत्त राजा यत्किंचिन् विधायी हो गया। स्वेच्छाचारी हो गया। निरंकुश हो गया। अविहित कार्यकारी हो गया। अकरणीय कार्य में कर्मण्य हो गया। अनुग्रह पात्रों पर अनुग्रह त्याग दिया। धीमानों का संग्रह त्याग दिया। सेवारत सेवकों का पूर्ववत् प्रियकर्त्ता नहीं रह गया।

दुर्विद्य गणों के साथ, निर्विशेष रूप में, सम्मानित तथा अपमानित विद्वानों ने उस दुर्जात राजा का साथ त्याग दिया। वह एक प्रकार से समदर्शी हो गया था। किसी कर्म में न तो अत्यधिक रुचि रखता था और न अरुचि। मूर्ख एवं विद्वानों में किसी के प्रति आदर-भाव नहीं रखता था। राजा के लिए यह समदर्शिता पतन का कारण हुई।

सर्वत्र समदर्शिता योगियों के लिए निस्संदेह गुण है। परन्तु वही पृथ्वीपति के लिए अकीर्ति का कारण होती है। उसके लिए महादोष हो जाती है। दोषों को गुण एवं गुणों को दोष बताने वाले विटों द्वारा प्रतिभाहीन वह राजा शनैः-शनैः स्त्रैण-तुल्य हो गया।

राजा के लिए उसकी अनुचित मर्मभेदी वाणी, विटों के साथ लम्बी मनोरंजन वार्त्ता तथा क्रीड़ा भी भयदायक हो गयी थी। प्रत्यक्ष मिथ्या गुणग्राही, परोक्ष में दोषदर्शक, अस्थिर आदर-प्रदर्शक, वह राजा अनुजीवियों के द्वेष का पात्र बन गया। नितान्त असावधानी के कारण स्खलित, उस राजा की स्थिति शीघ्र ही विशृंखलित हो गयी।

शुभचिन्तकों द्वारा उपेक्षित, स्वच्छन्द राजा के नाश हेतु शक्तिशाली द्रोही मन्त्रियों ने यत्न आरम्भ किया। प्रभु की आज्ञा संकुचित कर्ता एवं स्वच्छन्द, उन

मन्त्रियों ने काश्मीर सीमा पार्श्ववर्ती भूपों को राज्य हरण हेतु उन्मुक्त कर दिया।

काश्मीर के मन्त्रियों द्वारा प्रोत्साहित नाना दिशाओं से वे सब नृप बाज की भाँति राज्य रूप मांस प्राप्ति हेतु समुद्यत हो गये। भयभीत राजा अपनी स्थिति यन्त्रच्युत शिला को, शिल्पी की तरह, व्यवस्थित रखने में असमर्थ हो गया।

काश्मीर की राज्य व्यवस्था विशृङ्खलित होती गयी। राजसत्ता दुर्बल हो गयी। राजा का गौरव सूर्य अस्त हो गया। वह नाम मात्र के लिए राजा रह गया। राज्य के स्थायित्व हेतु मार्ग ढूंढने लगा। उसे कोई रास्ता सूझा नहीं। स्थिति बिगड़ती गयी। परिस्थितियां उसके प्रतिकूल होती गयीं।

हताश राजा ने मन्त्रि परिषद से सन्धि करना चाहा। मन्त्रियों को मिलाना चाहा। किन्तु मन्त्रियों ने राजा के सन्धि-प्रस्ताव को यह चिंतन कर, स्वीकार नहीं किया कि, राजा ने उनके दोषों को लक्ष्य कर लिया है। राजा अपनी स्थिति सुदृढ़ करते ही, उनकी हत्या कर देगा। इस संशय ने, इस भय ने, राजा के सन्धि प्रयत्नों को विफल कर दिया।

राजा की स्थिति डावांडोल हो गयी। उसका कोई सच्चा साथी नहीं रह गया। चाटुकार पार्षद उसकी सत्ता के प्रेमी थे, स्वार्थलोलुप थे। अधिक से अधिक लाभ राज्याश्रय से उठाना चाहते थे। उससे स्नेह नहीं रखते थे। त्याग नहीं करते थे।

मन्त्रियों के षड्यन्त्र के कारण राजसत्ता खिसकने लगी। राजा काश्मीर राज्य खो देगा, यह भावना जड़ जमाने लगी। जनता की भी प्रवृत्ति राजविमुख होने लगी। राजा के कार्यों में किसी को कोई रुचि नहीं रह गयी। स्वभावतः राजभक्त प्राणी भी विरक्त हो गये। राजसत्ता की अन्तिम आधारशिला सेना पर से भी राजा का अंकुश हट गया। सेना राजा के विमुख हो गयी।

राजा के सिंहासनोच्युत हेतु सन्नद्ध मन्त्रियों ने सेना पर नियंत्रण कर लिया। सेना की सहायता से उन्होंने राजभवन घेर लिया। उस समय अति भयंकर भेरी ध्वनि में जन-क्रन्दन दब गया। मदमत्त गज समूहों की पताकाओं की छाया से सूर्य प्रकाश अवरुद्ध हो गया। सुन्दर ज्योतिर्मय अट्टालिकाएँ दिन में भी तमोवृत्त हो गयी।

राजा प्रतिरोध नहीं कर सका। उसमें शक्ति नहीं रह गयी थी। उसका राज प्रभाव नष्ट हो चुका था। परिस्थान राजपुरुषों ने साथ त्याग दिया था। बलहीन राजा मणिहीन सर्प तुल्य था। वह निर्जीव था। निराश था। हताश था।

राजा ने रक्तपात करना उचित नहीं समझा। उसके लिए कोई अस्त्र शस्त्र उठाने वाला नहीं था। उसके लिए रक्तपात करने वाला नहीं था। उसमें स्वयं साहस नहीं था। उसे दूसरों की चिन्ता नहीं थी। दूसरों ने भी राजा की चिन्ता

त्याग दी। दैव पर सब-कुछ छोड़ दिया।

मन्त्रियों ने उसे अवसर दिया। सन्देशवाहक भेजा। यदि राजा काश्मीर मण्डल का त्याग कर दे, सीमा लाँघ जाय, तो उसे प्राणदान दिया जा सकता था। किन्तु किसी भी अवस्था में, स्वल्प सम्पत्ति भी काश्मीर के बाहर राजा साथ नहीं ले जा सकता था। स्वप्राण रक्षा हेतु उत्सुक राजा ने मन्त्रियों की शर्तें स्वीकार कर ली।

राजा ने राज्य की सम्पत्ति का स्पर्श नहीं किया। उस पर मन्त्रि परिषद का अधिकार हो गया। मन्त्रियों ने राजा को राजभवन त्याग कर बाहर निकल जाने का संकेत किया।

राजा ने सकुटुम्ब राज-भवन त्याग दिया। बाहर निकला। अपनी कोमलांग रानियों के साथ पैदल चला। सैनिकों की पंक्तिबद्ध, शस्त्रों की छाया में राज प्रांगण से बाहर निकला।

राजा की विदायी साधारण सौजन्य व्यवहार से भी नहीं की गयी। किसी प्रकार के औपचारिक कार्य का आयोजन नहीं किया गया।

राजा उपेक्षित था। जनता उसके प्रति निरपेक्ष थी। मन्त्रिगण उसके सत्वर राज-सीमा त्याग के उत्सुक थे। अपने कर्म, अपने आचरण से राजा किसी का मित्र नहीं बन सका था। राजसत्ता के मित्र, सत्ता शेष होने पर, मित्रता भी शेष कर दिये।

राजा राजपथ पर आया। वहाँ उसे देखने की किसी ने उत्सुकता प्रकट नहीं की। जिसने देखा, उसने आँख फेर ली। सूखे राजपथ पर रथ गतिशील थे। पदादिक गतिशील थे। उत्तम अश्व गतिशील थे। उनके खुरों से उठती धूल से राजपथ व्याप्त था। कतिपय सदय हृदय पौरगण राजललनाओं का प्रस्थान देखकर दुःखी हो गये। उनके अश्रु रूपी लाज कणिका से मार्ग व्याप्त हो गया।

विपत्ति एक साथ आती है। चारों ओर से निस्संकोच आती है। राज्यच्युत एवं गमनशील उस राजा के बहुत से परिवार, कामिनी, धनादि का इस विपन्नावस्था में शत्रुओं ने उसी प्रकार ग्रहण कर लिया, जैसे गण्ड शैल, पर्वत शिखर से पतित वृक्ष को, उसके लता-फलादि से वेगपूर्वक वंचित कर देता है।

रम्य शैल पथ पर अतिक्रमण करते हुए, क्लान्तिवश वृक्षों की छाया का आश्रय लेकर, बैठने और पुनः चलने मे, उसने महान् दुःख को विस्मृत कर दिया। दूर से सुनाई पड़ते पामरों के कोलाहल से प्रबुद्ध राजा निर्झर वारि के साथ गर्त में डूबता सदृश दृष्टिगत हुआ।

नाना प्रकार के वीरुत तृणों के परिमल से उग्र गन्धवती वन भूमि, जल की ठोकरों से प्रतिहत शिलाओं और फिसलनों से युक्त कुल्याओं को पार करके,

मृणाल सदृश मुग्ध अग लेखाओं एव उत्सग में निहित शरीर वाली, श्रान्त उसकी स्त्रियां मूर्च्छित हो गयी ।

सीमान्त पर्वत तट से दूर होते, काश्मीर मण्डल को देर तक देखकर, शीघ्र विदा लेने के लिए नृप स्त्रियों के पुष्पाञ्जलियां गिराने पर, वेग के साथ नीचे उतरते हुए, गिरि-कन्दराओं के नीड स्थित पक्षी वृन्दों ने भी पृथ्वी तल पर पंख फैला नमित चक्षु क्रन्दन किया । पीछे मुडकर दूर से स्वदेश को देखकर, शिर से गिरे वस्त्र को स्तन पर हाथ रखकर सम्हालती, रुदन करती, नृप वनिताओं से मार्ग मे निर्झर जल बहने लगे ।

जिस सुरम्य देश म वे कामिनियां जन्म ली थीं, जहां बाधक्य प्राप्त की थी, जहां राजसुख भोगी थीं, इस दुःख वेला मे उस जन्मभूमि को त्यागते समय वे किन मानसिक वेदनाओं की पात्र हुईं, इसका वर्णन करने मे कौन समर्थ हो सकता है ?

अपने राज्य, अपनी जनता से त्यक्त राजा, पवित्र काश्मीर भूमि को अन्तिम प्रणाम कर, सीमोल्लघन किया । वह पर राज्य मे आया ।

किन्तु इस जगत् म दुःख के भी साथी होते हैं । सहायक होते हैं । उनका करुण हृदय करुणा से द्रवित होता है । वे अनायास सहायता मे गौरव अनुभव करते हैं । उसमे रुचि लेते हैं । सीमावर्ती नृपों ने उसकी विपन्नावस्था की कथा सुनी । उन्होंने उसे आश्रय दिया । उनकी स्थिर प्रीतियों से, उचित वचन प्रयोग से, शोक शान्ति से, अकारण आज्ञा ग्रहण करने की गम्भीरता से, स्नेह से तथा और भी उन-उन उपचारों द्वारा अपनी भूमि मे आये, इस भूपति के राज्य विभ्रंस के दुःख को सीमा पारवर्ती सज्जन भूमिपतों ने मन्द कर दिया ।

आधार-ग्रन्थ राजतरंगिणी तरंग १ ३५०-३७३ ।

द्वितीय तरंग

प्रतापादित्य–जलौकस

राजा युधिष्ठिर ने अपनी जरावस्था तथा शमियों की श्रुतवाणी के कारण पुनः राज्यप्राप्ति का उद्योग त्याग दिया। जितेन्द्रियों में अग्र एवं विनयोदात्त उस राजा ने विषय अर्थात् देश के साथ अपने पंचेन्द्रिय विषयों को भी विस्मृत कर दिया। तथापि राज्येच्छा के कारण वह घूमता रहता था।

मन्त्रियों ने राजा को दुर्गा गलिका में बन्दी कर दिया। यह दुर्गा गलिका आजकल के श्रीनगर का दुर्गजन स्थान है। शंकराचार्य पर्वत के पश्चिम मूल तथा डल झील के द्वार के मध्य का स्थान उन दिनों दुर्गागलिका नाम से प्रसिद्ध था। दुर्गजन शब्द दुर्गा गलिका का अपभ्रंश है।

राजा बन्दी बना लिया गया। नवीन राजा को सिंहासन पर बैठाने की समस्या उपस्थित हुई। उन मन्त्रियों ने राजा विक्रमादित्य के वंशज प्रतापादित्य को दिगन्तर से लाकर, काश्मीर मण्डल में अभिषिक्त किया। यह विक्रमादित्य शकारि नहीं थे।

उस समय से पारस्परिक कलहग्रस्त काश्मीर मण्डल हर्षादि राजाओं का चिरकाल तक उपभोग्य बना रहा।

राजा प्रतापादित्य ने परम्पराप्राप्त सदृश, अपरम्पराप्राप्त इस पृथ्वी को हृदयज्ञ पति के नववधू तुल्य लालित किया। राजा प्रतापादित्य बत्तीस वर्ष पृथ्वी का भोगकर दिवंगत हुआ।

राजा प्रतापादित्य के पश्चात् उसका पुत्र जलौकस भूमिभूषण हुआ। सूर्य के समकाल तक, शरदकालीन पूर्ण शशि तुल्य, उसने वृद्धि हेतु पिता के ही समय अर्थात् ३० वर्ष तक राज्य किया।

आधारग्रन्थ राजतरंगिणी तरंग २ १-१०।

देवी वाक्पुष्टा—तुंजीन

(काश्मीर की प्रथम सती रानी)

पुरातन बाइबिल एक कथा उपस्थित करती है। विश्व में ६० प्रतिशत यहूदी, ईसाई तथा मुसलिम जगत् उसे अक्षरशः सत्य मानता है। फरोहा की दासता से मुक्त कर महात्मन् मूसा लगभग चालीस लाख यहूदियों के साथ फिलस्तीन की ओर लौटे। सिनायी की मरुभूमि में इस महान् मानव कारवां को कुछ भोजन नहीं मिला। महात्मन् मूसा ने भगवान् से प्रार्थना की। प्रतिदिन प्रातःकाल 'मन्ना' आकाश से गिरने लगा। जनता उन पर निर्वाह करने लगी।

काश्मीर यही कहानी देवी वाक्पुष्टा तथा राजा तुंजीन के रूप में उपस्थित करता है। यह कहानी ऐतिहासिक है, साधिकारिक है। काश्मीर के मुसलमानों का, पाकिस्तान के मुसलमानों का, एक वर्ग विश्वास करता है। हज़रत मूसा की कब्र कहीं काश्मीर में है। उनका काश्मीर आगमन हुआ था।

उसका नाम तुंजीन था। वह काश्मीरेन्द्र जलौकस का पुत्र था। उसकी विदुषी रानी का नाम वाक्पुष्टा था। वह योगेश्वरी थी। राजा की सहधर्मिणी थी। राजा की अर्द्धांगिनी थी। उसकी दिव्य प्रभा से काश्मीर मण्डल प्रभासित था।

राजा-रानी का सुख, जन-रंजन था। जनता उन्हें सन्तान जैसी प्रिय थी। प्रजा के सुख में, दुःख में, वे अपना सुख-दुःख अनुभव करते थे। वह वसुन्धरा, उस राज-दम्पति द्वारा गंगा एवं मृगांक खण्ड से शिव जटा तुल्य शोभित थी।

जिस प्रकार विद्युत एवं मेघ नानावर्णयुक्त इन्द्रधनुष को धारण करते हैं, उसी प्रकार राजा एवं रानी ने नाना वर्णो से मनोरम काश्मीर मण्डल को समुचित रूप से धारण किया था। प्रकृति ने काश्मीर की सुषमा और राजा तथा रानी ने जन-रंजन का सृजन किया था। जनता उनकी थी। वे जनता के थे।

वे परम धार्मिक थे। धर्म उनके लिए आडम्बर नहीं था। धर्म उनके लिए बाह्य प्रसाधनों का संग्रह नहीं था। उनका धर्म शंखघोष में नहीं था। तूर्यनाद में नहीं था। धौंसों की धमक में नहीं था। दक्षिणा-मोह की वन्दना में नहीं था। धर्म उनका प्राण था। देह मन्दिर में थी। वे धर्म के थे। धर्म उनका था।

उन महाभागों ने अपनी धार्मिक भावना के प्रतीक-स्वरूप, भूमि-विलास

आभरण, हर का आवास तुंगेश्वर[1] का स्थापन किया था। मन्दिर का तुंग स्वर्ण कलश तुंग शिखरों पर विराजती सान्ध्य की स्वर्ण धूमरित रश्मि से स्पर्धा करता था।

हर आवास के साथ जनता-आवास का ध्यान वे न भूले थे। जनता के निवास-हेतु कतिका[2] नामक पत्तन का निर्माण कराया था। वह नगर काश्मीर मण्डल के नगरों में मुद्रिका की मणि था।

राजा एवं रानी दिव्य-प्रभावयुक्त थे। उनका प्रभाव स्वसुख के लिए नहीं था। वह था जनता के लिए।

उनका प्रभाव इतना देदीप्यमान था कि काश्मीर मण्डल के मडव राज्य में, चण्ड आतप से उज्ज्वल हुए स्थान में, तत्काल रोपित वृक्ष फलयुक्त हो जाते थे। सूर्य की प्रखर किरणें उनके दिव्य प्रभाव के कारण जैसे सुधारस का सृजन करती थीं।

उस काल में महाकवि चन्दक की सरस काव्यमयी वाणी से काश्मीर उपत्यका गुंजित थी। प्रत्येक मुखरित वाणी में चन्दक का पद लालित्य थिरकता था। उसके सर्वजन प्रेक्ष्य नाटकों की शृंखला ने केवल काव्य-रस द्वारा काश्मीर का रंजन नहीं किया था, उसके नाटक दृश्यकाव्य थे। वे नाटक रंगमंच की शोभा थे। जनता श्रव्य एवं दृश्य काव्य रंजन का रस लेने लगी।

महाकवि चन्दक लोकप्रिय था। काश्मीर की जनता ने स्नेह-प्रदर्शन हेतु उसका नाम चन्द्रगोपिन रख दिया था। चन्द्रगोपिन की सरस काव्य रसधारा में काश्मीर की भावुक जनता मुग्ध हो चुकी थी।

धारा सर्वदा एक रूप प्रवाहित नहीं रहती। रस सर्वदा एकरस नहीं रहता। दिन सर्वदा एक-सा नहीं रहता। रात्रि सर्वदा एक-सी नहीं रहती। सुख सर्वदा सुखी नहीं करता। दुःख सर्वदा रुलाता नहीं।

रथ चक्र की तरह नीचे का भाग ऊपर उठता है, ऊपर का नीचे गिरता है। यही गति का विधान है। यही संसार है।

विधाता वीर्य की परीक्षा लेता है। साहस की परीक्षा लेता है। पुण्य की परीक्षा लेता है। विश्वास की परीक्षा लेता है। धर्म की परीक्षा लेता है।

राजा-रानी के दिव्य प्रभाव का माहात्म्य जानने के लिए दैव ने दुस्सह दैवी आपत्ति को भयंकर रूप से प्रकट किया। काश्मीर में कृषि जीवन साधन है। कृषकों की प्राण है। जनता का जीवन है। काव्य-रस मन प्रसन्न करता है। किन्तु शून्य उदर मन प्रसन्न नहीं होता। शून्य उदर में भावना भावित नहीं होती।

भाद्र मास आता है। काश्मीर की भूमि शाली की पकती बालों की सुनहली

---

1 तुंगेश्वर—इस स्थान का पता अभी तक नहीं लगा है।

2 कतिका—यह वर्तमान गाँव कई ऊलर परगना में है।

साड़ी पहन लेती है। सरस वायु चलती है। शाली क्षेत्र लहराते हैं। प्रतीत होता है सागर में सुनहरी लोल लहरियाँ लहरें ले रही है। इस स्वर्णकाल में, शरदकालीन पकते शालीपूर्ण काश्मीर में, अकस्मात् महान् तुहिनपात हुआ।

महाकाल के अट्टहास सदृश, विनाश हेतु उत्पन्न जनता की जीवित आशाओं के साथ शालियाँ निमज्जित हो गयी। तुहिनपात ने शालियों को चिर-निद्रा में सुला दिया। स्वर्ण-बालियाँ पंकिल हो गयी।—और पंकिल हो गया काश्मीर का भविष्य।

संचित अन्न-भण्डार समाप्त हुआ। जनता शून्य भाण्ड को देखती। शून्य आकाश को देखती। शून्य उदर को देखती। किन्तु शून्यता भी जनता का साथ त्यागने लगी। पेट लग गया पीठ से। शून्य विलीन हो गया शून्य में। प्राणी रह गया कंकाल मात्र।

क्षुधा से क्षीण, जन-प्रेत समूह संकुल, वह घोर दुर्भिक्ष विप्लव, नरकतुल्य प्रतीत होता था। दुर्भिक्ष भयंकर मुख फैलाए भयंकर रूप से चारों ओर से समस्त काश्मीर मण्डल को आत्मसात करने दौड़ पड़ा। महाकाल दुर्भिक्ष क्षुधा का ग्रास काश्मीर बन गया।

कुक्षिम्भरि एवं क्षुधातप्त, निखिल आतुर जन सब-कुछ त्याग चुके थे। सर्व-हारा वर्ग की आधुनिक काव्य चित्रित कहानी, इस क्षुधा व्याप्त काश्मीर जनता की दुर्दशा देखकर लज्जित होगी। यह कहानी अत्यन्त दुःखद थी। इस कहानी के सभी अध्याय दुखान्त थे। इतने दुखान्त थे कि पिता का पुत्र में स्नेह केवल कल्पना रह गयी थी। पत्नी प्रेम भूली कहानी रह गयी थी। पति प्रेम क्षुधा निर्वाण में गल गया था। मातृ-पितृ समादर नाम की वस्तु सन्तानों में लोप हो चुकी थी।

दारिद्र दृष्टिगत एवं अशन हेतु ही क्रिया प्रवृत्त लोक, क्षुधा ताप ने लज्जा, स्वाभिमान एवं कुल गौरव विस्मृत कर दिये थे। क्षाम तथा कण्ठगत प्राणयुक्त याचना करते, पुत्र को पिता ने, क्षमादियुक्त पिता को पुत्र ने त्यागकर, अपना ही उदर पोषण किया था। स्नायु एवं अस्थि मात्र अवशिष्ट वीभत्स स्वदेह हेतु क्रिया-रत भोज्यार्थी प्राणियों का प्रेतों तुल्य युद्ध, राजपथों में, वीथियों में, प्रांगणों में, रौद्र दृश्य उपस्थित करता था। कटुभाषी, क्षुधा क्षाम एवं भयंकर दिशाओं में दृष्टिपात करने वाला, एक-एक व्यक्ति जगत् जीवों से आत्मपोषण की इच्छा करता था।

कंकाल स्वरूप मानवों के उष्ण श्वास-प्रश्वासों द्वारा जैसे काश्मीर उपत्यका जल उठी थी। अस्थि मात्र कंकाल पर उभड़ी फूली शिराएँ त्वचा के अन्दर से ताकती, कहीं से भी करुणा की आशा करती थीं। किन्तु एक-एक दाने के लिए जन-समूह रक्तपात करने पर तुला था। शंका होती थी, कारुणिक की करुणा पर।

पशुओं को खूंटों से जनता ने खोल दिया था। वे अनाथ थे। वे मुक्त थे। उन्हें

मुक्त करने के लिए मुक्ति उनके पीछे धावित थी। उनका मुक्त शरीर, क्षेत्रों में, वीथियों में राजपथों में, प्रागणों मे, विगलित पड़ा था। उन्हें कोई उठाने वाला नहीं था। उनका मृतक सस्कार करने के लिए देश-देशान्तर से हिंस्र पक्षी दौड़ पड़े थे। उन पर मडराते थे। टूटते थे। निचोड़ते थे। लड़ते थे।

यदि काश्मीर मण्डल में कोई प्रसन्न था, कोई स्वस्थ था, तो वे हिंस्र पक्षी थे। पशु थे। मृत कंकालों की बाहुल्यता के कारण प्रतिदिन उनका महोत्सव आयोजित होता था। काश्मीर का गगन मासाहारी पक्षियों से भर गया था। दूषित हो गया था। दुर्गन्धित था।

किन्तु वे पक्षी जो निरामिष थे। पवित्र काश्मीर मण्डल मे जहाँ वे स्वच्छन्दता-पूर्वक विचरण करते थे। जहाँ की सुखद वायु मे कलरव करते थे। विहार करते थे। वे भोजनाभाव मे देशान्तर चले गये। आकाश उनसे शून्य हो गया। तथापि भर गया था। हिंस्र पक्षियों से। भयकर पक्षियों से। जिनकी ध्वनि भयकर थी। जिनका चीत्कार अशुभ था। जिसे सुनते ही मन काँप उठता था। उन्हे उड़ते देखकर काल के दूत का भ्रम होता था। वे प्रसन्न जाते थे। किसी क्षुधा से दिवगत हुए प्राणी की गौर काया को अगौर करते। क्षुधा से मृत प्राणी से अपनी क्षुधा शान्त करते।

काश्मीर मण्डल के पादप तुहिन पात से पल्लवहीन ठूठ खड़े थे। उन पर पक्षियों का आवास नहीं था। वह आवास बन गया था गृद्धो, चीलों और काकों का। मानव मास लोलुप गृद्धो के, चीलो के विष्टापात से उन पर श्वेत लकीरें बन गयी थी। वे वृक्ष सूतक धौत वस्त्र पहन लिये थे।

वितस्ता की धारा, डल लेक, महापद्म सर रग-बिरगी सजी नौकाओं से उत्साहमय नही थी। उनका स्थान ले लिया था—मनुष्यों की फूलकर तैरती काया ने। उन पर बैठे गृद्ध, चील एव काक काल का तूर्यनाद करते थे।

बारहमूला के समीप शवों के एकत्रित होने से जलधारा अवरुद्ध हो गयी थी। वह हो गया था भयकर दुर्गन्ध का आवास। उस पर घटा छायी थी, कौवों की, चीलों की, और श्येनों की।

राजा एव रानी के प्राण काश्मीर के प्राणी थे। राजा एव रानी के जीवन काश्मीर के भूत मात्र थे। उनका सहार देखकर वे हो गये विकल।

राजा ने इसे अपने पूर्व जन्म का दुष्कृत समझा। उसने दुर्बल पातक दैव को दोष नहीं दिया। उसने क्रूर प्रकृति को दोषी नही माना। उसने अनर्थों का मूल अपना कर्म माना।

राजा चिन्तन करता था। चिन्तन चिन्ता का रूप ले लेती थी। किन्तु चिन्तन उसे निष्क्रिय नहीं बना सकी। उसने प्राप्य उपाय एव साधनों का आश्रय लिया। प्राणियों की प्राण-रक्षा का सकल्प किया। जनता की आशा दृष्टि राजा की ओर

लग गयी।

उस अतिदुस्सह एवं घोर महाभय काल में केवल राजा में, करुणार्द्रता देखी गयी। करुणा को प्रकृति भूल गई थी। प्राणी भूल गए थे। पादप भूल गए थे, सरिताएँ भूल गयी थी। उस समय केवल राजा में करुणा की करणें झिलमिलाती दिखायी पड़ती थीं।

राजा रात्रि में, दिन मे अविराम जनता मध्य घूमता। उनमें विचरण करता। उनका दु:ख देखकर दु:खी होता। आँसू बहाता। उनके साथ बैठता। उनके साथ उठता। उन्हें अनेक प्रकार से सान्त्वना देता।

वह जन-समुदाय में, पीड़ित समुदाय में, क्षुब्ध समुदाय में, भूख-जर्जरित समुदाय में, एकाकी जाता। अपने साथ प्रतिहार नही लेता। राजचिह्न नहीं लेता, व्यक्तित्व नहीं प्रकट करता। उसका यह रूप देखकर, प्राणियों में राजा के लिए करुणा उतर आती।

राजा ने रत्नौषधि सदृश शोभायमान अपने दर्शन मात्र से दीनों के दारिद्र्य कष्ट को दूर किया। उसकी महान् अनुकम्पा, उसकी महान् सरलता, उसकी राजोपम प्राणी के प्रति करुणा देखकर, दुःखी जन दुःख भूल जाते थे। राजा के दर्शन-मात्र से जीवों में जीवन आशा, मृत्यु मुख प्राणियों में प्राण वायु, संचरित हो जाती थी।

राजा ने भण्डार खोल दिया। राज्य द्वारा संचित अन्न जनता में बँटने लगा। उसने मन्त्रियों, धनिकों के संचित कोष का संग्रह किया। उस कोष से राजा ने काश्मीर मण्डल तथा देशान्तर से अन्न खरीदने की व्यवस्था की।

अन्न दुरूह घाटियों को पारकर काश्मीर उपत्यका में पहुंचने लगा। सपत्नीक राजा प्राणियों में उन्हें वितरण करता था। सबका दुःख-सुख सुनता था। प्राणियों के जीवन-रक्षा हेतु जो कुछ साध्य हो सकता था, किया।

अटवी में, श्मशान में, रथ्या में, गृह में, किसी भी स्थान में, किसी भी क्षुत्क्षाम की राजा ने उपेक्षा नही की। प्रत्येक प्राणी की जीवन-रक्षा के लिए आतुर था। पशु-पक्षियो की भी प्राण-रक्षा का प्रयास किया। वह राजा था। काश्मीर के केवल मानव का नहीं। वह राजा था प्राणी मात्र का, वह राजा था स्थावर जंगम सबका।

किन्तु समय आया। काश्मीर में अन्न अप्राप्य हो गया। वृक्षों में फल अप्राप्य हो गये। नदियों में, सरिताओं में, जलाशयों में भोज्य जल जन्तु अप्राप्य हो गये। देशान्तर से अन्न क्रय हेतु धन अप्राप्य हो गया। पृथ्वी अन्नविहीन हो गयी और जनविहीन होने के लिए उत्सुक होने लगी।

राजा राज्य की भयंकर स्थिति देखकर शोकार्त्त होगया। उसे जीवन से, जगत् से विरक्ति हो गयी। उसका मन नैराश्य से उपराम हो गया। जनता के सम्मुख जाने में भयभीत होता।

राजभवन मे एकाकी राजा बैठा था। निद्रा उससे विलग हो चुकी थी। शरीर शक्ति संग त्याग चुकी थी। हताश था। सर्वस्व हारे हुए व्यक्ति सदृश था। परिस्थिति ने उसे मौन बना दिया था।

रानी वाक्पुष्टा ने अपने पति की करुण मुद्रा देखी। वह विचलित नहीं हुई। सौम्य देवी पति के समीप आयी। राजा को सादर प्रणाम किया। एक ओर खडी हो गयी।

राजा की दृष्टि प्रियतमा की ओर उठी। राजा के नेत्र शुष्क थे। ज्योति बुझ गयी थी। रानी ने उन नेत्रो को देखा। कुछ बोल न सकी। नीरव वेदना हठात् उसके हृदय-मन्दिर मे प्रवेश कर गयी।

राजा का मस्तक नत था। वह कभी भूमि पर देखता। कभी इधर-उधर देखता। कमर पर हाथ रखे कभी टहलता। किन्तु रानी की ओर देखने का साहस न कर सका। प्रतीत होता था साहस ने उसका साथ त्याग दिया था।

रानी ने दुख-विह्वल पति की ओर देखा। उसके नत मस्तक की ओर देखा। उसके कभी के गौर सुन्दर और अब के सूखे नीरस शरीर की ओर देखा। रानी मुहूर्त्त-मात्र स्तब्ध खडी रही।

रानी ने दीपशिखा की ओर देखा। दीपक के मन्द प्रकाश मे राजा की छाया, जैसे हिलती उसका उपहास कर उठी। दीपक का तैल समाप्तप्राय था। बत्ती पर लुक जम गया था। रानी ने रजतशलाका उठाया। लुक गिराते हुए स्त्री-जन्य कोमल स्वर मे बोली—

"आर्य !"

भीत पर परछाईं डोली। फिर लोप हो गयी। राजा भूमि पर बैठ गया। रो उठा। दोनो हाथो से नेत्र बन्द कर लिया। रानी मुहुर-मुहुर राजा के समीप आयी। पार्श्व मे बैठ गयी। उसके हाथ मे शलाका थी। उसे देखती हुई रानी बोली—

"पृथ्वीपते ! निराशा भूपालो के लिए शोभनीय नही है।"

"ओह !" राजा मुख नही उठा सका।

"साहस—!" देवी वाक्पुष्टा के वाक्य समाप्ति के पूर्व अधीर राजा बोल उठा।

"देवि !" राजा बोलते-बोलते तुष्णीभू हो गया।

"राजन् ! साहस, आप जैसे साहसी पुरुषो का सबल है।"

"देवि !" राजा ने रानी की सौम्य मूर्ति को देखा। राजा मे जैसे साहस लौट आया। उसने भूख से तडपते, परस्पर लडते जन-समुदाय के कोलाहल को वातायन से आते सुना। रानी वातायन के समीप चली। राजा ने जाती हुई रानी के पृष्ठ भाग को देखते हुए कहा—

"देवि ! सुन रही हो ?"

"हाँ—आर्य !"

"इसके लिए कौन उत्तरदायी है ?"

रानी ने राजा की ओर देखा।

"मैं हूं ! मैं हूँ !! मैं हूँ !!!" राजा तीक्ष्ण स्वर से कहता उठ खड़ा हुआ।

रानी राजा की ओर देखने लगी।

"रानी ! रानी !! रानी !!! मैं हूँ···मैं हूँ। मैं हूँ···?"

राजा की आखों से आसू निकल पड़े। रानी वातायन मे लौटी। राजा के समीप आकर अत्यन्त गम्भीर स्वर से बोली :

"नही राजन् ! नही।"

"नही ! नही देवी !! मैं इस महासंहार के लिए उत्तरदायी हूँ।"

"काश्मीरेन्द्र।" रानी विचारशील हो गई।

"यह दुर्दशा···?"

"पृथ्वीपते···!'

"देवी ! किसके अपराध से प्राणी मर रहे है ? उन्होंने किसी का क्या बिगाड़ा है ? क्या दैव ने उन्हे मरने के लिए जन्म दिया था ?"

"काश्मीरेन्द्र ···!"

रानी ने राजा का बाहु पकड़ लिया। राजा की क्षुब्धावस्था, उसकी उग्र मानसिक वेदना का रानी ने अनुभव किया। राजा की दुःख द्रवीभूत विक्षिप्तावस्था लक्ष्य करने लगी। उसने राजा को तल्प पर बैठा दिया। राजा विक्षिप्त तुल्य किंचित् झूमने लगा। राजा ने नतमस्तक कहा—

"देवी ! निश्चय ही हमारे किसी दुस्तर दुष्कर्म के कारण निरपराध लोगों पर घोर आपत्ति आयी है।" राजा के स्वर में विषाद था।

"पृथ्वीपते !···" रानी तल्प के नीचे राजा के समीप भूमि पर बैठ गयी। राजा के पैर को सहलाने लगी। कर-स्पर्श से सान्त्वना देने लगी।

"रानी ! मुझे अवन्य को धिक्कार है।" राजा को अपने ऊपर घृणा होने लगी।

रानी का मस्तक नत हो गया। राजा ने वेदनापूर्ण स्वर में कहा—"ओह ! मेरे सम्मुख ! शरणरहित, पीड़ित लोक विपत्तिग्रस्त हो रहे हैं। और मैं···?"

राजा ने पैर खीच लिया। आवेश में उठा। गवाक्ष के बाहर देखा। बुभुक्षु समूह अन्न के लिए कोलाहल कर रहा था। क्षुधाताड़ित वे सन्तुलन खो बैठे थे। दुःख भूलने के लिए, वेदना भूलने के लिए परस्पर लड़ जाते थे।

"आह ! बन्धु-बान्धवों, सगे-सम्बन्धियों को त्यागने वाले यह लोक ! देखो ! रानी देखो !! शरण रहित हो रहे है। देवी ! देवी !! इस महाक्रूर काल में उनकी रक्षा न करने वाले, मुझ राजा के इस जीवन से क्या प्रयोजन ?"

राजा गवाक्ष से हट गया। वह दीवार के सहारे खड़ा हो गया। साहस बाहर देखने का नहीं हुआ। व्यथा-जर्जरित शिथिल वह भवन की छत की ओर देखता बोला—

"देवी ! यथा कथंचित् इतने दिनों तक यत्नपूर्वक मैंने सर्वलोक की रक्षा की और आज तक कोई "

कहते-कहते राजा की वाणी रुक गयी। मस्तक हिल उठा। उसने निराश स्वर में कहा "देवी ! काल दौरात्म्य से पीड़ित विगत प्रभाव वाली, गौरव-रहित यह पृथ्वी आज निष्किंचन हो गयी है !"

राजा का मस्तक लटक गया। उसके दोनों हाथ शिथिल होकर नीचे गिर गये। वह दीवार की ओर मुख कर खड़ा हो गया। दीवार से लग गया। अपना रूप रानी तक को नहीं दिखाना चाहता था। बाहर से होनी करुण ध्वनि सुनाई पड़ी "राजन् ! राजन् !! राजन् !!! ओ पिता ! क्या हम मरते रहेंगे ?"

राजा ने उंगलियों से कर्ण कुहिर बन्द कर लिया। आवेश में घूमकर खड़ा हो गया। "बोलो, रानी ! बोलो ! चारों ओर से दारुण दुःख-सागर में डूबती इस जनता का उद्धार करने में कौन प्रयत्न सफल होगा ?"

राजा भावावेश में रानी के सम्मुख आकर खड़ा हो गया। रानी ने राजा की ओर देखा। बाहर से आता आर्त्तनाद सुन पड़ा। "राजन् ! पिता !! अन्नदाता !!! बच्चे को कुछ दाना दे दो। देखो, वह मर रहा है। रो भी नहीं सकता।"

राजा ने झपटकर गवाक्ष-कपाट बन्द कर दिया। किवाड़ से पीठ लगाकर खड़ा हो गया। उसकी सांस फूलने लगी। आर्त्त-ध्वनि को वह बाहर रोक रखना चाहता था। सुनना नहीं चाहता था। वह श्वास-वेग में कह उठा—"रानी ! रानी ! देखो ! देख रही हो ! सूर्य के दुर्दिनग्रस्त होने के कारण प्रकाश-रहित यह लोक काल-गति कुलों से सर्वत घिर गया है। इस अन्धकार में मैं क्या करूँ ? मुझे कुछ नहीं सूझता है, देवी !"

मनोवेदना के भार से कमर झुक गयी। महान् कोलाहल उठा—"पृथ्वी-पते ! क्या हमारी बात सुनते हैं ? गवाक्ष भी बन्द कर लिया।"

भयंकर क्रन्दन ध्वनि उठी। राजा से न रहा गया। उसने वेग से गवाक्ष खोल दिया। जीवन-आशा से निराश प्राणियों की नैराश्य करुण-ध्वनि ने गवाक्ष में प्रवेश कर राजा को करुणा से भर दिया।

राजा ने बाहर झांका। राजा की आकृति देखते ही जनता चिल्ला उठी। नारियाँ रो उठीं। करुण आवाज उठी। रोती आवाज उठी। भूमि पर गिरती आवाज उठी—"लोकनाथ ! दया करो। हम क्या करें ? कहाँ जाएँ ?"

राजा से यह हृदय विदारक दृश्य देखा नहीं गया। गवाक्ष छोड़कर हटा।

रानी के समीप चला। उसी से जैसे सान्त्वना पाने की कल्पना की। उसके सम्मुख खड़ा हो गया। बोला—"रानी ! देखो ! नीचे झाँककर देखो। हिम-संपात के कारण दुर्लंघ्य पर्वत से रुद्ध मार्ग वाला लोक, अवरुद्ध द्वारयुक्त नीड़ में स्थित, पक्षियों सदृश विवश हो गया है। यह काश्मीर उपत्यका भयंकर कारागार बन गयी है।"

रानी आगे बढ़ी। उसने नीचे देखा। हिमपात हो रहा था। कितने ही प्राणी वस्त्रविहीन थे। कितनों के पर स्वल्प वस्त्र था। कितनों के प्रावार चिथड़े मात्र में रह गये थे। कितने नंगे थे। कितने ठिठुरकर बैठ गये थे। हिमपात के कारण कुछ पर तुषारकण पाप-पुण्य की तरह लग रहे थे। कतिपय शिशु रोते-रोते थककर माता के वक्षस्थल से चिपके थे। कितनी बहनें शिशु-भाई को सुलाने का प्रयास कोख मे झुलाती कर रही थीं।

देखते-देखते लोग शीत से सहसा गिर जाते थे। करुणा-प्रेरित मानव काया कांगड़ी लेकर उनके पास पहुँचती। शरीर में गरमी पहुँचाने का प्रयास वक्षस्थल पर कांगड़ी रखकर करती। कम्पित जन-समुदाय के बीच कांगड़ियाँ वक्षस्थल से हटाकर महिलाएँ सम्मुख रखकर बैठ जाती। कभी-कभी भभक उठती दीप शिखा के प्रकाश से स्थान की हृदयस्पर्शी भयकरता प्रकट हो जाती। निस्संदेह वह स्थान कच्चे श्मशान से कम भयंकर नही लग रहा था।

रानी ने नीचे देखा। मुहूर्तमात्र गवाक्ष में खड़ी रही। नीचे का रौद्र दृश्य, भयंकर दृश्य, रानी की सौम्य मुद्रा मे परिवर्तन नही ला सका। उसकी मुद्रा में केवल एक परिवर्तन हुआ था। किंचित् वह और गम्भीर हो गयी थी।

राजा धीरे-धीरे रानी के पास आया। नीचे सूखी दृष्टि डाली। गवाक्ष से लटकते हुए कहा—"देवी ! तुमने देखा ! शूर, मतिमान एवं विद्यायुक्त प्राणी काल कौटिल्य के कारण लुप्त योग्यता वाले हो गये हैं।"

रानी खिड़की से हटकर, राजा के समीप आयी। राजा दुःखभार से जर्जरित होकर, शिथिल हो गया था। उस परिस्थिति में कुछ निश्चय करने में असमर्थ था। उसकी निश्चयात्मक बुद्धि विलुप्त हो गयी थी। उसकी भावुकता शान्त हो गयी थी। समीप आती रानी को देखकर बोला—"देवी ! इस पृथ्वी पर ऐसी कौन-सी दिशाएँ हैं, जो स्वर्ण पुष्प कुड्मल समूह संकुल नहीं हैं ? सौजन्य रूपी अमृत की वृष्टि करने वाले स्वामियों से कौन-सा मण्डल शोभित नहीं है ? चिरकाल तक सेवा से शोभायमान एवं प्रशंसित किन लोगों से मार्ग पूर्ण नहीं है ? जो छिपे हुए गुण वाले एवं कान्ति से मोहित हैं, उन लोगों का ही अवगुण यहाँ नहीं है।"

राजा जैसे स्वस्थ होने लगा। शान्त होने लगा। उसमें विवेक पुनः लौटा। स्थिर खड़ा था। रानी कभी राजा की ओर देखती थी, कभी बाहर झाँकती थी।

इसी समय भयंकर ध्वनि उठी—"राजन् ! क्या तुम्हारा हृदय पसीजता नहीं ? क्या हम मरकर ही रहेंगे ? क्या इस जगत् मे ईश्वर नहीं है ? उदार जन नहीं हैं ? राजा नहीं है ? हमारे जीवन का कोई महत्व नहीं है ?" कहते-कहते कितनों ने अपना सिर शान उतार लिया। दोनों हाथों से माथा पकड़कर बैठ गये।

राजा आर्त्तध्वनि सुनकर पुन विक्षिप्त होने लगा। वह सहसा चीत्कार कर उठा—"ओह ! मैं ?—मैं ?—राजा हू। प्राणी मर रहे हैं। और मैं राजा हूं। साधनरहित हूं। इस जीवन को धिक्कार है। रानी ! रानी !! मुझे धिक्कार है। देवी ! मैं जीकर क्या करूंगा ? कौन सा सुख लूटूंगा ? लोक न रहेंगे, तो मैं रहकर क्या करूंगा ? मैं मैं "

"राजन् !" राजा के समीप आती रानी बोली।

राजा बीच मे ही कह उठा "रानी ! देवी !! राजमाते !!! मैं इस शरीर की आहुति देता हू। इसे जलाकर नष्ट करता हू। जनता भूख मे जल रही है। मैं इसे अग्नि से जलाऊँगा।"

"पृथ्वीपते !" राजा के अत्यन्त समीप रानी आ गई।

"ना ना रोको मत ! मैं जन-संहार नहीं देख सकता। देवी !"

राजा दीप ज्योति की ओर चला।

रानी दीपशिखा के सम्मुख खड़ी हो गई। राजा रुक गया। रानी की परछाई में राजा छिप गया। रानी बोली—"धीर ! आर्यपुत्र !! यह क्लीवता कैसी ?"

"तुम मुझे अग्नि का आलिंगन नहीं करने दोगी ? मुझे अग्नि भी नहीं मिल सकेगी। मुझ जैसा हतभाग्य इस जगत् मे कौन होगा ?"

राजा वेदना से घूमा। वह गिरने-सा लगा। उसके पद लड़खड़ाने लगे। वह तीव्र वेदना मे बोल उठा—

"वे पृथ्वीपाल कितने धन्य हैं जो पुरजनों को पुत्रवत् सम्मुख देखकर सुख की नींद सोते हैं। आह ! और मैं ?"

करुणाविष्ट पृथ्वीपति ने वस्त्र से मुख ढँक लिया। तल्प पर गिर पड़ा। नि शब्द रोने लगा।

रानी ने गवाक्ष का पट बन्द कर दिया। मन्द गति से राजा के समीप बढ़ी। उत्थित ग्रीवा वाली निश्चल दीप से मानो कौतुक देखती जाती वह देवी काश्मीरेन्द्र, अपने प्रिय पति के पास आकर खड़ी हो गई। क्षण मात्र पति की ओर देखती रही। राजा भूमि पर बैठ गया था। राजा का मुख तल्प पर धँसा था। उज्ज्वल चादर मे मुख छिपा था। उसका विशाल वक्षस्थल, प्रशस्त पीठ प्रदेश, राजा की सिसक के साथ उठता और दबता था। दोनों हाथों की मुट्ठियों मे तल्प के वस्त्र सिकुड़ गये थे।

रानी ने पति को उठाने का प्रयास नहीं किया। वह पति के पीठ प्रदेश पर

दृष्टि स्थिर करती बोली—

"हे राजन् !! जनता की कुवृत्तियों के कारण आपका कैसा मत-विपर्यय हो गया है ?"

"मत-विपर्यय !" राजा ने रानी की ओर उलटकर देखा।

"हां ! राजन् ! आप इतर जन की तरह, साधारण जन की तरह, अधीर-चित्त हो गये हैं।"

"अधीर !"

"हां ! आप स्वेच्छावृत्ति की कामना करते हैं।"

"मैं ?" राजा चमक उठा।

"यह राजोचित नहीं है। आपको शोभा नहीं देता।"

"देवी !" राजा ने तीव्र स्वर में सम्बोधित किया।

"पृथ्वीपते ! इस कष्ट के समय, दैव विपर्यय के समय, दुष्काल के समय, आप ? और आपका यह धर्म ?"

"रानी ?" राजा रानी की बात सुनकर घूम गया। रानी की ओर देखने लगा।

रानी राजा के नेत्रों मे अपनी शान्त, सरल दृष्टि स्थिर कर बोली—"मही-पाल ! असाध्य दुःखों को दूर करने के लिए यदि असमर्थता है..." रानी कहते-कहते रुक गई।

"तो ?" राजा ने पूछा।

"बड़े लोगों, महान् लोगों मे उनके बड़प्पन, उनके महत्त्व का चिह्न ही क्या शेष रह जायगा ?"

रानी ने राजा के नेत्रों से अपनी दृष्टि दूसरी ओर हटाते हुए कहा। राजा की मुद्रा में चिन्ता ने प्रवेश किया। राजा भूमि पर बैठ गया। नतमस्तक था। आँखें ऊपर नहीं उठती थीं। रानी ने कहा—

"काश्मीरेन्द्र ! बोलिए !! इन्द्र कौन है ? त्वष्टा कौन है ? बेचारा यम कौन है ? जो सत्यव्रती नृपों के शासन का उल्लंघन कर सके ?"

राजा ने किंचित् मुख उठाया। प्रिया की सौम्य मुद्रा को लक्ष्य किया। एकटक उस ओर देखने लगा। कुछ उत्तर नहीं दे सका। मस्तक नत कर लिया। राजा की ओर स्थिरतापूर्वक देखती रानी बोली—

"सुरेन्द्र ! स्त्रियों की पति में भक्ति, मन्त्रियों का अद्रोह, नृपों का जन-पालन मे, अनन्य कर्मता ही व्रत है।"

रानी की मुद्रा दिव्य प्रभा से आलोकित थी। उसने राजा की ओर देखते हुए पुनः कहा—

"व्रतियों में अग्रणी ! जनपालक !! क्या मेरी वाणी कभी विपरीत होती

है ? हुई है ? आपकी जनता को क्षुधाकृत भय नहीं है।"

राजा रानी की ओर अवाक् देखता रह गया। रानी ने गवाक्ष खोल दिया। उसने नीचे देखा। दुःख से शिथिल होकर, रात्रि बहुत बीत जाने पर, आर्त्त, जन-समूह वृक्षों के तले, पड़ा-पड़ा, निद्राग्रस्त हो रहा था। श्मशान की शान्ति ने जैसे श्रीनगर के राजप्रांगण में प्रवेश किया था। राजा शनैः-शनैः रानी के पास आया। मृदु स्वर में बोला—

"रानी!"

"नृपवर!"

"जन-कष्ट दूर होगा देवी ?"

"निश्चय।"

"कब ?"

"कल।"

दिव्यप्रभायुक्त, उस देवी के सोत्साह वचन से, राजा में विश्वास लौट आया। उसे आन्तरिक प्रसन्नता का बोध होने लगा।

रानी आसन पर बैठ गई। देव-ध्यान में लीन हो गई। उसकी वह योग मुद्रा अपूर्व थी। उस पर दैवी प्रभा प्रभासित थी। दिव्य प्रभा प्रभूत देवी का दिव्य रूप देखकर राजा निश्चल हो गया। एकटक रानी की ओर देखने लगा और गवाक्ष से धीरे-धीरे ब्राह्म मुहूर्त्त की जीवनप्रद वायु प्रवेश करने लगी।

प्राची से उदित निर्मल ज्योति में शयनकक्ष निर्मल हो गया। फिर मलिनता तिरोहित हो गई। नव जागरण ने ज्योति में अभिनन्दन किया। उषा की, उस प्रभा में, रानी की दैवी प्रभा में, राजा ने देखा। काश्मीर मण्डल की भयावनी बुभुक्षा काश्मीर का शिरसा नमन करती अन्धकार के साथ प्रस्थान कर रही है।

"आश्चर्य! आश्चर्य!! आश्चर्य!!!"

चमत्कार की घटना काश्मीर मण्डल में सुनाई पड़ने लगी। चारों ओर कोलाहल था। काश्मीर जैसे सोने से जाग उठा था। तुहिनपात श्वेत वस्त्रधारी काश्मीर मण्डल में उषा की प्रथम किरण के साथ, श्वेत कपोतस्वरूप खाद्य पदार्थ प्रत्येक गृहों में, प्रत्येक क्षुधा पीड़ित व्यक्तियों के सम्मुख गिर पड़े थे। सब एक-दूसरे से पूछते थे। कपोत कहाँ से आये ? इतना कैसे आये ? क्या दैव ने हमारी विपन्नावस्था देखकर, परिहास किया है ? क्या यह दैव का इन्द्रजाल है ? सत्य है, तो क्या नित्य मिलेगा ?

राजा ने देखा। अद्भुत चमत्कार। उसे विश्वास नहीं हुआ। उसने इन्द्रजाल समझा। कौतुक समझा। जनता की प्रसन्नता, उनका हर्षोल्लास सुनकर राजा रोमांचित हो गया। वह प्रांगण में स्वयं कपोत देखने दौड़ पड़ा।

उन्हें लिए रानी के समीप आया। कपोत उलट-पलटकर रानी को दिखाने लगा। रानी ने हर्षोत्फुल्ल राजा को देखा। रानी के अधरों पर प्रसन्न पवित्र स्मित रेखा खिंच गई। राजा ने आभार प्रकट करते हुए कहा :

"देवी ! देवी !! तुम्हारी कृपा से काश्मीर की रक्षा हुई। देखो—काश्मीर मण्डल मृत कपोतों से भर गया है !"

राजा ने काश्मीर मण्डल के तुषारमण्डित शिखरों को देखा। उन पर हेम प्रभा विलसने लगी थी। उषा की उस लाली में, काश्मीर उपत्यका की मनहूस व्यथा, शान्त हो गई थी। वायु मण्डल में व्याप्त शोक कालिमा तिरोहित होकर, निर्मल आशा ने प्रवेश किया था। राजा ने जगत् परिवर्तित देखा। उसे प्रतीत हुआ दुःख के तिमिराच्छन्न दिन बीत चुके। सुख के उज्ज्वल दिन का, काश्मीर के उज्ज्वल भविष्य का, उज्ज्वल कपोत पात से शुभारम्भ हो गया था। राजा की प्रसन्नता देखकर रानी ने सस्नेह पूछा :

"पृथ्वीपते !"

"रानी ! क्या यह नित्य मिलेगा ?"

"हां राजन् ! काश्मीर मण्डल की क्षुधा तृप्ति होती रहेगी।"

"ओह-हो !···" राजा प्रसन्नता से नाचने लगा। उसने गवाक्ष खोल दिया।

बाहर देखा। सभी के हाथों मे कपोत थे। कांगड़ी की अग्नि, आग तापने की अग्नि, सब पर कपोत पकवान बन रहे थे। प्रत्येक गृह से श्वेत धूम्र रेखा निकलने लगी। सभी गृहों में, सभी स्थानों मे भोजन बनने लगा। श्वेत तुहिनपातमय मण्डल, श्वेत कपोतपात एवं श्वेत देवदार काष्ठ अग्नि के धूम से भर गया। काश्मीर मण्डल की पुण्य भूमि यज्ञ वेदी बन गयी। लोक की हर्षोत्फुल्ल भावनाएं देव की पूजा हेतु दैव के समीप गगन मार्ग से चली। और राजा विरत हो गया, मरणोद्यम से।

प्रतिदिन कपोत स्वरूप उषा पूर्व वह वस्तु काश्मीर मण्डल में राजा, प्रजा, नर-नारी, मानव-प्राणी के ही नहीं पशु-पक्षी सबके पालन-पोषण की दैव कृत साधन हो गयी। नागरिकों में इस अलौकिक घटना को लेकर वाद, परिवाद एवं संवाद होने लगा।

"यह क्या है ?" एक नागरिक ने प्रश्न किया।

"देवी वाकपुष्टा ने प्राणी मात्र की रक्षा हेतु वस्तुविशेष की सृष्टि की है।" दूसरे नागरिक ने उत्तर दिया।

"रानी की दिव्य प्रभा का यह अद्भुत चमत्कार है।" तीसरा नागरिक बोला।

"किन्तु बिना व्याज प्राणियों पर करुणा करने वाली रानी ने इस हिंसावृत्ति का कैसे अवलम्बन किया ?" एक तार्किक बोला।

"सुनो ! रानी की धर्मचर्या को हिंसा से कहीं भी कलंकित नहीं किया जा सकता।" एक प्रौढ़ बुद्धि व्यक्ति ने उत्तर दिया।

"यह कपोत तुल्य खाद्य वस्तु है क्या ?" एक युवक ने पूछा।

"रानी ने कपोत तुल्य खाद्य पदार्थ का अपनी दिव्य शक्ति से सृजन किया है ?"

"हां, ठीक कहा।" एक मित्र ने अपने कमण्डल की ओर देखते हुए उत्तर दिया।

"प्राणियों की रक्षा, प्राणियों पर करुणा करने वाली रानी भला कैसे प्राणी-हिंसा कर सकती है ?" एक धनी ने मृग चर्म कान्य तले दबाते हुए कहा।

"निस्सन्देह !" जन-समूह बोल उठा।

"यह दैवी कृपा है बन्धुवर !" एक वृद्ध ने विश्वास के साथ कहा।

रानी की गौरवगाथा काश्मीर मण्डल में गूंज उठी। रानी वास्तव में देवी थी। पूज्य थी। दिव्य थी।

तुहिनपात तिरोहित हुआ। दुर्भिक्ष शान्त हो गया। साथ ही शान्त हो गया राजा का क्षुभित मन।

नवीन फसल तैयार होने तक, दैवी वस्तु से प्राणी मात्र के प्राण की रक्षा होती रही। काश्मीर गगन निर्मल हुआ। काश्मीर उपत्यका शव के समान श्वेत कफन ओढ़े पड़ी थी। सरस वायु बही। सूर्य नेत्र खुले। वायु प्रवाह से कफन उड़ गया। भास्कर के नेत्र खुले। प्रकाश ने शव में जीवन-संचार किया। हरी-भरी भूमि मुसकराती निकल आयी।

स्रोतस्विनियां उछलीं। नालों में हँसता जल चला। पादपों में नव पल्लव निकले। देशान्तर से पक्षी कलरव सहित लौटे। हिंस्र पशु-पक्षी उदास होकर, पुनः गहन वनान्तरा में विलीन होने लगे।

बालाओं के कण्ठ खुले। राजपथ उनके वृन्द गान से गूंजने लगा। वीथियों में, रथ्या पर उत्सव आयोजित हुए। मृदंग, मंजीरा, वंशी एवं वीणा पर राग-रागिनियां खेलने लगीं। काश्मीर महानिद्रा से जाग उठा था।

महाकवि चन्दक के नाटका के पृष्ठ खुले। सूत्रधार ने नाटक सूत्र विस्तृत किया। पात्रों ने साज सज्जा निकाली। रंगमंच के भाग लौटे। नट-नटी वीथियों में मटकने चले।

वितस्ता पुलिन में हरी-हरी रंग बिरंगी तरकारियों से लदी नावें घूमने लगीं। भगवान् पर पुष्पित पुष्प चढ़ने लगे। पवन शिखरों पर सूर्य रश्मियां विलसने लगीं।

शीत वायु गयी। काल की मनहूस काली छाया गयी। शालियों की शोक छाया गयी। उनमें क्षेम भर गये। लहलहा उठे। काश्मीर उपत्यका ने वासन्ती साड़ी पहन ली। नीलकुण्ड से बारहमूला तक वितस्ता पुलिन में नवचेतना

लौटी। तटवर्ती पत्तनों में लदी नावें मांझियों के हास-परिहास के साथ टकराती चली। व्यवसायी आये। व्यापारी आये। मुद्राएं खनकी। काश्मीर सुख-समृद्धि की ओर बढ़ चला।

काश्मीर में लक्ष्मी लौटी। देवी वाक्पुष्टा ने लक्ष्मी का समुचित आदर किया। अन्नसत्र खुल गये। मन्दिरों में भगवान् के भोग में नाना पदार्थों की थालियां सज गयी। घृत दीप जल गये। मन्दिरों के कलश चमकने लगे। मन्दिरों के मण्डप कामिनियों के संगीत से भर गये। नृत्यशील नारियों के पायल ध्वनि से मन्दिर प्रांगण गूंज गये।

सती रानी वाक्पुष्टा ने लक्ष्मी की कृपा का लाभ उठाया। उसने ऐश्वर्य एवं सम्पत्ति से पूर्ण कतीमुष[1] तथा रामुष[2] अग्रहार ब्राह्मणों को दान दिया। काश्मीर मण्डल, भारत भूमि, यह जगत् रानी वाक्पुष्टा तुल्य सती-साध्वी दिव्य प्रभायुक्त नारी पाकर, गर्व कर उठा। मानव में भी देवी होती हैं।

समय आया। संयोग के पश्चात् वियोग आया। आदि का अन्त आया। उदय का अस्त आया। उत्पत्ति का लय आया। राजा की पवित्र काया ने छत्तीस वर्ष काश्मीर सिंहासन को सुशोभित किया।

राजा की आत्मा, कीर्ति लता पल्लवित करती, आकाश वेल सदृश सर्वदा हरी-भरी रहती, भगवान् के श्रीपद्मों के दर्शन हेतु चली।

काश्मीर के प्राणप्रिय राजा की शव-यात्रा चली। काश्मीर के नर-नारियों से श्रीनगर भर चला। नेत्र अश्रुपूर्ण हो चले। प्राणियों के चक्षु अश्रु स्रोत उद्गम बन चले। वह चला। उसके साथ उसकी कीर्ति चली।

श्रीनगर स्तब्ध था। शान्त था। नीरव था। कोई किसी से बोलता नहीं था। किसी अत्यन्त दुःखान्त नाटक की यवनिका पतन होने वाली थी। प्राणी हृदयों पर पत्थर रखे, जैसे घटना की क्रूरता का अन्तिम पटाक्षेप देखना चाहते थे।

राजा का शव चला। अरथी उठी। राज-भवन प्रांगण से बाहर निकली।

उस अरथी के पीछे यह कौन ? विस्फारित नयनों ने देखा। शोकाकुल नयनों ने देखा। वह थी केसरिया वस्त्रधारी एक नारी।

सहसा लोग दो पग पीछे हट गये। उन्हें वस्तुस्थिति की गम्भीरता समझ में आयी। उन्होंने देखा। अरथी वाहक नीरव थे। पार्षद नीरव थे। राजन्य वर्ग

---

१. कतीमुष—इस गांव का वर्तमान नाम कैमुह है। आदविन परगना में है।
२. रामुष—शुपियान तथा श्रीनगर के मध्य रामुह नामक वर्तमान गांव है।

नीरव थे। साथ चलने वाले नीरव थे। और हो गये देखने वाले नीरव। हो गयी उनकी दृष्टि नत। हो गया उनका मस्तक नत। लग गये अञ्जलिबद्ध हस्त मस्तक से। आंखों में लाते अजस्र अश्रु जल। और राजप्रसाद की दीवार हो गयी शोतल। वायु मण्डल हो गया स्तब्ध। द्वार से निकली नीरवता बटोरे एक यात्रा।

रानी ने, देवी वाक्पुष्टा ने, शृगार किया था। रचकर शृगार किया था। अंतिम शृगार किया था।

महावर से पद रगे थे। भव्य सौभाग्य मे सिन्दूर की गम्भीर रेखा थी। हथेलियो मे मेंहदी थी। कटि में स्वर्ण मेखला थी। कलाइयो मे स्वर्ण कङ्कण था। कण्ठ मे हेम माला थी। स्वर्ण सूत्र था। बाहु म केयूर था। कानो मे कनक नादी थी। नासिका मे मणि जटित वेसर थी।

देवी चली। देव से स्वयवर करने। पति मे मिलने जा रही थी—जैसे सुहागिन नारी। जैसे चिर-सौभाग्यवती। पाणिग्रहण काल की प्रतिज्ञा पूरी करने। जैसे जता रही थी। पति-पत्नी का मिलन अभिन्न था। पत्नी पति से अभिन्न थी। पत्नी अर्द्धागिनी थी। अर्धनारीश्वर की एक अग थी। यदि दिवगत शकर थे, तो उस शकर की वह सती थी।

सप्तपदी साक्षी थी। वह पुन साक्षी होने जा रही थी। उस अटूट जीवन-सम्बन्ध की।

राजद्वार मे सती के पद बाहर निकले। अरथी आगे बढ़ी। रानी घूमी। उसने उस द्वार को अन्तिम नमस्कार किया, जिससे वर वधू बनकर प्रवेश की थी। जीवन साथी एकसाथ बनकर प्रवेश किये थे। और जिससे निकल रहे थे पुन वर-वधू बनकर। इस जगत् मे रहने नहीं। पार्थिव मिलन आकाशा मे नहीं। वहा जा रहे थे। उस द्वार मे प्रवेश करने जा रहे थे जहा प्रवेश कर कोई पुन लौटता नहीं।

दिव्य देवी की दिव्य प्रभा मे राजपथ प्रभासित था। गोपाद्रि ने देवी का दर्शन किया। महा सरित ने देवी का दर्शन किया। वितस्ता न देवी का दर्शन किया। काश्मीर उपत्यका की रक्षा करती पर्वतमालाओं ने देवी का दर्शन किया। शारिका शिखर ने देवी का दर्शन किया।

शव यात्रा थी। सती की शोभा यात्रा थी। काश्मीर के सामाजिक जीवन मे, धार्मिक जीवन मे, राजनीतिक जीवन मे, एक नया अध्याय खुल रहा था। जुड़ता जा रहा था।

काश्मीर के नर-नारियो ने अश्रुओ से देवी को अर्घ्य दिया। उनके युगल पद्म पाणि ने देवी की अभ्यर्थना की। उनकी मनसा ने उस महान् पुण्यात्मा की वन्दना की।

शव के साथ अग्निहोत्र था। शव के साथ राजा की कीर्ति थी। शव के साथ राजा की चिर पत्नी थी। शव के साथ वेद ध्वनि थी। शव के साथ मानव की

पवित्र श्रद्धा थी ।

वह मंगल यात्रा थी । काश्मीर की कोकिलकण्ठा शंख ग्रीवा से, नारियां के सुन्दर मुख से, मंगल गीत उठे । मीठे गीत उठे । सती स्तुति में चारण की वाणी उठी । मागध के गीत गूंजे । वन्दी की वंश वन्दना मुखरित हुई ।

मार्ग तल कमल पंखुड़ियों से आच्छादित था । प्रत्येक पखुड़ी देवी के चरण-स्पर्श की उत्सुक थी । रज्जु कण आर्द्र थे । सुगन्धित जल से सिंचित थे । देवी के पाद स्पर्श की कल्पना में विनत थे । पुण्य संग्रह के लिए आतुर थे ।

अरथी पर लाज वर्षा हुई । देवी पर लाज वर्षा हुई । पुष्प वर्षा हुई । पक्षियों ने पंखों से छत्र लगाया । छाया किया । पादपों ने झुककर नमस्कार किया । धूप की, गन्ध की, अगर की, उठनी अनन्त व्योम रेखाओं ने नील गगन में, मेघ सृजन करती, प्रखर किरणें शीतल कर दी ।

सूर्य की रश्मिया सरल हुई । मन्दिरों की दीप शिखाएं सरल हुई । मनुष्यों के मन सरल हुए । रानी की उस सरल मूर्ति को देखकर । विमल मूर्ति को देखकर । निर्मल रूप देखकर ।

सुहागिनो के केश खुले । कण्ठ खुले । घुटने टिके । भूमि पर मस्तक टिके । काश्मीर की प्रथम सती की सती नारियो ने वन्दना की ।

शंख घोष में, प्रणव नाद में, डमरू निर्घोष में, घण्टा ध्वनि में, वीणा ध्वनि में, तूर्य निनाद में, पति शव का अनुकरण करती, देवी वाक्पुष्टा महाश्मशान भूमि में पहुंची ।

श्मशान भूमि सुगन्धित जल से सिंचित थी । सुगन्धित पुष्पों से सजी थी । पल्लवों से सजी थी । अगर-चन्दन से, सुगन्धित द्रव्यों से चिता सुरभित थी ।

धूप की व्योमरेखा, इस सुन्दर शोभा यात्रा की, पवित्र यात्रा की, पुण्यस्थली की, कहानी सुनाने व्योम मण्डल की ओर चली ।

इन दोनो महान् आत्माओं से बढ़कर, और किसमें करने की क्षमता थी ? और किसमें शक्ति थी ? और कौन कुछ कर सकता था ?

विधाता ने विचार किया । उनके लिए सन्तान का विधान नही किया । विधाता परीक्षकों की पराकाष्ठा को प्राप्त होता है । जिसने इक्षु को फल देने में परिश्रम नहीं किया । सुस्वादु, मधुर रस को भी विस्मारित कर देने की योग्यता वाले, उससे बढ़कर और क्या कर सकता था ?

किन्तु जगत् ने देखा । विश्व ने देखा । उन निस्सन्तान राजा-रानी की सन्तानें अगणित थी । काश्मीर का प्राणी मात्र उनकी सन्तान थे । प्रिय मात्र थे । बन्धु-बान्धव थे । उत्तराधिकारी थे । सब-कुछ थे ।

दग्ध क्रिया, माता-पिता का तर्पण, अर्घ्य एवं अग्नि देने एक पुत्र आता है । यहां काश्मीर के कोटि-कोटि प्राणी आये थे ।

राजा का शव चिता पर शोभित हुआ। उसे सज्जित किया गया। उसे घृत से सिंचित किया गया। इस अन्तिम वेला में निःसन्तान वे करोड़ों सन्तानों के बीच कितने भाग्यशाली थे ?

पवित्र मन्त्र घोष में चिता पवित्र की गयी। चिता वाहन पर राजा का शव आरूढ़ हुआ। राजा उस महायान पर आरूढ़ हुआ, जिस पर से कभी कोई उतरा नहीं। कोई उतारा जाता नहीं।

चिता की परिक्रमा सती देवी वाक्पुष्टा ने की। राजा के पादपद्मों पर सिन्दूर शोभित ललाट रख दिया। अंजलिबद्ध प्रणाम किया। उसके भ्रमर कुंचित केशों ने पाद पद्म ढक दिया। रानी के जयघोष में, सती के जयघोष में, देवी वाक्पुष्टा के जयघोष से, श्मशानभूमि निनादित हुई। उसके निर्जीव कणों में, निर्जीव के साथी उपकूल में, भी प्रतिध्वनि ने प्रवेश किया।

रानी चिता पर आरूढ़ हुई। काश्मीर के नर नारी मूक हो गये। रो उठे। सबके मस्तक सती की वन्दना में नत हो गये। नीरवता ने शनैः शनैः श्मशान भूमि में प्रवेश किया। शीतल सूर्य रश्मि में, दिव्य गन्ध सुरभि में, दिव्य प्रभा में देवी देदीप्यमान हो उठी।

उनकी केसरिया साड़ी अग्निशिखा सदृश थी। उनके सीमन्त का सिन्दूर अग्निशिखा सदृश था। चिता की ज्वाला उनके विरह ज्वर को शान्त करने के लिए, नलिन प्रच्छद था।

देवी ने पति की मूर्धा अपने पद्मासन पर रख ली। पति की चिर सेवा में लगी। राजा का मुख पति भक्ति से, पति सेवा से, प्रफुल्लित हो गया, रानी की इस एकान्त सती भावना से।

रानी ने राजा का कमल मुख देखा। पद्मिनी ने पद्म देखा। दिव्य वाद्यध्वनि से मही गूंजी। मुखरित वेद ध्वनि से गूंजी। नर नारियों की वन्दना से गूंजी। पक्षियों के कलरव से गूंजी। देवी के कमलनयन विनत हुए।

उनकी योगमुद्रा लगी। उस पवित्र योगमुद्रा के आकर्षण से, उसके दर्शन की लालसा देखकर स्वयंभू अग्नि उद्भूत हुए। रानी का विरह ज्वर शीतल हुआ प्रफुल्लित पीत कमल अग्नि ज्वाला में।

काश्मीर की प्रथम सती, देवी रानी वाक्पुष्टा जहाँ नलिन प्रच्छद पर पति सहित स्वर्गारोहण की थी, वह स्थान प्रसिद्ध हुआ, वाक्पुष्टाटवी[1] देवी नाम से। उसकी चिर नूतन कहानी के साथ। और सच्चरित्रा उस देवी द्वारा वहाँ

---

1 वाक्पुष्टाटवी—एक मत है कि यह स्थान खुदनरवाव परगना में बुद्र ग्राम है। जोन राज के अनुसार इस स्थान के समीप एक गिरिगह्वर होना चाहिए।

स्थापित अन्न सत्र नाना पथों से आते अनाथ समूह को, कल्हण पण्डित के शब्दों में बारहवीं शताब्दी तक, उसके समय तक, चलते रहे। बुभुक्षा शान्त करते रहे। तृष्णा शान्त करते रहे। काश्मीर को स्मरण दिलाते रहे। इस महान् विराट् संयोग-वियोगयुक्त गाथा की।

आधार ग्रन्थ—राजतरंगिणी : तरंग २ : ११-६१

सन्धिमति

विजय-जयेन्द्र-सन्धिमति

राजा तुजीन एव देवी वाक्पुष्टा के पश्चात्, अन्य कुलोत्पन्न राजा विजय, काश्मीर मण्डल का राजा हुआ। उसने आठ वर्ष राज्य किया। विजयेश देवस्थान को उसके चारों ओर, नगर निर्माण कर, घिरवा दिया था।

उस महेन्द्र भूपति का पुत्र, आजानबाहु, इन्द्र-तुल्य, राजा जयेन्द्र था। उसने पृथ्वी का भोग किया। उसके भुजस्तम्भ ने निश्चल कीर्ति कल्लोल रूपी दुकूल के चलन से शोभायमान जयश्री श्रीशालभजिका को धारण किया था।

उस राजा का मत्री अनन्य शिवभक्त सन्धिमति था। वह कालान्तर में सन्धि-मान् हुआ। आर्य राजा हुआ। वह दार्शनिक था। विज्ञ था।

राजा जयेन्द्र का वृत्तान्त अद्भुत है। सुख से चलती जीवन धारा दुःख में परिणत हो गई थी। वह अपने चाटुकार, पार्षदों, खल मित्रों, विट साथियों के कारण, उस महान् व्यक्ति को नहीं पहचान सका, जिसकी महान् गाथा, उसकी ख्याति का कारण है। जिसके कारण, वह स्वय महान् हो सकता था। स्वय अपने साथ, काश्मीर मण्डल को महान् बना सकता था।

आह! ससार में कोई ऐसा उपाय नहीं है, जो इन राजनीतिज्ञ पुरुषों एव भूपाल रूपी, मत्त गजों की चपल कर्णता को दूर करने में समर्थ हो सकता है। विटों ने राजा का कान भरना आरम्भ किया। सन्धिमति का गुण उनके मार्ग में बाधक था। सन्धिमति की योग्यता पार्षदों, सचिवों एव राज-सेवकों के लिए ईर्ष्या का कारण थी।

एक ओर, सन्धिमति की ख्याति बढ़ती गई। दूसरी ओर, राजा की चपल कर्णता में तीव्रता आती गई। एक ओर, सन्धिमति जनता का प्रियपात्र बनता गया, दूसरी ओर, राजन्य वर्ग द्वेष सुरसा के वदन की तरह बढ़ता गया। राजा अपने चारों ओर, धूमकेतु सदृश चक्कर काटने वालों के कुचक्र में चक्रित हो गया। उसके मन में सन्धिमति के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हुई। मन मन्त्री से विरक्त होने लगा। इस अकुर को विटों ने यत्न से सीचना आरम्भ किया। अकुर, ईर्ष्या गन्ध से मुकुलित हुआ। उसमें कुशंका के फल लग गये। माया सदृश सुन्दर फल पकने लगा। राजा

के मन में शंका उदय हुई। अद्भुत मतिमानी मन्त्री आशंकनीय है। खलों के प्रबल प्रचार से पोषित, शंकु फल में, धीमान मन्त्री के प्रति अत्यन्त विषैला द्वेषयुक्त, रस भर गया।

राज मन्त्री का कोई दोष प्रत्यक्ष प्रकट नहीं होता था। जनता ने कोई दोष नहीं देखा। खलों की ईर्ष्या वृन ने राजा की द्वेषाग्नि प्रज्वलित कर दी।

राजा ने सन्धिमति के पास शब्द भेजा, "राजद्वार प्रवेश निषेध है।" सन्धिमति की समझ मे कुछ बात नही आई। उसने इसमें अपना ही अपराध समझा। राजा किसीको निरपराध क्यों दण्डित करेगा ? राज-भक्ति की इस उत्कट भावना के कारण, सन्धिमति प्रत्यक्ष कोई विरोध प्रदर्शित नही कर सका। उसने समझा। मिथ्या प्रचार, अपने मिथ्या जाल मे, स्वयं फसकर, नष्ट हो जायेगा।

सन्धिमति की राजभक्ति, उसके लिए विपद की कारण हुई। उसकी सरलता उसके लिए विषबेल हुई। विटो ने राजा को प्रोत्साहित किया, सन्धिमति सिद्धहस्त कुटिल है। इतना बड़ा दण्ड मिलने पर भी, उसने विरोध-प्रदर्शन नहीं किया। उसने एक शब्द नही कहा। यदि शंका मे तथ्य न होता तो वह चुपचाप सहन कैसे करता ? राजशंका आकाश-बेल तुल्य बढ़ने लगी। वह अपनी शंका का स्वयं शिकार बन गया।

पार्षदों, विटों तथा धूर्तों ने राजा से कहा—"सन्धिमति चतुर है। नीतिज्ञ है। गम्भीर समुद्र है। थाह पाना कठिन है। उसमे प्राणी डूबकर उतराता नहीं। सन्धिमति के पास धन है। बुद्धि है। साथी हैं, अच्छे पदों पर हैं। उसकी वह सम्पत्ति, उसका प्रभाव, उसका पदाधिकारियों से सम्पर्क राजा के लिए विपद का कारण हो सकता है।" भ्रान्त-मत राजा कुचक्र में फंसता गया। राजा की कोपाग्नि-ज्वाला प्रखर हुई। राजाज्ञा हुई—"सन्धिमति का सब-कुछ अपहरण कर लिया जाय!"

सन्धिमति के द्वार पर राजसैनिक पहुंचे। दण्डनायक के नेतृत्व में दण्डधर पहुंचे। उसे राजाज्ञा दी गई। उसने राजाज्ञा शिरोधार्य की। अपहरणकर्ता दण्डनायक को सन्धिमति ने सादर बैठाया। उनका स्वागत किया। राज्यादेश सादर खोला। उसे पढ़ा। उपस्थित लोगों को आशा थी, सन्धिमति की मुद्रा मलिन होगी, वह भयभीत होगा, प्रतिरोध करेगा।

किन्तु सब चकित थे। सबकी कुटिल आशाओं पर पानी फिर गया। उसने सस्नेह कहा—"यह सब प्रभु का ही है। उन्होंने कहला दिया होता। मैं स्वयं राज्य-द्वार पर सब-कुछ पहुंचा देता।"

सन्धिमति की मुद्रा में किंचित् मात्र उद्वेग नहीं था। विकार नहीं था। वह

मर्यादाशील महासमुद्र के समान था जिसे वर्षा का जल, महाप्लावन का जल, अन्धड और दुस्सह तूफान भी मर्यादाच्युत करने में असमर्थ हो जाता था। उसने सब-कुछ स्वतः त्याग दिया। उसके नेत्रों के सामने एक एक वस्तु अपहृत हो गई। राजकर्मचारी उन्हें उठा ले गये। वह सूने घर में, साधनविहीन, शैयाविहीन, धनविहीन रह गया। केवल गृह-मन्दिर की दीवारें, उनपर पड़ी छतें शेष रह गई थीं। उन्हें उठाया नहीं जा सकता था। अपनी स्थूलता, अपनी जड़ता के कारण वे जड़ यथास्थान पड़ी रहीं। राजा ने अपने महत्तर से सन्धिमति की प्रतिक्रिया पूछी। महत्तर ने सविनय निवेदन किया—"सन्धिमति चिन्तित नहीं था। व्यग्र नहीं था। वह भगवान् शिव के सम्मुख आसन लगाकर यथावत् बैठ गया। अपना समय उपासना में, शिवसेवा में व्यतीत करने लगा।" राजा सन्धिमति का यह आचरण सुनकर और कुपित हो गया।

पिशुनों ने राजा का कान भरना आरम्भ किया। सन्धिमति का वह महत् व्यवहार, उसकी शान्ति उन्हें सुहाई नहीं। उसके इस त्याग, इस शान्ति को, उन्होंने सन्धिमति के कपटाचार की एक नीति बताई।

कुटिल चक्रिका ने राजा को सूचित किया—"सन्धिमति चतुर षड्यन्त्रकारी था।" उसकी गम्भीरता पर आरोप लगाया, "वह अपने आचरण से जनता का मन अपनी ओर खींच रहा था। वह कपटाचार राजा के लिए भय का कारण हो सकता था।"

राजा अपनी द्वेषाग्नि में भभक उठा। वह खलों, पिशुनों एवं विटों के चक्कर में फँसता गया। उनके माया-जाल में उलझता गया। उसे किसी दिशा से निकलने का मार्ग दिखाई नहीं दिया।

भूपति जयेन्द्र के विद्वेष रूपी, ग्रीष्म-गर्मी में परिपोषित, उस सन्धिमति को राजपुरुषों ने वार्ता से भी सन्तुष्ट नहीं किया। किसी दिन के कृपा-पात्रों की दृष्टि फिर गई।

यह अस्वाभाविक बात नहीं थी। गम्भीर राजा जब कुछ कहता था, तो उसी समय उक्ति की पुनरुक्ति करने वाले, उसके अग्रगामी चाटुकार प्रतिध्वनिसदृश शब्द करते थे। राजा के कृपाकांक्षी, उसके मन की बात कहकर, उसे प्रसन्न करने का प्रयास करते थे। सन्धिमति के कल्पित अवगुणों की कथा कहकर, राजा के सहसा सन्धिमति के प्रति किये गये अनुचित कार्यों का सरल भाषा में समर्थन करते थे।

समुपलब्ध निर्विघ्न हर सेवा में प्रसन्न, सन्धिमति राजा की विरुद्धता एवं अपने दारिद्र्य से दुःखी नहीं हुआ। उसे भी दैव-कृत ही समझा। उसे दैव का हो

हाथ अपनी विपत्ति में दिखाई दिया। काश्मीर मण्डल में उसके मुख से किसी ने राजा के विरुद्ध एक शब्द नहीं सुना। वह दैव की गति का, राजा के प्रबल कोप का, मौन द्रष्टा था। मौन भोक्ता था। उसका मौन खलों को खलने लगा।

विपत्ति मे, राज-प्रकोप में, कठोर मिथ्या-प्रचार में, सन्धिमति ने सन्तुलन नही खोया। उसका परिणाम हुआ, वह जन मन्दिर में बैठने लगा। प्रत्येक हृदय उसके लिए अनुकम्पा से द्रवित होने लगा। प्रत्येक घर में वह चर्चा का विषय बन गया।

भावी माहात्म्य के प्रभाव से, प्रत्येक घर में अश्रुत भी, यह वाणी गूंजने लगी, "राज्य सन्धिमति का होने वाला है।"

राजप्रासाद में यह गूज पहुंची। मधुमक्खियों की गुन-गुन ध्वनि के समान, काश्मीर मण्डल गुनगुना उठा। विटों को अच्छा अवसर मिला। वे राजा की कर्ण-चपलता, उसके क्रोध, उसकी द्वेषाग्नि का लाभ उठाने के लिए कृतसंकल्प हो गये।

राजा को विश्वास हो गया—बिना कहे बात नहीं फैलती। धुएं के लिए अग्नि आधार अनिवार्य है। उसने अत्यन्त विश्वासपात्र चक्रिकों, दण्डधरों, राजपुरुषों से, यह अश्रुत वाणी सुनी। राजा एक चतुर राजनीतिज्ञ की तरह सतर्क हो गया। उसकी सतर्कता का अनुभव पार्षदों ने किया। तुरन्त सुझाव चारों ओर से आने लगे, "जनता सन्धिमति की पक्षपाती हो चली है। जनता में प्रचलित बात दैव-वशात् सत्य हो सकती है। राजा विपद में पड़ सकता है। राज्यसिंहासन से च्युत हो सकता है।"

राजा को अपने जीवन से भी अधिक मोह सिंहासन का था। पद का था। उसके लिए वह सब-कुछ कर सकता था। राजा की प्रतिक्रिया हुई। वह संत्रस्त हो गया। उसने आदेश दिया—"सन्धिमति अविलम्ब बन्दी बनाकर कारावेश्म में रखा जाय!"

राजाज्ञा, पवन-पंख पर, राज्य सैनिकों के पहुंचने के पूर्व, सन्धिमति के पास पहुंच गयी। सन्धिमति विचलित नही हुआ। वह अपने अर्चा लिंग के सम्मुख गया। भगवान् को प्रणाम किया। वन्दना की। शान्ति का अनुभव किया। किंचित् मात्र भय उसे स्पर्श नहीं कर सका। भय के स्थान पर उसने निर्भयता का अनुभव किया। आन्तरिक बल का अनुभव किया। उसने इस अति कठोर कार्य में भगवान् का हाथ देखा।

नगराधिकृत के नेतृत्व में सैनिकों का दल सन्धिमति के निवास-स्थान पर पहुंचा। घर घेर लिया गया। उसका प्रांगण अस्त्र-शस्त्रों की ध्वनि से गूंज उठा। सन्धिमति उनके सम्मुख आया। उसने बन्दी करने वाले नगराधिकृत, सैनिकों, प्रतिहारियों एवं दण्डधरों को देखा। उन्हें नमस्कार किया।

सन्धिमति की शान्त, सौम्य, उद्वेगहीन मुद्रा देखकर सब हतप्रभ हो गये। सब चकित थे। इस विपत्तिकाल में भी सन्धिमति अविचलित था। उसे उनके प्रति किंचित् मात्र अरुचि नहीं हुई। वह सर्वदा तुल्य रुचिकर रूप में उपस्थित हुआ था। उसके इस मानव-प्रकृति-प्रतिकूल आचरण ने उन्हें अपनी दृष्टि में स्वयं लघु बना दिया था। सन्धिमति को बहुत ऊपर उठा दिया था।

सहसा किसी में साहस नहीं हुआ कि सन्धिमति के पास पहुंचे। उसका हाथ बांधे। उसे बन्दी बनाए। सभी स्तम्भित थे, चकित थे—सन्धिमति की स्थिरता देखकर, उसकी शान्त मुद्रा देखकर, उसका अविचल भाव देखकर, उसका अलौकिक स्वागत देखकर।

जनता उमडी। कोलाहल उठा। उसी प्रकार उठा, जैसे पवन की उग्रता में समुद्र की लहरें उग्र हो जाती हैं। और पवन के तिरोहित होने पर हो जाती हैं शान्त। सन्धिमति की निर्विकार शान्त मुद्रा देखकर, जन-भावना की उग्रता तिरोहित हो गयी। सब देखने लगे, सन्धिमति के जीवन नाटक का एक अप्रतिम अंक।

दण्डनायक आगे बढा। सन्धिमति के पार्श्व में खड़ा हो गया। सन्धिमति ने उसे सादर देखा। अधिकारी लज्जित हो गया। राज्यादेश निकाला। पढ नहीं सका। जनता अधिकारी की ओर प्रश्नपूर्ण दृष्टि से देखने लगी। अधिकारी का मस्तक नत हो गया। लज्जा-भार से दब गया।

सन्धिमति ने दण्डनायक के हाथ से आज्ञा-पत्र ले लिया। मस्तक से लगाया। उसे खोलकर पढ़ा। मुसकराया—धीरे-धीरे पग्त लगाया। आज्ञा-पत्र अधिकारी को वापस कर दिया। बोला, "दण्डनायक! मैं अभी आता हूं।"

दण्डधर नीरव था। उपस्थित जन समुदाय शान्त था। इस राजकीय नाटक का मूक द्रष्टा था। सन्धिमति ने गृह में प्रवेश किया। भर्चा लिंग हाथों में लिया। बाहर निकला। सप्रेम बोला, "बन्धुवर! कहां चलूं?"

दण्डनायक कुछ समझ न सका, क्या करे? जनता से आवाज उठी "कहां?"

"राजगृह में निवास करूंगा।"

"किस स्थान पर?"

"कारावेश्म।"

"कारावेश्म?"

जनता चकित हुई। राज्याधिकारी लज्जित हुए। सन्धिमति पुन मुसकराया। आगे बढ़ा। लोगों ने स्थान दे दिया। भीड बीच से फट गयी। उसके जाने के लिए मार्ग बना दिया। सन्धिमति भीड के मध्य से चला, सबकी ओर देखता, नमस्कार करता बढ़ा। उसके शरीर पर केवल एक वस्त्र था। हाथ

में अर्चा लिंग था। हृदय देश से लगा था। वह पादत्राण-विहीन था।

सबके बद्ध कर मस्तक में लग गये। सबकी आंखें भर आयीं। सन्धिमति के पद अनुद्विग्न उठते कारावेश्म की ओर चले। वन्दीकर्ता लगे उसका अनुसरण करने।

पदों में लौह-शृंखला थी। उग्र निगड़ बन्धन से पीड़ित, चरण शुष्क हो गये थे। सन्धिमति का शरीर कारागार की यातनाओं से शुष्क हो गया था।

किन्तु, वह था, शरीर का धर्म। वह था, काया का कर्म। उसके मन पर, उसकी आत्मा पर, कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह निर्लिप्त था। वह सर्वदा की तरह प्रसन्न था। निर्विकार था। सन्धिमति का समय शिव-अर्चना में सरलता-पूर्वक बीतता गया।

दस वर्ष का लम्बा काल कारागार में बीत गया, किन्तु इस लम्बे काल में उसे काल ने कवलित करने में असमर्थता प्रकट की। जनता इस लम्बे काल में भी उसे भूल न सकी। वह जैसे वन्दी-गृह में रहकर, अपनी स्मृति-ज्योति द्वारा जनता के हृदय-मन्दिरों को ज्योतिर्मय करता रहा।

निष्पुत्र एवं मुमूर्षु वह महीपाल, रोगोत्पन्न पीड़ा और सन्धिमति की चिन्ता से दग्ध होने लगा। उसके प्रयाण का काल शनैः-शनैः निकट आने लगा। व्याधि मन्दिर शरीर में, चिन्ता पूर्व ही प्रवेश कर चुकी थी। अब पीड़ा प्रवेश कर बैठ गयी। राजा व्याधियों से घिरने लगा। पीड़ित रहने लगा। चिन्ता-दग्ध, पीड़ा-पीड़ित, राजा का जीवन दिन सत्वर गति से क्षीण होने लगा। उस क्षीणा-वस्था में सन्धिमति के प्रति द्वेषाग्नि उसे और जलाने लगी। नितरां पीड़ित होते हुए भी, उस राजा की द्वेषाग्नि, बिना सन्धिमति के रक्त की आहुति लिए शान्त होती प्रतीत नहीं होती थी।

दस वर्ष का लम्बा काल अश्रुत सरस्वती में शिथिलता नहीं ला सका। धारणा स्थिर हो चली, "काश्मीर का भविष्य सन्धिमति पर है। वह भावी राजा है।"

निस्सन्तान राजा इस कल्पना से अत्यन्त उग्र हो उठता था। विह्वल हो जाता था, "सन्धिमति उसके पश्चात् उसके सिंहासन को सुशोभित करेगा।" भवि-तव्यता की धारा मोड़ने के लिए राजा के हृदय में भयंकर तूफान उठा।

निस्संदेह मूर्ख जन भवितव्यता को अन्यथा करने के लिए जिन साधनों का अवलम्बन करते हैं, वही भाग्य का निर्मित अनावृत्त द्वार होता है।

विधाता जिस समय दग्ध अंगार समूह में लुपलुपाते स्वल्प तेज वह्नि कण को हठात् अतुल शक्ति सम्पन्न करने की इच्छा करता है, तो उस अग्नि को बुझाने के इच्छुक पुरुष में, उसके निकटस्थ रखे, तरल प्रचुर घृत कुम्भ में, जल कुम्भ का

भ्रम उत्पन्न कर देता है। वह जल समझकर, घृत घट को अग्नि पर, बुझाने के लिए उलट देता है। अग्नि शान्त होने की अपेक्षा प्रज्वलित हो जाती है। स्वल्प तेज वह्निकण भयंकर ज्वाला का रूप ले लेती है। यही दशा राजा की हुई।

राजा को क्रोध-ज्वर-शान्ति का एक ही मार्ग दृष्टिगत हो सका, 'सन्थिमति का वध।" यह कल्पना राजा का अन्तक स्वरूप सर्वनाश के लिए स्वतः उत्पन्न हो गयी।

राजा के क्रूर विचार का समर्थन किया उसके चाटुकार, पदलोलुप, राजसत्ता लाभी, महत्त्वाकांक्षी खल राजपुरुषों ने।

मध्यरात्रि थी। खड़खड़ाता लौह द्वार खुला। रात्रि की नीरवता भग्न हुई। दण्डधरों के दीपदण्ड की लाल लवर में कारावेश्म की भीत लाल हो उठी। दण्डनायक के साथ वधिक था। कुछ दण्डधर थे। सबके आगे कारागाराधिकारी था। सबकी निकली-निकली-सी आँखें सन्थिमति पर स्थिर हो गयी।

सन्थिमति ध्यानस्थ था। पद्मासन पर बैठा था। शिव ध्यान में लीन था। छोटी कोठरी में तैल-दीप टिमटिमा रहा था। द्वार खुलने के कारण वायु से दीप-ज्योति कम्पित हो उठी। उसके साथ कम्पित हुई सन्थिमति की छाया भीत पर।

सन्थिमति चकित हुआ—असमय बन्दीगृह का द्वार खुलते देखकर, द्वार पर एकत्रित दण्डधरों को देखकर। उसने कारागाराधिकारी की ओर देखा। सन्थि-मति को उसकी मुद्रा में क्रूरता परिलक्षित हुई। वधिक इस छोटे समूह के पीछे छिपता खड़ा हो गया। दिवर के हाथ में शासन-पत्र था। वह दण्डनायक के पार्श्व में खड़ा था। वे सब विस्फारित नयनों से सन्थिमति को देख रहे थे। किन्तु कोई कुछ बोल नहीं रहा था। सब निश्चेष्ट थे।

निस्तब्धता भंग की सन्थिमति की पाद-लौह शृंखला की ध्वनि ने। कारा-गाराधिकारी ने संकेत किया, बेणी काटने वाले ने कोठरी में प्रवेश किया। सन्थि-मति ने कोई प्रश्न नहीं किया। किसी ने कुछ कहा नहीं। सबकी वाणी मूक थी। मुद्रा विचलित होते हुए भी जड़ थी।

घन पर बेणी कटने की घन घन ध्वनि से कोठरी गूंजी। वह ध्वनि काल के तूर्यनाद सदृश घोर थी। लौह बेणी लौह घन पर रखी, लोहे को लोहे से काटती, छेनी पर लौह हथौड़ा की पड़ती मार, मानव के द्वारा मानव के संहार की, जैसे भूमिका उपस्थित कर रही थी।

सन्थिमति की आँखें स्थिर थी कटती बेणी पर। दण्डधरों की आँखें स्थिर थी कटती बेणी पर। दीपशिखा की ज्योति स्थिर थी बेणी पर। वधिक की आँखें स्थिर थी बेणी पर। इस स्थिरता में अस्थिर था बेणी धारण किये शुष्क पद। वे कम्पित थे। उनमें शक्ति नहीं थी। वे सोच रहे थे, कैसे उठकर खड़े होंगे? कैसे

काया पैरों पर खड़ी होगी ? कैसे काया मन के अनुसार क्रिया कर सकेगी ?

यन्त्र भी रखे-रखे निष्क्रिय हो जाते हैं। पद भी निष्क्रिय हो गये थे। सूख गये थे। उनमें रक्त-संचार नहीं था।

वेणी कटकर गिरी, झन-झन-झन ध्वनि के साथ। एक अंक का पटाक्षेप हुआ। दण्डनायक की दृष्टि वेणी से उठकर पहुंची सन्धिमति पर। सबके नत मस्तक उठे। सबके नेत्र विस्फारित किंचित् इधर-उधर घूमे।

द्वार से जन-समूह हटा। मार्ग दिया। सन्धिमति बाहर निकला। परन्तु चाहकर भी सन्धिमति उठ नहीं सका। दस वर्षों के लम्बे काल ने पद की गति निष्क्रिय कर दी थी।

सन्धिमति ने पद पर खड़ा होने का प्रयास किया। वह लड़खड़ाया। उसका मनोबल उसके पैरों में शक्ति नहीं उतार सका। कारागाराधिकारी ने संकेत किया। दो दण्डधरों ने कोठरी में प्रवेश किया। कोख में हाथ लगाकर सन्धिमति को उठाया। सन्धिमत उठा। उसने पूछा—"आज यह मुक्ति क्यों ?"

किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। दण्डधर ने उसे चलने का संकेत किया।

"कहां चलना है ?"

उत्तर नहीं मिला।

"इस रात्रि में आप लोगों को कष्ट हुआ !"

सब चुप थे।

"बाहर चलना होगा ?" सन्धिमति ने कारागाराधिकारी की ओर देखा।

"हां।" संकुचित वाणी मुखरित हुई।

"शिव-लिंग ले लूं ?"

"जैसी इच्छा।" दण्डपति ने कहा।

सन्धिमति प्रसन्न हो गया। सन्धिमति ने श्रद्धाभक्ति के साथ अपने एकमात्र अवलम्ब अर्चा-लिंग को उठा लिया।

वह दण्डधरों की सहायता से बाहर निकला। रक्षकों ने शीघ्रतापूर्वक द्वार बन्द किया। एक मर्मर ध्वनि हुई। सवेग वायु ने कोठरी में प्रवेश किया। क्षीण दीप का हो गया निर्वाण।

कोठरी से बाहर सन्धिमति की काया ने मुक्ति का अनुभव किया। पद में मन्द रक्त संचार हुआ। सुहावनी शीतल सुरभित वायु ने स्पर्श किया। प्राण वायु ने दुर्बल काया मे नव प्राण संचार किया।

दस वर्ष के पश्चात्, सन्धिमति ने रात्रि मध्यकालीन नक्षत्रों का दर्शन गम्भीर गगन में किया। उसकी आंखें गगन की ओर स्थिर थी। वह जैसे अपने अतीत को गम्भीर गगन में खोज रहा था। भविष्य देखने का प्रयास कर रहा था। क्षणमात्र, जीवन के इस परिवर्तन ने उसमें नव-चेतना उत्पन्न कर दी थी।

सन्धिमति ने कारागाराधिकारी, दण्डपति, सशस्त्र प्रतिहारियों, दण्डधरों, दण्डदीपधरों की पंक्ति देखकर सहसा पूछा
"क्या बात है ?"
किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वृक्ष पर आश्रय लेते पक्षीगणों ने असमय यह प्रदर्शन देखकर पंख फड़फड़ाये। पुन चंचु पंख मे गाड़ लिये। केवल नभोपथ-गामी नक्षत्र सन्धिमति के जीवन-नाटक के मूक द्रष्टा थे।
कारागाराधिकारी ने संकेत किया। सन्धिमति को सहारा दिये, दोनों पार्श्व-वर्ती दण्डधर आगे बढ़े। सन्धिमति उनकी सहायता से चल पड़ा। उसके हाथों में अर्चा लिंग थे। यामिनी की उस याम मे, उनके पद की ध्वनि सुनते ही, कहीं से उलूक बोल उठा। चमगादड़ ऊपर उड़ता चला गया।
जगत् सोया था। प्रकृति सोयी थी। सुरेश्वरी[1] सर सोया था। गोपाद्रि सोया था। महासरित सोयी थी। वितस्ता सोयी थी। जनता सोयी थी। काश्मीर के नर नारी सोये थे। यदि कोई जागृत था, यदि कोई सचेत था, तो सन्धिमति और उसके साथ चलता लघु समूह।
सन्धिमति ने मार्ग मे स्थान-स्थान पर नियुक्त, दण्डधरों को देखा। उसने चकित स्वर मे पूछा "रात्रि मे दण्डधर ?"
किसी ने प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। लघु जन-समूह चलता रहा। कुछ और बढ़ने पर, सन्धिमति ने पूछा
"यह मार्ग तो श्मशान का है ?"
सबके मस्तक नत हो गये। किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। केवल दीपिका-धरों के जलते दीपिका की हलकी, धूममिश्रित गँदली लाली पथ पर हिलती पड़ती थी। साथ चलनेवालों की धूमिल छाया पृथ्वी पर पड़ती, किसी अति धूमिल घटना की ओर संकेत करती थी। उस लघु समूह के पद थके-से उठते थे। अन्यमनस्क गिरते थे। भारीपन के साथ उठते थे।
मार्ग स्थित दण्डधर सन्धिमति को देखते थे। सिहर जाते थे। चुपचाप मस्तक झुका देते थे। उनके हाथों के नग्न खड्ग झुक जाते थे।
मार्ग जन शून्य था। पशु पक्षियों से शून्य था। प्रकृति जैसे किसी होने वाली लोमहर्षणपूर्ण घटना के प्रभाव में, अव्यक्त शक्ति के प्रभाव मे, निस्तब्ध हो गई थी। प्रकृति की इस श्मशान शान्ति में लघु समूह बढ़ता गया।
सन्धिमति के पदों मे शक्ति आ गई थी। मन में उत्साह आ गया था। मुद्रा में किंचित् मात्र विकार भाव, परिलक्षित नहीं था। श्मशान जैसे जैसे समीप आता जाता था, लघु समूह की गम्भीरता बढ़ती जाती थी। उदासी बढ़ती जाती थी।

---

1 सुरेश्वरी सर—डल लेक।

मुर्दनी मुख पर छाती जाती थी। किन्तु सन्धिमति के पद मे गति आती जाती थी। पद में शक्ति आती जाती थी। पद में उत्साह आ जाता था। पार्श्ववर्ती व्यक्तियों का सहारा त्याग दिया। सकेत किया। उन्होंने हाथ हटा लिया। सन्धिमति क्षण-मात्र अपने पदों पर खड़ा हो गया। सरलतापूर्वक पूछा :

"किस ओर चलू ?"

"श्मशान।"

उत्तर प्रतिध्वनित होते ही, वह लघु समूह, लज्जा से गड़ गया। किसी की आंखें ऊपर नही उठीं। मार्ग लम्बा लगने लगा। अपनी स्थिति पर रुलायी आने लगी।

सन्धिमति श्मशान का नाम सुनकर, विचलित नही हुआ। अघटित घटना घटेगी। जो होना होगा वह होगा। अतएव चिन्ता उन्हे घेर नहीं सकी। भय उन्हें भयभीत नही कर सका। स्वस्थता का अनुभव किया। मन मे स्थान करती, स्थिरता का अनुभव किया।

दक्षिण करपल्लव पर, शिव लिंग था। उसे मस्तक से लगाया। उसे हृदय-स्थान पर रखा। प्रणाम किया। नेत्र प्रफुल्लित हो उठे। कारावास की शिथिलता तिरोहित हो गई। उसके मुख से अनायास ध्वनि मुखरित हुई, "ओ३म् नमःशिवाय।"

वह ध्वनि उसकी शिराओं मे गूंज गई। शुष्क शिराओं में नवजीवन डोल गया। शरीर मे तेज ने प्रवेश किया। उसके पदों को, जैसे कोई प्रेरक शक्ति, श्मशान की ओर सत्वर गति से बढ़ाने लगी।

गगन निर्मल था। किसी दुःखद घटना की परिकल्पना में नक्षत्र उदास थे। वायु अत्यन्त शीतल थी। उपत्यका को घेरकर खड़ी, तिमिराच्छन्न पर्वतमाला अन्धकार को बटोरे काल की छाया तुल्य, लग रही थी। मार्ग की पादप श्रेणी ने यह विचित्र श्मशान यात्रा देखी, उनका हृदय करुणा से भर गया। उनके आंसुओं तुल्य पल्लव गिरने लगे।

निशा की निस्तब्धता सुरेश्वरी सर मे किसी मछली के उछलने के कारण, भग्न हो जाती थी। उलूक की भयावनी ध्वनि, दूर पर किसी कुत्ते का रोना, रात को और डरावना बना देता था।

आर्द्र श्मशान भूमि थी। वितस्ता की लहरें, भूमि तट का छप-छप स्पर्श करती, अपना अस्तित्व खो देती थी। वितस्ता धारा में गिरे पुष्प एवं पल्लव जल-तल पर चंचल थे। किसी शव से उतारकर फेंकी माला एवं पुष्प समूह जल स्तर पर बटुर गये थे।

तट पर नावें बंधी थी। उनमे सोते मांझी निशा गगन की प्रतीक्षा मे, कुथ में और सिकुड़ गये थे। नावों पर टिमटिमाते दीप बहुत हलका प्रकाश जल स्तर पर फैला रहे थे। मन्दिरों के कलश से लगे आकाशदीप अपनी ज्योति समेटना

चाहते थे। कुछ तेल के अभाव में बुझ चुके थे। मन्दिरों के छज्जों के चारों ओर लगी घण्टियों के लोलक वायुप्रवाह से कभी कभी बज उठते थे। उनकी मंजु ध्वनि से, स्थान की नीरवता किंचित् भंग होने के साथ ही साथ मन में भय का संचार हो जाता था।

श्मशान में तरल कूल से कुछ हटकर, शूल गड़ा था। शूल पर चढ़ी रक्तवर्ण निर्गन्ध जवापुष्प माला शूल को कालदूत रूप सदृश उपस्थित करती थी। शूल के समीप नगराधिकृत खड़ा था। उसने दण्डनायक से निवेदन किया

"कार्य सम्पादन ? "

"हाँ," अपने आकार में और सिकुड़ते हुए दण्डनायक ने कहा, "दिविर ! आदेशपत्र !"

दिविर ने नमन करते हुए, आदेश पत्र दण्डनायक को दिया। दण्डनायक ने नम्रतापूर्वक कहा, "महामत ! कृपया शूल के पास पधारियेगा।"

"शूल ?" सन्धिमति चकित हुआ।

दण्डनायक ने मस्तक झुका दिया।

"ओह !" सन्धिमति ने वस्तुस्थिति की गम्भीरता समझी।

उसने वधिक को आगे बढ़ते हुए देखा। उसने यह भी देखा, दण्डधरों ने उसे सावधानीपूर्वक घेर लिया। सबकी मुट्ठी कृपाण की मूठ पर चली गई। सैनिक शस्त्रों से सुसज्जित सावधान खड़े हो गये जैसे एक अत्यन्त दुःखद कार्य करने के लिए सन्नद्ध थे। वे किसी प्रकार विषम राजाज्ञा पालन करने के लिए तत्पर थे।

सन्धिमति ने एक बार, नील गगन की ओर देखा। दूसरी बार वितस्ता की तरल तरंगों की ओर देखा। तत्पश्चात् काश्मीर उपत्यका को घेरे खड़े, हिमाच्छादित, चिर-परिचित, पर्वत शिखरों को देखा। क्षणमात्र में ही उसने अपने मन को संतुलित कर लिया। स्थिर हो गया। उसने अर्चालिंग को मस्तक से लगाया। शूल के समीप शनैः शनैः अग्रसर हुआ।

"महाशय ! राजाज्ञा है ?"

कहते-कहते वधिक की वाणी संकुचित हो गई।

"कहो, बन्धुवर !" सन्धिमति ने उसे उत्साहित करते हुए कहा।

"हमें आदेश है।"

"पालन कीजिए।" सन्धिमति ने सस्मित कहा।

श्मशान की वह मुसकान, मृत्यु का वह स्वागत देखकर, वहाँ के उपस्थित प्राणियों का हृदय हिल गया। और वज्र हृदय वधिक भी हो गया द्रवित।

वधिक कर्माधिकारी किंचित् अग्रसर हुआ। उसने कल्पना नहीं की थी। वह आज ऐसे व्यक्ति को शूली पर टाँगने जा रहा था, जो शूली से भयभीत नहीं था। वधिक से कम्पित नहीं था। प्राणभय कातर नहीं था। बन्धु-बान्धव संसार

के मोह से रुदन नहीं कर रहा था। वह एक ऐसे व्यक्ति के सम्मुख खड़ा था, जो विदेह था। मुक्त था। जिसे काया का मोह नही था, जिसके मुख-मण्डल पर दिव्य प्रभा थी। शान्त चित्त था। गत राग था। उसके लिए शूल जैसे एक परि-रम्भन की वस्तु थी। सन्धिमति ने शूल वधिक कर्माधिकारी को उस निशीथ में देखते हुए कहा :

"राजा का आदेश सहर्ष पालन करूंगा, वधिक!"

सन्धिमति के मुख की ओर वधिक देखने लगा। सन्धिमति ने पुनः कहा : "वधिक ! क्षणमात्र समय दोगे ?"

"महात्मन्!"

"मैं अर्चा लिंग, पवित्र वितस्ता में, विसर्जित कर दूं ?"

"महात्मन् ! जैसी इच्छा।"

"धन्यवाद।"

सन्धिमति ने शिवलिंग मस्तक से लगाया। वितस्ता-पुलिन में पहुँचा। उसने शिवलिंग को हृदय से लगाकर, नेत्रों से लगाकर, श्रद्धापूर्वक वितस्ता प्रवाह में विसर्जित कर दिया। सन्धिमति ने शीतल वितस्ता जल से मार्जन किया। आचमन किया। उसके इस अन्तिम घड़ी के कर्म में किसी ने किसी प्रकार की बाधा नही दी।

सन्धिमति शूल के समीप आया। चुपचाप खड़ा हो गया। उसे घेरकर शस्त्र-धारी दण्डधर खड़े हो गये। वधिक शूल के समीप जाता, पुनः लौट आता। वह जैसे अपना वध-कर्म भूल गया था। राजपुरुषगण विमन हो गये थे। सन्धिमति उन्हें दुविधा में देखकर बोला, "मित्र वधिक! मैं उद्यत हूं। शूल पर मुझे टांगो।"

वधिक सन्धिमति की ओर बढ़ा। पुनः रुक गया। उसका मस्तक नत था। उसका शरीर कम्पित था। उसकी अन्तरात्मा चिल्ला रही थी—"यह अन्याय है। निर्दोष की हत्या है। यह नही होना चाहिए।"

वधिक का संकोच देखकर, राज्याधिकारी आगे बढ़ा। उसने वधिक से कहा : "राज्यादेश वधिक !"

"जानता हूं।"

"तो ?"

"आप लोगों का कार्य समाप्त हो गया। मुझे अब कार्य करना है। मैं अपनी इच्छानुसार कार्य सम्पादन करूंगा।"

वधिक की दृढ़ वाणी सुनते ही सब अवाक् हो गये। दण्डनायक ने कहा : "वधिक!"

"यदि आप विलम्ब समझते हैं, तो स्वयं शूल दें।"

वधिक कहते-कहते सन्धिमति के पास आ गया। वितस्ता धारा की ओर देखने लगा। धारा में गले पत्ते बहते चले जा रहे थे। किसी मन्दिर से फेंके सूखे

पुष्प गतिशील थे।

दण्डधर वहा से पलायन करना चाहते थे। सब वहा से हटना चाहते थे। किन्तु क्रूर राजा का रूप, भयकर रूप, उनके सम्मुख दण्डायमान हो जाता था। उनकी जीवनलीला भी, सन्धिमति के समान राजकोप में समाप्त हो सकती थी। इस भयकाल में, इस द्विविधा-काल में, उनके अन्दर बैठा मानव उनसे कुछ और ही कह रहा था।

"वधिक !" सन्धिमति ने सयत स्वर में कहा, "राज्यादेश तुम्हारा कर्त्तव्य है।"

"महामन् !"

"कर्त्तव्य पालन से विमुख होना कायरता है।"

"किन्तु "

"राज्यादेश न मानना राजद्रोह है। अपराध है वधिक !" सन्धिमति शूल के अत्यन्त निकट आकर खडा हो गया।

सन्धिमति की शान्ति वधिक के कार्यों में व्यवधान उपस्थित कर रही थी। वहा उपस्थित सब विमन थे। अन्यमनस्क थे। कोई अप्रिय कार्य को करना पसन्द नही करता था। "वधिक !" सन्धिमति ने सस्मित कहा, "तुम्हे सकोच होता है। मेरे कारण तुम कर्त्तव्य विमुख होगे। मैं तुम्हारा कार्य हलका कर देता हू। मैं ही शूल पर चढता हू। तुम्हारा कल्याण हो। वृद्धि हो।"

सन्धिमति शूली पर चढ गये। बिना प्रतिरोध चढ गये। निर्दोष चढ गये। जनता को उस समय ज्ञान हुआ, जब प्रातःकाल शूल पर चढे सन्धिमति को श्रीनगर के श्मशान में देखा गया। राजा ने बडी सावधानी से कार्य किया था। किसी को पता नही चल सका था। जनता को विद्रोह, प्रतिरोध, कोलाहल करने का अवसर नही मिल सका। कारागाराधिकारी को भी पूर्व सूचना नहीं दी गयी थी। सभी कार्य राजा ने अत्यन्त गोपनीय ढग से, अत्यन्त विश्वासपात्र सेवकों द्वारा कराया था।

जनता कुपित हुई। ब्राह्मण को शूली दी गयी थी। ब्राह्मण अवध्य था। राजा ने शास्त्र की अवहेलना की। श्रीनगर की वीथियों में, रथ्या पर यही चर्चा चली।

लोग श्मशान की ओर जाना चाहते थे। किन्तु क्रूर राजा की क्रूरता, राजदण्ड-भय के कारण, श्मशान की ओर न जा सके। भीतर ही भीतर चर्चा फैलती रही। सन्धिमति को निर्दोष शूली दी गयी थी। राजा इस दोष का, इस पाप का भागी था।

सन्धिमति ने स्थितप्रज्ञ तुल्य शूली का आलिंगन किया। निर्विकार भाव से भयकर वेदना सहन की। किन्तु जगत् ने उसके मुख से, राजा के प्रति, शूली देने

वाले के प्रति, अशुभ एक शब्द का उच्चारण नहीं सुना। उसने शूली चढ़ते समय यह भी नही कहा कि वह निर्दोष है, उसकी निरपराध हत्या की जा रही है। उसने शाप भी नहीं दिया। कटु वचन का प्रयोग नही किया। भाग्य को कोसा नही। शूली पर चढ़ना भाग्य-दोष भी नही माना। भगवान् की दुहाई नही दी। प्राणों की भीख नही मांगी। गिडगिड़ाया नही। व्यथित नहीं हुआ। वह श्मशान में शान्त आया था। श्मशान की शान्ति मे उसने शान्ति प्राप्त की थी। शान्त हुआ था। उसकी यह शान्ति श्रीनगर मे जैसे व्याप्त हो गयी थी, तथापि श्रीनगर का वातावरण क्षुब्ध नही हुआ। सब-कुछ यथावत् शान्त चलता रहा।

निर्दोष की हत्या, निर्मम की हत्या, चाहे कितने ही गुप्त रूप से क्यों न की जाय, वह गुप्त नही रहती। हत्यारा स्वय हत्या का रहस्य प्रकट कर देता है। हत्या हत्यारे की मूर्धा पर चढकर बोलती है। उसे विपन्न कर देती है।

राजा ने सुना, सन्धिमति शूल विद्ध कर दिया गया। वह मर गया। राजा ने उसकी मृत्यु के समय की एक-एक घटना, एक-एक बात विस्तृत रूप से पूछी। उसे धक्का लगा। सन्धिमति ने दया-भिक्षा नही मागी। प्राणदान के लिए आर्तनाद नही किया। कटु शब्द नही कहा। शाप नही दिया। राजा सुनता-सुनता चंचल होने लगा।

राजा चिन्तित हुआ। तीव्र मानसिक वेदना में विक्षिप्त हुआ। उसे चारों ओर सन्धिमति का शान्त पवित्र मुख-मण्डल दिखायी देने लगा। वह मुख उसकी ओर चारों ओर से दौड़ा चला आ रहा था। सन्धिमति की आत्मा जैसे उसे चारों ओर से घेर रही थी। सन्धिमति की मुखमुद्रा में राजा के प्रति क्रोध नही था। राजा के प्रति उसके हृदय में करुणा थी। दया थी। उसके विमल नेत्र, निर्मल नेत्र, राजा की मनः-अवस्था देखकर दुःखी थे। सन्धिमति के पवित्र नेत्र, अर्ध-प्रस्फुटित नेत्र, देखकर राजा का मनःताप बढ़ने लगा। खिन्न मन राजा ने मुख दोनों हाथों से ढक लिया।

राजा को कुछ सूझता नही था। उसने हत्या की थी। ब्रह्महत्या राजा के पीछे छा गयी थी। उसे चारों ओर से घेर रही थी। उस पर आरूढ़ हो रही थी। राजा मनोवेदना में चिल्ला उठा। उसे अपना ही भय लगने लगा। उसे अपनी बोली ही भयभीत करने लगी। वह डर गया। घबरा गया। उसे पसीना आ गया। वह विक्षिप्त की तरह व्यवहार करने लगा।

राजा कभी उठता। कभी बैठता। कभी तल्प पर मुख गाड़ता। सारा विस्तरा सिकोड़ डालता। उसके दोनों पंजों की उंगलियां विस्तर की चादर को खीचने लगती। फिर अकस्मात् उठ जाता। चारों ओर देखता। भाय,-भांय, सांय-सांय करती भयंकर ध्वनि उसके कानों में प्रवेश करती। उसके हृदय तक पहुंचती। उसे विकल कर देती। वह अपने शयन-कक्ष में चक्कर काटने लगता।

कभी गवाक्ष बन्द करता। कभी बाहर झाँकता। सरसर करती हवा शयन कक्ष में प्रवेश करती। शीतल वायु चुभने लगती। शीतल वायु में वह अपना मन-ताप शान्त करना चाहता। किन्तु वायु उसकी शिराओं में घुसकर, उसे अस्थिर कर देती।

वह अनिद्रीन एवं हृदय की अग्नि ऊष्मा में विषमता की ओर भागता। नक्षत्रों तक पहुँचना चाहता। सुन रखा था, मरने पर मनुष्य नक्षत्रों तक पहुँचता है। तारा बन जाता है। उसने क्षण मात्र कल्पना की कि वह यह स्थान त्याग देगा। नक्षत्रों में लीन हो जायगा। ओह उसने जोर से गवाक्ष-कपाट बन्द कर दिया। तल्प की ओर दौड़ा। औंधे मुँह उस पर गिर पड़ा।

राजा ने स्मृति खो दी। उसने मानसिक सन्तुलन खो दिया। उसे उन पर असीम क्रोध आने लगा, जिनकी प्रेरणा पर उसने वध की आज्ञा दी थी। राजा चिल्लाया। उन्हें बुलाने लगा। उन्हें खोजने लगा। किन्तु उसकी प्रतिध्वनि उसे स्वयं चिढ़ाती। भीषण भयंकरता के साथ शयन-कक्ष में गूँज उठती।

राजा का उग्र रूप, विक्षिप्त रूप देखकर उसके मुँहलगे पार्षद डरकर पला-यन कर चुके थे। राजा विक्षिप्तावस्था में न जाने क्या कर बैठे? कहीं उन्हीं पर उबल न उठे? उनका वध न करा दे? उन्हें ताड़ित न करे? उन्हें बन्दीगृह में न ठूँस दे?

राजा को कोई सान्त्वना देने नहीं आया। कोई उसे शान्त करने नहीं आया। कोई उसकी मानसिक व्यथा का बटाने नहीं आया। राजा पर हत्या आरूढ़ थी। वह सब-कुछ कर सकता था। स्वयं मर सकता था।

राजप्रासाद की दीवारें उसे चिढ़ाने लगीं। टिमटिमाते दीपक उसे खिझाने लगे। अन्धकार उसे घेरने लगा। तीव्र मानसिक वेदना उसे क्षुब्ध करने लगी। वह तल्प से उठा। भूमि पर पैर रखा। अट्टहास किया। उसकी विस्फारित आँखें घूमने लगीं। पैर काँपने लगे। वेदना-ताप से उसका रूप भयंकर हो गया। उसकी वह रौद्र मुद्रा देखकर दास-दासी, भृत्य, दण्डधर सब उससे दूर भाग गये।

निशा गम्भीर थी। और गम्भीर होने लगी। राजा निशीथ के अन्धकार में लीन होने लगा। दीपक के प्रकाश में बनती उसकी परछाईं, भीत पर उसका भविष्य, जैसे लिख रही थी। उसने अपनी परछाईं दीवार पर देखी। उँगली उठाता, हाथ बढ़ाता, वह परछाईं की तरफ बढ़ा। परछाईं लुप्त हो गयी। परछाईं पकड़ने के उद्वेग में वह दीवार से टकराकर गिर पड़ा। फिर उठा।

दीपक की ओर उसकी तप्त लाल आँखें उठीं। वह दीपक की ओर चला। घूमकर देखा। परछाईं फिर दीवार पर उसका उपहास करती, उसकी गति के साथ हिलती थी। राजा एक बार परछाईं की तरफ फिर दौड़ा। परछाईं उसकी दौड़ के साथ हिलती-डुलती लोप हो गयी। राजा का रूप उग्र हो गया। उसने दीपक

को इस परिहास का कारण समझा। वह दीपक की ओर दौड़ा। विक्षिप्त की तरह फूक मारकर उसने ज्योति बुझा दी।

उस कालरात्रि में, घोर अन्धकार में, राजा को कुछ नहीं सूझा। कुछ नहीं दिखा। कालरात्रि का काला अन्धकार उसे घेरता आतमसात् करने पर तुल गया था।

राजा ने कल्पना की अपनी मृत्यु की। काल का भयंकर रूप, उस काल रात्रि में, उस भयंकर तमावृत्त प्रासाद मे, उसे पकड़ने के लिए, दौड़ने लगा। राजा ने अन्धकार से, उस तमोच्छन्न निशा से, दूर भागना चाहा। परन्तु उसे कुछ सूझा नहा। उसने जैसे देखा, सन्धिमति के कमलनेत्र उस घोर 'अन्धकार में दो नक्षत्रों की तरह ज्योतिर्मय थे। उसकी तरफ एकटक देख रहे थे। वह भय से चिल्ला उठा। आखें मूद ली। वह उन आखो को देखना नहीं चाहता था। उसकी आंखें भर आयी। वह हिचकिया लेने लगा।

वह देर तक उस स्थिति मे पड़ा नहीं रहा। मरणान्तक मानसिक वेदना में वह उठा। बाहर निकलना चाहा। परन्तु द्वार दिखाई नहीं पड़ा। गवाक्ष खोलना चाहा। दीवार के सहारे लड़खड़ाता, दोनों हाथो से किवाड़ के पल्लों को खोजने लगा। उसे द्वार नहीं मिल सका। गवाक्ष नहीं मिल सका। वह शिथिल हो गया। पसीने से भर गया। वह कोने की दीवार से टकरा गया। हताश होकर, दोनो दीवारो के कोनो के बीच बैठ गया।

शीतल दीवार मे स्पर्श-अनुभव किया, मृत्यु की शीतलता उसे स्पर्श कर रही थी। वह व्यग्र हो उठा। मृत्यु-भय से उठा। साहसहीन उठा। अपनी सारी शक्ति एकत्रित कर उठा। किन्तु आगे बढ़ न सका। एकाकी, आसन्न मृत्यु-भयग्रस्त राजा ने घोर गर्जन किया। भृत्यों को पुकारा। उस गृह में, उसकी ही प्रतिध्वनि उसे भयभीत करती, उसकी प्राणवायु को क्षुब्ध करती थी।

भग्न-हृदय महीपाल, रोग से पहले ही जर्जरित था। मानसिक वेदना ने उसे और जर्जरित बना दिया था। सन्धिमति की हत्या ने उसे हतभाग्य बना दिया था। उसके सिर पर नाचती निर्दोष हत्या ने उसकी समस्त शक्ति का अपहरण कर लिया था। वह खड़ा न हो सका। लुढ़क गया। फिर बच्चों की तरह तल्प खोजता, तल्प के समीप आया। तल्प को थामकर, झुक गया। उस पर चढ़ न सका। बैठ न सका। सो न सका।

तल्प थामे भूमि पर, कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा। उसने उठने का साहस नहीं किया। उसके दोनो हाथ तल्प पर फैलने लग गये। मस्तक हाथों के बीच लग गया। उसमे घोर शिथिलता ने प्रवेश किया।

पश्चात्ताप उस निशीथ रजनी मे उसके हृदय को तमोवृत्त करने लगा। पूर्व एवं वर्तमान कर्मो पर स्मृति मुहुर्मुहु गई और लौटी।

उसके सम्मुख सद्यःप्रसन्न सन्धिमति का पवित्र पुण्य ज्योति से प्रखर मुख-

मण्डल आने लगा। वह उस आकृति को देखकर भयभीत नहीं हुआ। अत्यन्त शोक के पश्चात्, अत्यन्त विषाद के पश्चात्, अत्यन्त क्रूर वृत्ति के पश्चात्, अत्यन्त मनोवेदना के पश्चात्, अत्यन्त भय के पश्चात्, घोर प्रतिक्रिया हुई। वह संसार से, जगत् से दूर हो गया। एकाकी रह गया।

राज्य-प्रसाधन, राज्य-पुरुष, विट, खल, पार्षद इस दुस्सह वेला में उसका साथ देने नहीं आये। वह अपने पर खिन्न हो उठा। अपने जीवन पर खिन्न हो उठा। अपनी राज्यश्री पर खिन्न हो उठा। जो कुछ किया था, उस पर खिन्न हो उठा।

उसमे खिन्नता के पश्चात्, शोक ने प्रवेश किया। वह अपने कुकर्मों पर विहगम दृष्टि डालता, शोकाकुल हो गया। उसे क्रोध आया अपने दुर्मन्त्रणादायको पर। किन्तु उसमे इतनी शक्ति नहीं थी कि उठता। कुछ बोलता। किसी को बुलाता।

उसका शोक बढ़ता गया। दुर्बल हृदय शोक भार सहन नहीं कर सका। शोक-शकु हृदय से पहले वेदना फूट निकली और पश्चात् प्राण वायु ने साथ त्याग दिया।

एक ही निशा मे, एक ही कालरात्रि मे, सन्धिमति ने आनन्दमय मुद्रा मे प्राण-विसर्जन किया, अन्धकार घनीभूत शूल पर और अन्धकार मे लुप्तप्राय, रोग से भग्न, महीपाल का प्राण-पखेरू उड़ा, विषम दुःख की, विषाद की, शोक की, राज्य-प्रासाद के अन्धकार की घनीभूत होती काली छाया मे।

सन्धिमति शूल पर झूलता रहा। वह कुछ दे नहीं सकता था। किसी का कुछ बिगाड़ नहीं सकता था। अतएव किसी ने उसकी चिंता भी नहीं की। किसी ने इसलिए भी चिंता नहीं की कि वह मर चुका था। उसके लिए कष्ट उठाकर कोई कुछ प्राप्त नहीं कर सकता था। उसके कारण राज भय का कौन व्यर्थ कोप-भाजन बनना पसन्द करता। राजदण्ड से वह बचा नहीं सकता था। अतएव किसी ने उसके ऊपर उपकार कर प्रत्युपकार की निराशा मे मानवता का भी परिचय नहीं दिया। उसके पास, किसी ने आने का साहस नहीं किया।

और बलहीन राजा जयेन्द्र का राज कुटिल राजनीति के भंवर मे झूलता रहा। काश्मीर मही भूपालरहित हो गयी।

श्मशान, राजद्वार, राज-विप्लव मे जो साथ ठहरता है वही बान्धव है। यह कहावत पुरानी है। किन्तु वह आज भी उतनी ही नवीन है, सत्य है, जितनी सर्व-प्रथम कही गयी होगी।

शूलविद्ध, सन्धिमति का कोई मित्र, कोई परिचित, कोई बन्धु-बान्धव, राजभय से, उसे देखने नहीं आया। यह भी जानने नहीं आया कि सन्धिमति का

हुआ क्या ?

सन्धिमति के गुरु थे। उनका नाम ईशान था। सन्धिमति का शूल पर व्यापादित होना सुना। ईशान जितेन्द्रिय थे। त्यागी थे। शिष्य का शूल पर निर्दोष व्यापादित होना जानकर, हृदय द्रवीभूत हो गया। उनका वशी मन विवश हो गया।

शिरीष पुष्प सदृश सरलतापूर्वक नष्टशील इस संसार में खेद है—'मनीषियों की निष्क्रूरता ही, शिरीष पुष्प के वृत्त की तरह अवशिष्ट रह जाती है।'

गुरु ने स्मरण किया। सन्धिमति का विनय। उसका शिष्ट व्यवहार। उसकी गुरु के प्रति श्रद्धा। गुरु ने क्षण-मात्र विचार किया। कार्य का संकल्प किया। योजना निश्चित की।

गुरु ईशान ने कमण्डल उठाया। आसन काख तले दाबा। खड़ाऊं पहना। अपने आश्रम के प्रफुल्लित कुसुमों की ओर देखा। कमण्डल जल में उन्होंने दो-चार पुष्प छोड़ लिये। पर्ण कुटी का पर्ण द्वार लगाया।

ईशान के खड़ाऊ बोले। पद बढ़ने लगे, श्मशान की ओर, अनाथ के समान सूखते, विनयी शिष्य का अन्तिम संस्कार करने योग्य अपना कर्त्तव्य-चिन्तन करते हुए।

ईशान भय से भांय-भांय करती श्मशान भूमि में पहुंचे। शूल पर अनाथ तुल्य सूखते विनयी शिष्य को देखा। वहां कोई मानव, एक मृत मानव पर करुणा कर, उसका अन्तिम संस्कार करने, नहीं पहुंचा था। काश्मीर का, कभी का राजमन्त्री, शूल पर सूख रहा था। किसी ने चिन्ता भी नहीं की।

किन्तु यदि इस समय किसी में साहस देखा गया, तो वह मांसलोलुप पशुओं में था। शृगाल शूल के समीप आते थे। शूलविद्ध, सन्धिमति का मांस नोंचकर भागते थे। गुरु ने दूर से ही शूलस्थित सन्धिमति के शव की दुर्दशा देखी। मानव-शव, पशु-पक्षी का आहार मात्र रह गया था।

ईशान ने आसन उठाया। उसे फड़फड़ाया। आवाज दी, भाग-भाग-भाग। शृगाल भाग गए। शृगालों के भय से दूर बैठे मांसलोलुप श्वान भाग गये। वृक्षों पर बैठे, मांस-भोजी गृद्धादि भाग गये। ईशान का सवेग शूल के समीप आगमन हुआ।

ईशान ने देखा। शूल-मूल में बद्ध अस्थि खण्ड के सहारे निश्चल, अस्थि मात्र, अवशिष्ट रह गया था। वहां सन्धिमति समीरण समाकर्ण मुख रन्ध्र द्वारा निर्गत ध्वनियों से मानो अपनी उस अवस्था को सोच रहा था।

गुरु ईशान ने दैव की यह अनोखी क्रिया देखी। अपने शिष्य के भाग्य पर दुःखी हो गया। प्रिय शिष्य को देखता बोल उठा—"हां वत्स ! आज मैं तुम्हें इस प्रकार देखने के लिए जीवित हूं।"

दुःख-भार से ईशान सहसा कुछ न कर सके। कुछ समय मानव-जीवन की

नश्वरता पर विचार करते रहे। शूल-मूल में खड़े रहे। और दूर पर खड़े रहे शृगाल और श्वान। इस आशा में कब ईशान हटें और कब उनका मांसमहोत्सव आरम्भ हो।

ईशान शव के अत्यन्त समीप आ गये। शव को दो-चार बार ऊपर से नीचे तक देखा। शूली पर से शव उतारने का विचार किया। आसन तथा कमण्डल दूर रख दिया। कमण्डल से पुष्प निकाला। पुष्प जल से शव का मार्जन किया। पुष्प चढ़ाया। उसे महादेव-स्वरूप समझकर नमस्कार किया।

सिर से गिरे, धूल-धूसरित केशों में सन्धिमति के लिप्त चरण थे। ईशान ने शव थामा। समीपस्थ वृक गुर्रा उठे। अपनी भोज्य-सामग्री दूसरे को लेना देखकर, उनमें सहसा द्वेषाग्नि प्रज्वलित हो उठी। ईशान ने वृकों को डाटा। उन्हें भयभीत किया।

वृक दूर हटकर खड़े हो गये। जीभ लपलपाने लगे। श्वान हाफने, दोनों अग्र पैरों पर शरीर-भार दिये बैठ गये। वे जीभ निकालते श्वास ले रहे थे। गृद्धों ने पंख फड़फड़ाये। एक शाखा से दूसरी शाखा पर बैठ गये। एक काक उड़कर शूल पर बैठ गया। पुनः कंकाल पर उड़ता चला गया।

ईशान ने कंकाल उठाया। उसे कुछ दूर ले गया। मानव शव सदृश, शुद्ध भूमि पर लिटा दिया। वृक एवं शृगाल कुछ और खिसककर, आगे आ गये। ईशान ने हाथ उठाकर उन्हें भगाया।

ईशान ने शव को एक बार पुनः ऊपर से नीचे तक देखा। तदनन्तर उचित सत्क्रिया करने के लिए समुद्यत हो गये। उसके ललाट प्रदेश पर हाथ फेरा। केशों को ठीक किया।

हठात् उनका ध्यान सन्धिमति के ललाट पर गया। ईशान ललाट पर झुक गये। रेखा को पढ़ने लगे। सन्धिमति के ललाट पर विधानलिखित श्लोक था :

यावज्जीवं दारिद्र्यं दशवर्षाणि बन्धनम्।
शूलस्य पृष्ठे मरणं पुनः राज्यं भविष्यति॥

"यावज्जीवन दरिद्रता, दस वर्षों तक बन्धन, शूलपृष्ठ पर मरण, पुनः राज्य-प्राप्ति।"

श्लोक का पद त्रय ईशान समझ गये। वह भूत की घटना थी। सत्य घटी थी। किन्तु, चतुर्थ पादस्थ अर्थ के विश्वास में, योग वेत्ता ईशान, कौतुकान्वित हो गए।

सम्भ्रान्त होते हुए ईशान विचार करने लगे। चतुर्थ पाद कैसे सत्य हो सकता है। सन्धिमति मर चुका था। उसका पुनरुत्थान किस प्रकार होगा? वह दुविधा में पड़ गये। निर्णय नहीं ले सके। सन्धिमति की यथाविधि दाहक्रिया करें या नहीं? गुरु ईशान रुक गये। शव को एकटक देखने लगे।

विधाता की शक्ति को मन ही मन अचिन्त्य कहा—"तत्तत् कर्म संसर्ग में संलग्न सब लोग पारतन्त्र्य के अनुरोध से सुनिश्चित (नियति) को प्रयत्नपूर्वक हठात्, उन्मूलन हेतु समुद्यत होते है, किन्तु आश्चर्य है। वहां भी विधाता की अद्भुत शक्ति उदित हो जाती है, जिसके प्रभाव से द्विविध घटनासिद्धियां निरोधरहित हो जाती हैं।"

ईशान उस श्मशानभूमि में, शव के पार्श्व में, स्मृति पथ पर धावित हुए: "सभी आश्चर्यों के निधि, विधि ने, मणिपुर में निहित पार्थ को नागकन्या के प्रभाव से जीवित किया था। द्रोणपुत्र अश्वत्थामा से माता के गर्भ में दग्ध, परीक्षित को कृष्ण के माहात्म्य से, जीवित करता हुआ, विधाता अधिकारियों में अग्रणी हुआ था।"

ईशान ने सन्धिमति की ललाट-रेखा को पुन. पढ़ते हुए विचार किया। भूतकाल मे मृत व्यक्ति ईश्वर कृपा से जीवित हो गए थे जैसे : "दैत्यों द्वारा भस्मीकृत कच को, तार्क्ष्य भक्षित नागों को पुनः जीवित करने के लिए, दैव के अतिरिक्त और कौन समर्थ हुआ था ?"

ईशान ने तर्क को शब्द प्रमाण पर आधारित करने का प्रयास किया। 'शब्द प्रमाण वर्तमान घटना से प्रमाणित होता है या नही ?' की उत्सुकता में, दाह-संस्कार मे विरत हो गये। ललाट रेखा की सत्यता की परीक्षा करनी चाही। भावी अर्थ की सिद्धि देखने के लिए समुद्यत, ईशान ने वही पर निवास करने का निश्चय किया।

ईशान ने कंकाल उठाया। सुरक्षित स्थान पर उसे रख दिया। श्मशान भूमि में बैठ गये। वृकों, श्वानों तथा हिंस्र पशु-पक्षियों से, शव की रक्षा करने लगे।

रात-दिन, ईशान शव की रक्षा में, तत्पर रहते थे। वह रात्रि पर्यन्त जागरण करते थे। लेख की सत्यता परीक्षा हेतु अद्भुत चिन्ता में निद्रारहित ईशान का श्मशान भूमि आवास-स्थान बन गया था।

एक दिन अर्ध-रात्रि में ईशान ने कोलाहल सुना। श्मशान में दिव्य धूप गन्ध का अनुभव किया। चकित हो गये। सतर्क हो गये।

दीर्घ ताड़न दण्ड ताड़ित घण्टा के नादों एवं भयंकर डमरू निर्घोषों से घर्र-घर्र ध्वनि सुनी। अर्धरात्रि में श्मशान में शव का आना असम्भव नहीं था।

परन्तु श्मशान में घण्टा एवं डमरु निर्घोष आश्चर्यकारक था। दिव्य गन्ध एवं धूप की सुगन्ध भी आश्चर्यकारक थी।

ईशान समीपस्थ श्मशानस्थ मन्दिर में छिप गये। उसने मन्दिर का गवाक्ष पट खोल दिया। वहां से सन्धिमति का शव तथा श्मशान भूमि ध्यानपूर्वक देखने लगे।

अकस्मात् श्मशान भूमि तेजोमय हो उठी। तेज दिव्य था। दीपक, किंवा

शशि के शीतल अथवा सूर्य तेज के समान प्रखर नहीं था। वह तेज प्रकाशमय था, किन्तु उसमें प्रखरता नहीं थी। वह अरुणकालीन प्रकाश तुल्य, उषा प्रकाश तुल्य, सुहावना था। उस तेज के परिवेश में, ईशान ने श्मशान भूमि में, योगिनियों का आगमन देखा।

योगिनियां कोलाहलरत थीं, उत्तेजित थीं। वे सन्धिमति के शव के समीप आयीं। उसे घेरकर खड़ी हो गयीं।

शव रक्षा तत्पर, ईशान ने कृपाण निकाल लिया। शव-रक्षा हेतु, शव की ओर, अग्रसर हुआ। श्मशान पर पहुंचने के पूर्व, योगिनियां क्या करती थीं, उसने जान लेना उचित समझा।

चकित ईशान कृपाण लिये, एक वृक्ष की ओट में खड़ा हो गया। उसने देखा योगिनियों ने कंकाल का मध्य में सुला दिया। सन्धिमति के विघटित अंगों को योजित करने लगीं।

सम्भोग की उत्कट कामनावश, वे मद्यप योगिनियां किसी वीर के अभाव में सन्धिमति के कंकाल को खोजती आयी थीं। कंकाल का उन्होंने अपहरण कर लिया।

उन्होंने, शव में एक-एक अंग लगाकर, पूर्ण किया। शव का पुलहम गायब था। उसे भी वे कहीं से लायीं। सन्धिमति का कंकाल अंगों से पूर्ण हो गया।

शरीरांतर, अप्रविष्ट सन्धिमति का पुर्यष्टक योगिनियों ने आकृष्ट किया। पुर्यष्टक को शरीर में रखा। सन्धिमति जी उठा। उसका पुनरुत्थान हुआ।

सुप्तोत्थित सदृश सन्धिमति उठा। योगिनियों ने उसे दिव्य लेपन लिप्त किया। उसे अत्यन्त सुन्दर पुष्ट युवा पुरुष बना दिया। योगिनियों मध्य उस चक्रनायक सन्धिमति ने उनसे सम्भोग किया।

कामवासना-तृप्ति में रात्रि क्षीणमान होने लगी। योगिनियों ने जाने का प्रयास आरम्भ किया। ईशान के मन में शंका हुई। योगिनियां कहीं सन्धिमति को पुनः मृत कर चली न जाएं। उसे यह भी आशंका होने लगी। कहीं, योगिनियां उसके सम्पूर्त अंगों का हरण न कर लें।

उसने यही उचित समय समझा अपने को प्रकट करने का। धीर ईशान ने घोर नाद किया। योगिनियां चकित हुईं। उन्होंने ईशान को देखा। ईशान सत्वर गति से शव स्थान पर पहुंच गया। योगिनियों का समूह, योगी ईशान को देखते ही, तत्क्षण अन्तर्हित हो गया।

"हे ईशान!!" ईशान ने ध्वनि सुनी। योगिनियों ने कहा, "तुम्हें भय न हो। हम लोगों के चुने इस सन्धिमति में अंग हानि एवं वंचना नहीं है।"

सन्धिमति चकित होकर, अदृश्य वाणी सुनने लगा।

"ईशान!" योगिनियों ने पुनः कहा, "हम लोगों के वर से संयुक्त दिव्य

शरीर यह सन्धिमान आर्य होने के कारण, पृथ्वी पर प्रसिद्ध आर्य राज होगा।"

योगिनियों की वाणी समाप्त हो गयी। शून्य श्मशान में ईशान सन्धिमति के समीप पहुंचा। उसके अंगों को सन्धियुक्त योगिनियों ने किया था। अतएव, उसे सन्धिमान नाम से योगिनियों ने सम्बोधित किया था। उसे पति-स्वरूप वरण किया था। अतएव उसे आर्य तथा होने वाले राजा के रूप में आर्य राजा नाम की संज्ञा दी थी।

ईशान सन्धिमान के सम्मुख खड़ा हो गया। उसने देखा। दिव्याम्बर एवं दिव्य मालाधारी, दिव्य भूषण भूषित, विनत सन्धिमान में पूर्व स्मृति शनैः-शनैः प्रवेश कर रही थी। वह जैसे जाग उठा था। सम्मुख गुरु ईशान को दण्डायमान देखा। उसने गुरु का पाद स्पर्श किया। गुरु की यथाविधि वन्दना की। ईशान ने प्रिय शिष्य का, स्वप्न में भी दुर्लभ उसके शरीर का, आलिंगन किया। उस समय, उस आलिंगन से, गुरु ईशान ने जो आनन्द प्राप्त किया, उसे वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है ?

ईशान ने सन्धिमति को आशीर्वाद दिया। उसका वृत्तान्त सुनते ही श्मशान भूमि का त्याग किया। श्मशान समीप देव मन्दिर में दोनों आये।

गुरु-शिष्य मन्दिर में बैठ गये। उनका संवाद सुनने उषा प्राची से चली। ब्राह्म मुहूर्त में गुरु-शिष्य की ब्रह्म वार्ता चली। प्राणप्रद प्रेरक समीर ने उनमें दिव्य भावनाओं का सृजन किया। ईशान एवं सन्धिमान परस्पर, असार एवं विचित्र संसार का चिन्तन करते हुए, अपनी विवेक विशद कथा में लीन हो गये।

श्रीनगर में बात फैली—"शूली हत अनेक दिनों के पश्चात् सन्धिमति पुनः जीवित हो गया। मृतक का पुनरुत्थान हुआ है।"

लोग चकित हुए। कौतूहल बढ़ा। श्रीनगर श्मशान भूमि की ओर उमड़ पड़ा। दैव के आश्चर्य, उसकी महत्ता, उसकी करुणा का प्रत्यक्ष प्रमाण, देखने की प्रबल जिज्ञासा से, सभी वर्ग श्मशान भूमि में पहुंचे।

राज्य के मन्त्री, मन्त्रि-परिषद सन्धिमति के पुनरुत्थान एवं पुनर्जीवन की बात सुनकर, श्मशान भूमि की ओर चले। राजन्य वर्ग एवं जनता उनके साथ चली।

सन्धिमति भगवद् कृपा से जीवित हुआ था। उस पर दैवी कृपा हुई थी। दूसरों की कृपा के लोभी, आलसी, दूसरे के आशीर्वाद पर पनपने के आदी, कृपा-प्राप्त, सन्धिमति का प्रसाद पाने की लालसा में चले। और कितने तार्किक, इस आश्चर्यजनक घटना की सत्यता आंकने चले।

सन्धिमति ईशान के साथ बैठा था। लोगों की आंखों ने उसे देखा। सन्धिमति

पूर्णांग, दिव्य प्रभायुक्त, यौवनसम्पन्न, हृष्ट-पुष्ट युवक, बन गया था। वह सुन्दर था। काम मूर्ति था। उसे जिन लोगों ने पूर्वकाल में देखा था, पहचान नहीं सके।

सन्धिमति की आकृति पूर्वाकृति से भिन्न थी। वह अनेक सुन्दर अंगों की सन्धि से बना था। उसकी पूर्व आकृति वृकों के उदर में पहुंच चुकी थी। विगलित हो चुकी थी। जिन्होंने पूर्वकाल में उसे देखा था, वे उसे सन्धिमति कहने के लिए उद्यत नहीं हुए।

सन्धिमान, निखिल उपस्थित लोकों का भ्रम देखकर, मुसकराया। सस्मित पूछा "आपको भ्रम होता है ? मैं सन्धिमति नहीं हूं।"

"अवश्य !" उसके पूर्व परिचित एक मित्र ने कहा।

"गुरु ईशान साक्षी हैं।"

सन्धिमान ने गुरु ईशान की ओर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक देखते हुए कहा।

"किन्तु आपकी वह आकृति नहीं है।"

"मैं साक्षी हूं। यह वही सन्धिमति है।"

ईशान ने निखिल लोगों की ओर देखकर, विश्वास के साथ कहा। लोगों का विश्वास नहीं जमा। ईशान ने कहा

"आप जानते हैं। सन्धिमति मेरा शिष्य है। मैं उसे पहचानता हूं। जानता हूं।"

"वह तो शूली पर मर चुका है।"

"वही पुनर्जीवित हुआ है।"

"शूली ? और पुनरुत्थान ? असम्भव।"

एक अनीश्वरवादी ने जिज्ञासा की।

"यह सत्य है।" ईशान ने सबल स्वर में कहा।

"हम कैसे मान लें ?"

"इसलिए कि यह तथ्य है।" ईशान ने अपने स्वर पर जोर देते हुए कहा।

"प्रत्यक्ष के सम्मुख, सत्य-असत्य का प्रश्न नहीं उठता।" एक नैयायिक ने प्रश्न किया।

"सन्धिमति प्रत्यक्ष उपस्थित है।" ईशान ने सन्धिमति की ओर देखकर कहा।

"परन्तु वह सन्धिमति नहीं है।" कुछ लोग कह उठे।

"ना।" एकत्रित जनसमूह से ध्वनि उठी।

"मेरी बात सुनियेगा ?" सन्धिमान ने गम्भीर स्वर में कहा।

"निश्चय !"

"यदि मैं वही सन्धिमति हूं, यह प्रमाणित कर दूं, तो आप लोग मान लेंगे ?"

"हां।"

"आप लोग प्रश्न पूछिए। हमारे जीवन के सम्बन्ध में, राज के सम्बन्ध में, यदि मैं उनका उत्तर ठीक दूं, अपने को प्रमाणित कर दूं, तो आप लोगों को मानने

में कोई कठिनाई तो नहीं होगी ?"

"बात ठीक मालूम होती है...।" जनता बोली।

"यहां अमात्यगण उपस्थित हैं। मन्त्रिगण उपस्थित है। सचिवगण उपस्थित हैं। हमारे निकटस्थ लोग उपस्थित हैं। आप लोग गोपनीय से गोपनीय अश्रुत बात भी पूछिये। उनका उत्तर सुनकर मुझे तर्क की तुला पर तौलिये।"

"यह इन्द्रजाल भी हो सकता है।" एक दबी वाणी मुखरित हुई।

"शरीर आकृति माता की बीमारी से, दुर्घटना से, अग्नि दाह से बदल सकती है ?"

"हां, यह देखा गया है।" एक वाणी मुखरित हुई।

"क्या ईश्वर, दैव, आकृति बदलने मे सक्षम नही हैं ?" सन्धिमति ने कहा।

सब लोग दैव का नाम सुनकर चुप हो गये। किसी को ईश्वर के विरुद्ध कुछ कहने का साहस नही हुआ।

"सज्जन वृन्द !" ईशान ने कहा, "आप लोग अपना भ्रम पुरानी बातो को पूछकर, परस्पर संवाद कर मिटा सकते हैं।"

"ठीक।" कुछ लोग बोले।

"हा, इसमे आपत्ति क्या हो सकती है ?" दूसरों ने समर्थन किया।

उपस्थित निखिल संवादी लोगों से, पूछे प्रश्नों का उत्तर देते हुए, सन्धिमति लोगों का भ्रम दूर करने लगा। लोगो का विश्वास जमने लगा। यह व्यक्ति पूर्व-कालीन सन्धिमति है। दैव ने, जिसने मनुष्य-शरीर दिया था, वह उसे बदल भी सकता था। आस्तिकों के इस तर्क को जनता ने मान लिया। सन्धिमति की जय-ध्वनि से श्मशान प्रतिध्वनित हो गया।

"पुरवासियो !" एक मन्त्री ने घोष किया, "लम्बे वाद-विवाद एवं संवाद के पश्चात् भी क्या अभी सन्देह है ?"

"नही।" जनरव ने घोष किया।

ईशान ने मुसकराते हुए सन्धिमान की ओर देखा। उसके मूर्धा पर सस्नेह शिष्यवत् अभय मुद्रा से हाथ फेरते हुए, अमात्यों की ओर देखा।

"यह राज्य नृपहीन है।" पुरवासियो में से कोई बोल उठा।

"शासनविहीन है।" दूसरी ध्वनि उठी।

"क्यो न सन्धिमान को हम काश्मीर का राजा चुन लें ?" एक वृद्ध ब्राह्मण ने आगे बढ़ते हुए कहा।

"अमात्यगण ! निश्चय कीजिये।" पुरवासियों ने प्रस्ताव का समर्थन किया। मन्त्रिगण अमात्यों के साथ विचार-विमर्श करने लगे। उन्हें विलम्ब करते देख, आकुल जनता ने प्रश्न किया :

"मन्त्रिपरिषद क्यों नहीं घोषणा करती ?"

मन्त्रिगण पुन परस्पर विचार करने लगे। एक नागरिक ने आगे बढते हुए कहा

"पौरगण ! हम क्यों न सन्धिमति को अपना राजा निर्वाचित करें ?"

"करना चाहिए।"

"उससे उत्तम और कौन सुपात्र होगा ?" एक वृद्ध ने सन्धिमति की दिव्य आकृति की ओर देखते हुए कहा।

"दैव का प्रसाद है।" एक तपस्वी विप्र ने कमण्डल ऊपर उठाते हुए कहा।

"उसका पुनरुत्थान हुआ है।" मृगचर्म ऊपर हिलाते हुए एक जटाजूटधारी यती ने कहा।

"वह इस राज्यहीन राज्य का राजा होने योग्य है।" कुलीनों ने समर्थन किया।

"तो ।" पुरोहित ने जिज्ञासा की।

"हम उसे राजा निर्वाचित करते हैं।" विप्र परिषद् ने हाथ उठाकर नाद किया।

मन्त्रिपरिषद्, अमात्यगण, सचिवगण, जनता के निर्णय को सुनकर गम्भीर हो गये। सन्धिमान एवं ईशान की ओर उनकी प्रश्नपूर्ण दृष्टि उठ गयी।

"देव ! आप राजा होना स्वीकार करते हैं ?" प्रधान मन्त्री ने सन्धिमति के समीप आते हुए सादर पूछा।

सन्धिमान ने गुरु ईशान की ओर देखा। नागरिकों का जयघोष बढा "हम उन्हे राजा चुनते हैं। उनकी अनुमति की क्या आवश्यकता, मन्त्रिगण ?"

"मैं राज्य लेकर क्या करूगा ?"

जनता सन्धिमान का स्वर सुनकर किंचित चकित हुई। एक नागरिक ने दीर्घ घोष किया "पौरगण ! इससे निस्पृह व्यक्ति और कहा मिलेगा ? मिलते राज्य को स्वीकार नहीं करता।"

"हमें ऐसा ही निस्पृह, त्यागी, चरित्रवान राजा चाहिए।" दूसरे नागरिक ने लोगों की ओर देखकर कहा।

धर्माध्यक्ष ने गुरु ईशान को प्रणाम कर निवेदन किया

"गुरो ! सन्धिमान आपका शिष्य है। गुरु की उपस्थिति मे शिष्य बिना गुरु की अनुमति प्राप्त किये, कैसे अपना मत दे सकता है ?"

"ठीक कहा।" विप्र मण्डली ने मस्तक हिलाते हुए कहा।

"गुरुवर ! सन्धिमान को अनुमति दीजिए।" मन्त्रिपरिषद ने साग्रह, साधिकार निवेदन किया।

"सन्धिमान !" ईशान ने सस्नेह कहा, "जनता का आग्रह टालना उचित

नहीं होगा।"

"गुरो ! मैं इस झंझट में फंसकर क्या करूंगा ?"

"तुम बहुत दिनों तक काश्मीर राज्य के मन्त्री रह चुके हो। तुम्हें काश्मीर मण्डल के कर्म स्थान का ज्ञान है। तुम्हे यहां की समस्या का ज्ञान है।"

"गुरो ! मैं शिव अर्चना में अपना जीवन व्यतीत करना चाहता हूं।"

"वत्स ! यह भी शिव की सेवा है। स्पृहाहीन, स्वार्थहीन, मदहीन, मानहीन, ममताहीन राज्य-सेवा एक व्रत है। विदेह ने यही किया था। केवल वैराग्य से, जगत् से दूर रहने से, समस्या का निराकरण नहीं होगा। काश्मीर सतीसर है। देवी सती की सेवा, शिव की सेवा है, सन्धिमान !"

"महात्मन् ! यह भार बहुत भारी है।"

"पुत्र !" ईशान ने स्नेह प्रदर्शित करते हुए कहा, "जिस समय इच्छा हो राज्य-त्याग कर देना। तुम्हे कोई बाध्य कर राजा नही रख सकता।"

"क्या करूं गुरो ?"

"राज्य स्वीकार करो। इच्छा होने पर त्याग देना। शिव अर्चना में राज्य-कार्य बाधक नही होगा।"

सन्धिमान ने गुरु को प्रणाम किया। ईशान प्रस्थान उद्यत हुए। जनता ने, उपस्थित राजन्य वर्ग ने गुरु ईशान को अंजलिबद्ध प्रणाम किया। ईशान शनैः-शनैः वितस्ता पुलिन स्थित, श्मशान से ऊपर उठते वृक्षों की ओट में विलीन हो गये। उन्हे अदृश्य होते ही, जनता का ध्यान सन्धिमान की ओर गया।

मन्त्रिपरिषद् ने मुहूर्त मात्र मन्त्रणा की। तत्पश्चात् सन्धिमान को राजा स्वीकार किया। उसका राजोचित आदरसूचक शब्दों से सम्बोधन किया।

सन्धिमान मन्त्रिपरिषद् के साथ श्मशान के समीपस्थ उपवन में आया। उसे उत्तम आसन पर बैठाया गया। जनता चारों ओर से उसे घेरकर बैठ गयी।

दिव्याकृति शोभित सन्धिमान को ब्राह्मणो ने अभिषिक्त जल से स्नान कराया। वह राजोचित, अभिषेकादि समस्त क्रियाओं को जानता था। अतएव कर्म-काण्ड विहित कार्य करने में किसी प्रकार की असुविधा तथा विलम्ब नहीं हुआ। एक अनुभवी नृप के आचार हेतु, शिक्षा की अपेक्षा नहीं थी। समस्त प्रक्रियाओं को उसने स्वयं सरल कर दिया।

सन्धिमान ने राज्योचित नृप परिधान धारण किया। राजकीय वेश-भूषा में उनकी सुन्दर आकृति द्वितीय इन्द्र तुल्य लगती थी।

जनता द्वारा राजा घोषित होने का समाचार बिजली की तरह चारों ओर काश्मीर मण्डल में फैल गया। काश्मीर की राजसेना सुसज्जित हो गयी। सैनिक वाद्य के साथ सुनियन्त्रित सेना काश्मीर ध्वज उड़ाती, श्मशान की ओर, राजा के

अभिवादन हेतु प्रस्थान की। सेना का गमन देखकर विशाल जन-समूह नव राजा के दर्शन हेतु साथ चला। बालक नाचते-कूदते चले। महिलाएं ढोल-मजीरा पर मंगल-गीत गाती चलीं। युवक उमंग में जयनाद करते चले। वृद्ध लाठी टेकते चले। श्रीनगर श्मशान भूमि के उपवन में एकत्रित होने लगा।

आर्यराज सन्धिमान ने सेना सहित, मन्त्रिपरिषद् सहित, अमात्यों सहित, सचिवों सहित, दण्डधर सहित, प्रतिहारों सहित, विप्रों सहित, जनता सहित, श्रीनगर में प्रवेश किया।

नगर प्रवेश करते ही पुरवासियों के आशीर्घोष से नगर घोषित हो उठा। रम्य सौधों से, उन्मिषित लाज वृष्टिपूर्ण पुरी में सोत्साह राजा ने प्रवेश किया। पताकाएं फहराती उसके आगे-आगे रण-वाद्य बजाती सेना तथा शंख घोष करती विप्र मण्डली चली। तूर्य नाद करते लोग चले। पवित्र जल से एक ब्राह्मण मण्डली गमन पथ पर मन्त्र सहित जल बिंदु छिड़कती चली। बालक जयघोष करते चले। नाचते चले। उछलते चले।

मृदंग एवं पटह बजाते लोग चले। युवक अस्त्रों को उठाते जयघोष करते चले। वाद्यों की ध्वनि में, उत्साहमय कोलाहल में, जनता के उल्लास में, राजवर्ग एवं सेना की स्वामिभक्ति की पवित्र भावना में, काश्मीर राज्य के राजाहीन प्रासाद में सन्धिमान ने काश्मीर की नारियों के मंगल-गान के साथ प्रवेश किया। सौभाग्यवती ललनाओं की उतारती आरती के साथ प्रवेश किया। मंगल घटधारी कामिनियों के गीत के साथ, प्रवेश किया। अभिषेक के जलबिंदुओं तथा तण्डुल वर्षा के साथ प्रवेश किया।

राज्य प्रासाद की रमणियों ने, परिचारिकाओं ने घुटने टेककर, करबद्ध राजा की वन्दना की। प्रासाद के दण्डधर तथा प्रतिहारियों ने उष्णीष से कृपाण लगाकर, सामरिक प्रणाम किया। परिचायकों ने अंजलिबद्ध अभिवादन किया।

राजाहीन राज प्रासाद खिल उठा। निर्जीव राज भवन में जीवन-ज्योति ने प्रवेश किया। परिचायकों को संतोष हुआ। सेवकों को सन्तोष हुआ। उन्हें स्वामी-सेवा का अवसर मिला। यदि इस काल में कोई शोकाकुल था, दुखी था, मुख छिपाता फिरता था, तो वे ही थे, जिन्होंने राजा जयेन्द्र का कान भरा था। नाना प्रकार की विपत्तियां लाने के उत्तरदायी थे।

परन्तु वे विट, वे खल, वे चाटुकार, वे लोभी पापद, पद-लोलुप राजन्य वर्ग, उत्साह दिखाने में, राजभक्ति प्रदर्शन करने में सबसे आगे थे, जो राजा जयेन्द्र के काल में भी इस कार्य में अग्रणी थे। उन्होंने राजा जयेन्द्र की निन्दा परस्पर सन्धिमति को सुनाने के व्याज से आरम्भ की। सन्धिमान ने दृष्टि भंगिमा द्वारा उन्हें अपने साथ से विरत होने का संकेत किया। राजा की यह मुद्रा देखकर, वे विट, वे खल, वे चाटुकार कृत्रिम दुखी हुए। उनका उत्साह ढीला पड़ गया। उनका

कृत्रिम दुःख देखकर, चतुर पौरगणों की आंखें हंस उठीं।

राजा ने आर्य राजा नाम से, सन्धिमान नाम से, महान् नृपासन की शोभा-वृद्धि की। राज्य-मुकुट धारण किया था। परन्तु रजोगुण से मुक्त था। भोग-बन्धन से मुक्त था। कृत्रिम प्रसाधनो से मुक्त था। राज-लिप्सा से मुक्त था। उसके पवित्र आचरण के कारण काश्मीर में नव-जीवन का अभ्युदय हुआ था।

जनता मे आत्म-विश्वास लौटा। जनता मे देश-प्रेम लौटा। जनता में परस्पर त्याग की भावना लौटी। राजा जयेन्द्र के अन्धयुग के पश्चात् काश्मीर में जागरण हुआ था। इतिहास का स्वर्ण पृष्ठ खुला था।

राजा सन्धिमान के राज्यकाल में काश्मीर में दैवी एवं मानुषी आपत्तियां दूर हो गईं। उन्हें जैसे कहीं भी स्थान छिपने के लिए नहीं मिलता था।

उस शमी राजा के हृदय को, शृंगार हित विभ्रमशालिनी एवं नितम्बिनी वन की विकसित भूमियों ने अपहरण किया, न कि स्थूल नितम्बिनी योषिताओं ने। वह नारी स्पर्श, काम स्पर्श, सुख स्पर्श से प्रसन्न नहीं हुआ। मांस-पुतलियों की सुन्दरता, उसके मांसल पुष्ट शरीर को, इन्द्रियों को, आकर्षित नहीं कर सकी। वह कर्पूर एवं धूप से सुरभित, तपस्वियों के वन पुष्प संपर्क से, पुष्प गन्धशाली कर-स्पर्श से, सुखी हुआ। उसकी काया ने कमल पुष्प, कमल नाल द्वारा सज्जित कोमलांगियों के स्पर्श से सुख का अनुभव नहीं किया।

उसे मात्सर्य, द्वेष, जुगुप्सा तथा दूसरों की बुराई में रुचि नहीं हुई। उनकी अभिरुचि थी—उत्तम धार्मिक बात सुनने में। जनता की वृद्धि हेतु योजनाओं के सुनने में। परोपकार कृत्य करने में। और सबमें कोई न कोई गुण देखने में।

जिस समय राजा भूतेश, वर्धमानेश एवं विजयेश का दर्शन नहीं करता था, उस समय को उसने निर्विकार भाव से, राज्यकार्य करने में, प्रतिदिन लगाने का नियम बना लिया था।

राजा पूर्ण श्रद्धा-भक्ति के साथ हरायतन में जाता था। वह मन्दिर के बाहर, मन्दिर के प्रक्षालन के काल में बाहर ठहर जाता था। उत्तुंग मन्दिर की, उत्तुंग सोपान शृंखला जब पवित्र जल से प्रक्षालित की जाती थी, तो वायु समीरण संसर्ग से, समुचित जल-कण से, व्याप्त पवन के संस्पर्श द्वारा, उसका शरीर दिव्य आनन्द का अनुभव करता स्पन्दित हो जाता था।

वह आडम्बर रूप, पाखण्डमय, रत्न राशि, स्वर्ण तथा रजतमय पूजा संभारों से युक्त देव-दर्शन को वास्तविक दर्शन नहीं मानता था। वह विजयेश का, वही दर्शन, सार्थक एवं वास्तविक मानता था, जब प्रतिमा पर से, शिवलिंग पर से पूजा-सम्भार हटा दिया जाता था। वह आडम्बरहीन, सुन्दर स्नपित, विजयेश्वर के दर्शन को दर्शन समझता था।

विजयेश लिंग को जब स्नान कराया जाता था, शिवलिंग पीठ पर से, लुठित होते, स्नान कुम्भ जल के क्षोभ की जो प्रचुर ध्वनि होती थी, वह वीणा-ध्वनि से भी अधिक प्रिय, शयन करते समय भी लगती थी।

उसकी राज्य-सभा, देव-सभा तुल्य थी। उसकी सभा में जन-द्रोह की बात नहीं होती थी। जन ताडन की चर्चा नहीं होती थी। उसकी सभा में द्रव्य-संग्रह की चर्चा नहीं होती थी। उसकी सभा में परस्पर ईर्ष्या, स्पर्धा एवं कुटिल वचनों की चर्चा नहीं होती थी। उसकी सभा में किसी पर आक्रमण, किसी सुखी परिवार, गृह, ग्राम, नगर में भेद डालकर, उसकी शान्ति नष्ट करने की रहस्यमय चर्चा नहीं होती थी।

उसकी सभा शिव की सभा थी। वह भस्म, रुद्राक्ष एवं जटाजूटयुक्त तपस्वियों से शोभित होती थी। वहां विद्वानों, योगियों, दार्शनिकों एवं भक्तों द्वारा सन्तों, महात्माओं, देवों के चरित्रों की चर्चा होती थी। वह चर्चा मानव को उदात्त भावनाओं से भर देती थी। उन्हें महत करती थी। उन्हें निम्न स्तर से उठाकर, उच्च स्तर पर, पहुंचा देती थी।

उसने प्रतिदिन सहस्रों शिवलिंग प्रतिष्ठा कर्म की प्रतिज्ञा की थी। उसकी यह प्रतिज्ञा, किसी भी कारण से, कभी भी विघटित नहीं हुई। प्रमाद से, कभी उसके न होने पर, भृत्यों द्वारा शिला पर उत्कीर्ण, सहस्र शिवलिंग काश्मीर मण्डल की सब दिशाओं में दिखाई देते थे। दिशाएं शिवलिंगमय हो गई थीं। काश्मीर मण्डल शिवलिंगमय हो गया था।

राजा के कारण काश्मीर की पवित्र भूमि, काश्मीर का कण-कण, शिवस्वरूप, प्रतिभासित होता था। काश्मीर मण्डल एवं शिव जैसे एकाकार हो गये थे।

कमल फल शिवलिंग होता है। उसकी माला बनती है। उस पर शिव का नाम जपा जाता है। काश्मीर के लघु से लघु जलाशय भी, शिवलिंगमय हो जाय, अतएव उसने अनेक वापियों में शिवलिंग व्याज से, स्वपुण्य पुण्डरीकों की अक्ष परम्परा आरोपित की।

नर्मदा की महत्ता नर्मदेश्वर लिंगों के कारण है। गौरव है। पुण्यता है। पवित्रता है। राजा ने काश्मीर की प्रत्येक स्रोतस्विनियों, नागों, नदियों के मध्य, प्रचुर संख्या में सन्निवेशित शिवलिंगों से तरंगिणियों को नर्मदा नदीतुल्य पवित्र बना दिया था।

उसने प्रतिलिंग पर महाग्रामों को चढ़ाया था। उस महामाहेश्वर ने पृथ्वी को महाभवनों, महालिंगों, महावृषों एवं महात्रिशूलों से महान् बना दिया था। घुंघरू ध्वनि, वीणा ध्वनि, पायल ध्वनि, वंशी ध्वनि के स्थान पर डमरू ध्वनि से काश्मीर मण्डल गूंज उठा था। संगीत सात्त्विक हो गया था। नृत्य सात्त्विक हो गया

था। संस्कृति सात्विक हो गयी थी। मनोविनोद सात्विक हो गया था। सात्विकता के इस प्रबल प्रवाह में, शताब्दियों से काश्मीर मण्डल पर रजो एवं तमो गुण का बैठा मल धुलकर, सतोगुणी निर्मल हो गया था। इस नैसर्गिक, देवोपम निर्मलता में, निर्मल भावना में, निर्मल विचार में, मलिन हृदय दर्पण तुल्य निर्मल होकर जीवन का प्रयोजन समझा था।

वह अपने गुरु ईशान को स्वार्थलोलुप, अर्थलोलुप, प्रयोजन-लोलुप मानव की तरह राज्यविभव मे भूल नही गया। उन योगिनियों को भूल नहीं सका था जिनके कारण उसके भग्न अगों की सन्धि हुई थी, जिनके कारण उसका पुनरुत्थान हुआ था। जिनके कारण उसने आर्यराज नाम प्राप्त किया था।

श्मशान भूमि में जहां उसके देह का सन्धान हुआ था, उसने सन्धीश्वर[1] की स्थापना की। उस समय की स्मृति जीवित रखी। दैवी चमत्कार जगत् के सम्मुख रखा। शिव कृपा से सब-कुछ सम्भव था। अघटित घटना घट सकती थी। एतदर्थ, उसने गुरु ईशान के नाम पर ईशेश्वर शिव की स्थापना की। यह मन्दिर इशावर मे आज भी वर्तमान है।

राजा ने काश्मीर मण्डल के पवित्र स्थान, थेडा देवी[2], भीमा देवी[3] एवं अन्य देशों को, पद-पद पर मठो, प्रतिमाओं, लिंगों एवं हर्म्यों से, महार्घ बना दिया था। स्वयंभू एवं तीर्थों से पवित्र काश्मीर मण्डल के कण-कण का उपभोग किस प्रकार किया जा सकता था, यह भक्ति-विभूषित केवल राजा सन्धिमान जानता था।

वसन्त ऋतु आती थी। राजा कुसुमाकर के सुरभित काल में, निर्झर जलों एवं पुष्प लिंगार्चन उत्सव का आयोजन, वन भूमि में करता था। वन की लता परिरम्भित, मुकुलित पादपों एवं पुष्पाच्छादित भूमि पर, राजा पुण्य शिवलिंगार्चन उत्सव में अपना पुण्य समय व्यतीत करता था।

ग्रीष्म ऋतु आती थी। त्रिलोकदुर्लभ अतिरम्य काश्मीर की इस ऋतु में राजा वनान्तों में गमन करता था। वहां, वह हिमलिंग की अर्चनाओं द्वारा वनान्तों को कृतार्थ करता था।

काश्मीर की मही, इस ऋतु में पुष्पों से भर जाती थी। चारों ओर की उपत्यकाएं, नागो के तट, सरिता पुलिन, जलाशयों के तट, उपकूल, पर्वत प्रान्त के ढालू प्रदेश, कुसुमराजि से भर जाते थे। उनके नाना वर्णों से, काश्मीर किसी सुहागिनी विविध रंग विभूषिता चुंदरीधारी नववधू तुल्य लगता था।

---

१. सन्धीश्वर—इस स्थान का पता नहीं चला है।

२. थेडा देवी—वर्तमान थोड गांव डल से उत्तर तट पर जेथर से एक मील उत्तर है।

३. भीमा देवी—वर्तमान ब्रान गांव है। डल से डेढ़ मील उत्तर है।

पद्मीसखा वह राजा प्रफुल्लित कमल दल से रुद्ध, दिशाओं वाली पुष्करणी तट पर पहुँचता था। प्रकृति के अंक में कमल दल की विकसित शोभा में, कमल केसर की सुरभि में, बैठ जाता था। भ्रमर गुनगुनाते। शिवस्वरूप मृणाल पर झूमते कमल की परिक्रमा करते, उनके गर्भ स्थित शिव स्वरूप कमल पत्र की वन्दना करते। भ्रमर की उस शिव भक्ति को देखकर, राजा खगेन्द्र खण्डेन्दु शेखर के ध्यान में लीन हो जाता था।

शरद् ऋतु आती थी। अगस्त्य का उदय होता था। वापिका में, तड़ागों में, सरों में, निर्झरों में, जलाशयों में, जल निर्मल हो जाता था। निर्मल एवं नीलो पल पूर्ण वापियों में स्नान करता वह राजा, शिव अर्चना द्वारा सुन्दर शारद ऋतु व्यतीत करता था।

माघ मास की लम्बी रात्रि तुषारपात के साथ आती थी। काश्मीर उपत्यका श्वेत वस्त्र ओढ़कर शयन करती थी। हिम मण्डित शिखर धवल तुषार वस्त्र में मुख ढककर, सो जाती थी। उन शीतल दीर्घ रात्रि शृंखलाओं को वह पृथ्वीपति जागरणोत्सव मनाते, रात्रियों को निष्फल नहीं होने देता था। शिव कथा में, शिव चर्चा में, शिव संगीत में, हिमाच्छादित कैलाश स्थित कैलाशपति के ध्यान में राजा समय व्यतीत करता था।

ऋतुओं को पुण्यमयी, सरस शिव संगीतमयी, शिव अर्चनामयी, शिव उपासनामयी बनाता था। उस पृथ्वीपाल ने अपने राज्यकाल के तीन कम पचास वर्ष देखते देखते व्यतीत कर दिये।

सम्भवतः कोई भी काल श्लाघनीय नहीं होता। एक ही वस्तु क्रिया कर्म की पुनरावृत्ति में शिथिलता आती है। उत्तम से भी उत्तम कार्य रूढ़ बन जाते हैं। मन ऊबने लगता है। राजा की अतीव धार्मिक वृत्ति के कारण, युवाकाल सर्वदा हर्षित रहते, नवीन उत्सवों, अभिनव पवित्र पुण्य कार्यों में, उल्लास के साथ, उमंग के साथ बीत गया। किन्तु वय की भी एक सीमा है। वय के साथ शरीर का शैथिल्य बढ़ता है। उत्साह, उल्लास, उमंग में शिथिलता आती है। यही परिक्रिया राजा की आयु-वृद्धि के कारण हुई।

राजा आयु वृद्धि के साथ धर्म की ओर निरन्तर झुकता गया। लोक की उपेक्षा हुई। परलोक का विशेष ध्यान हो गया। लोक ने इसे अपनी उपेक्षा समझा। उसने समझा, राजा का मन लोकरंजन की अपेक्षा, परलोकरंजन कामना की ओर विशेष झुका था।

लोक में नवीन राजा के दर्शन की कामना उदय हुई। राजा मन्मथमान सन्तानहीन था। अतएव राजा के पश्चात् उसके उत्तराधिकार का प्रश्न लोक के सम्मुख मूर्तिमान खड़ा हो गया।

लोक ने राजा का निर्वाचन किया था। उसी लोक ने नवीन राजा का अन्वेषण आरम्भ किया। नृप अन्वेषण मे लोक चिन्तित हो गया। और राजा चिन्तित रहने लगा शिव-अर्चना में। दिन-रात्रि का अधिक से अधिक समय उपासना में व्यतीत होने लगा।

लोक ने सुना। पूर्व काश्मीर राजा युधिष्ठिर वंश में एक विजयेच्छु, श्रीमान पुत्र था। वह वंशाकुर गान्धारराज में अंकुरित हो रहा था। गान्धारराज ने काश्मीर विजयेच्छा से युधिष्ठिर के प्रपौत्र गोपादित्य को राजाश्रय दिया था।

राज्यविहीन, राजा गोपादित्य गान्धारराज के यहां समय व्यतीत करता था। वह काश्मीर की ओर लालमाभरी दृष्टि से देखता था। सोचता था। कभी वह अपना पैतृक राज्य प्राप्त करेगा ? किन्तु उसकी देशभक्ति, उसे गान्धारराज का साधन नही बना सकी। उसने गान्धारवाहिनी के साथ, काश्मीर पर आक्रमण करना, पसन्द नहीं किया। काश्मीरवाहिनी के रक्त मे काश्मीर भूमि रंजित करना, नहीं पसन्द किया। देशवासियों के रक्त से, पंकिल भूमि का शासन करना, पसन्द नहीं किया। गान्धारराज ने गोपादित्य का मनोभाव समझ लिया। कभी आने वाले सुअवसर की आशा में गोपादित्य तथा उसके कुटुम्ब का समादर करता रहा। आदर-सत्कार मे न्यूनता नहीं आने दी।

समय आया। गोपादित्य को गान्धार राजधानी में दिव्य लक्षणों युक्त, अमोघ मेघवाहन नामक, पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई।

मेघवाहन का भविष्य उज्ज्वल था। उसका आचरण, उसका व्यवहार देखकर, गान्धारराज प्रसन्न था। उसे उस युवक के बल एवं पौरुष में, अपने मनोरथ के साफल्य की आशा, उदय हुई। पिता गोपादित्य पुत्र मेघवाहन के राजोचित व्यवहार एवं राजलक्षणों को देखकर समझ गया। उसका पुत्र काश्मीर के राज्य-सिंहासन को सुशोभित करने की क्षमता रखता था।

भारत के राजाओं के पास सन्देशवाहक पहुंचे। वैष्णव कुलोत्पन्न प्रागज्योतिषेन्द्र के राष्ट्र में उसकी कन्या के स्वयंवर का आयोजन किया गया था। उसमें भारत के सभी राजवंशों के युवक आमन्त्रित किये गये थे। गोपादित्य काश्मीर का राजवंश था। उसे भी निमन्त्रण मिला। उसने मेघवाहन को आशीर्वाद दिया। स्वयंवर में भाग लेने के लिए विदा किया। परिमित साधनों के साथ, भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिम अंचल से धुर पूर्व अंचल आसाम के लिए पिता के आदेश पर, मेघवाहन ने प्रस्थान किया।

प्रागज्योतिषेन्द्र के स्वयंवर मण्डप में भारत के सभी राजवंशीय, राजपुत्र गण, उपस्थित थे। सभी जैसे एक देश, एक जाति, एक संस्कृति एवं एक परंपरा के

प्रतीक थे। जाति, वर्ण, भाषा, व्यवहार, लौकिक रीति रिवाज उनमे भेद नही उत्पन्न कर सका था।

स्वयवर मे उसने वहा परम सुन्दरी राजकन्या अमृत प्रभा को देखा। वरुण का छत्र सिंहासन पर लगा था। मेघवाहन का शौर्य, उसका दिव्य स्वरूप, उसकी वीर पुरुषाकृति, अनायास सबकी दृष्टि आकर्षित करता था। वह राजविहीन राज-पुत्र था। उसके राज्य पाने की निकट भविष्य मे आशा नही था। परन्तु उन दिनो स्वयवर मे मनुष्य की जाति, उसका ऐश्वर्य, उसका राज्य विस्तार, उसका कोश, उसका रुपया-पैसा, वरण मे कम सहायक होते थे। कन्या किसी का भी वरण कर सकती थी। वह वर-चयन के लिए स्वतन्त्र थी।

प्रागज्योतिषेन्द्र के स्वयवर मण्डप में मेघवाहन को वरुण छत्र ने अपनी पवित्रछाया तथा अमृत प्रभा ने अपनी वरमाला से सम्मानित किया। प्राग-ज्योतिष की जनता ने पश्चिम दिशा के आगन्तुक लक्षणो युक्त मेघवाहन के उन्नत भविष्य को पश्चिमी वायु चलने पर जलद आने के समान जाना। जनता जानती थी। महाराज नरक द्वारा वरुण के यहा से लाया गया छत्र, चक्रवर्ती के अतिरिक्त और किसी पर कभी छाया नहीं किया था।

पत्नी के साथ मेघवाहन प्रागज्योतिष से गान्धार लम्बी यात्रा समाप्त कर पहुचा। उसे देखकर आश्चर्य हुआ। उसके स्वागत के लिए पुरवासियो के साथ काश्मीर मण्डल की मन्त्रि-परिषद उपस्थित थी। पुर ललनाओ ने नव दम्पति का अभिनन्दन मगल-गान और मन्त्रि-परिषद् ने वशानुरूप काश्मीर भूमि दान सवाद घोष से किया।

सन्धिमान ने भेद-जर्जरित काश्मीर मण्डल की स्थिति समझी। उसने देखा, जनता की दृष्टि बदली थी। लोक मन बदला था। कोई उसे चाहता था। कोई उसका विरोध करता था। कोई उसके पक्ष मे बोलता था। कोई विपक्षी कटु शब्द प्रहार करता था। लोकमत तीव्र रूप से विभाजित था। विवाद चरम सीमा पर पहुच चुका था।

सन्धिमान स्वत शक्तिशाली था। उसे राज्य पद से हटाना कठिन था। वह समर्थ था। किसी प्रकार के प्रतिरोध को दबाने मे। किन्तु राज्य त्याग के लिए, वह स्वय उत्सुक हो गया। महान् राज्य परिवर्तन के आसन्न उस काल मे, वह अपने स्थान पर स्थिर था। उससे लोग कहते थे। राज्य स्थिति सुदृढ हो सकती थी। सत्ता त्याग, वैराग्य, राजा की शोभा नही थे। परन्तु सन्धिमान ने किसी की बातों पर ध्यान नही दिया। उसने इस काल को, हर का प्रसाद समझा। इसमें भगवान् का अव्यक्त हाथ देखा। उसे अपने उत्कर्ष का आसन्न

काल समझा। उसने विचार किया :

'इन महान् सिद्ध विघ्नों को दूर करने के लिए समुद्यत भून भावन मुझ पर प्रसन्न हो गये हैं। अहह ! सौभाग्य से अनेक निष्पाप कृत्यों के रहते, श्रम से आलस्य का आश्रय लेते हुए, वर्षाकालीन पथिक सदृश, मैं निद्रा द्वारा मोहित नहीं हुआ।

' ओह ! सौभाग्य से अपने काल में स्वैरिणी सदृश, विरक्त लक्ष्मी को त्यागते हुए मैंने बलात् निर्वासन पीड़ा, व्रीडा को नहीं प्राप्त किया। इस राज्य रूपी रंगमंच पर, शैलूष सदृश, चिरकाल तक, मैंने नृत किया। सौभाग्य से, उसकी समाप्ति पर भी, दर्शक विरक्त नहीं हुए।

' सौभाग्य से मैंने लक्ष्मी के प्रति विमुखता का सदैव जयघोष किया। अतएव उसके त्याग काल में, युद्ध मध्य डींग हाकने वालों की तरह भयभीत नहीं हुआ हूं।'

सर्वत्यागोन्मुख नृप सन्धिमान अन्तःचिन्तन करते हुए, मनोराज्य करते हुए, दरिद्र तुल्य नितरां प्रसन्न हो गया। उसे सन्तोष हुआ। उसे निराशा नहीं हुई। उसे आशा हुई। वह शिव की अर्चा में शेष जीवन व्यतीत करेगा। जीवन में उतार-चढाव नहीं होगा। जीवन में, अर्थहीन मानवीय संघर्ष नहीं होगा। जीवन में राजनीति की भ्रामक बातें नहीं होंगी। जीवन में पाखण्ड नहीं होगा। वितण्डा नहीं होगा। उस जीवन मे, आत्मशान्ति होगी। चिर-शान्ति होगी।

वह आसन त्यागकर खड़ा हो गया। उसने सिंहासन पर रखे अर्चा लिंग के सम्मुख साष्टांग दण्डवत् किया। लिंग को स्पर्श करता इस राज्य-त्याग काल को, अपने जीवन का सबसे उत्तम, उत्कर्षमय काल माना।

रात्रि बीती। प्रातःकाल राजा ने स्नान किया। अर्चा शिव की पूजा की। उसने राज्यप्रासाद को एक बार देखा। अपने उस आवास को देखा, जिसमें निवास करता सैंतालीस वर्षों के लम्बे जीवन को व्यतीत किया था। प्रासाद की एक-एक ईंट उसकी परिचित थी। प्रासाद के एक-एक कण से उसने प्रीति स्थापित कर ली थी। प्रासाद में कोई ऐसा नहीं था, जिसने उसके प्रति अनादर प्रकट किया था। प्रासाद मे कोई ऐसा नहीं था, जिसके अन्तस्तल में वह विराज-मान नहीं था।

राज्य में रहकर, भोग में रहकर, उनसे दूर था। विदेह था। राग-द्वेष को दूर रखा था। प्रतिहिंसा को श्मशान अग्नि की तरह दूर रखा था। दण्ड को उसने दण्डधरों तक रहने दिया था। उसके समय कारावेश्म के द्वार खुले थे। वहां कोई निवासी नहीं रह गया था।

वह राज्य-प्रासाद से एकाकी अर्चा लिंग लिये निकला। उसने अपना अभिप्राय नहीं बताया। किसी प्रकार का संकेत नहीं किया। उसने प्रांगण में

उतरकर केवल यह कहा—"सभा एकत्रित की जाय।"

राज-सभा समवेत थी। राजा ने पाणि-पद्म में अर्चा लिंग लिए, सभा में प्रवेश किया। राजा केवल एक उज्ज्वल वस्त्र पहने था। स्कन्ध प्रदेश पर उत्तरीय था। वह राजसिंहासन के समीप पहुंचा।

सभा ने राजा को देखकर अभ्युत्थान किया। राजा सिंहासन पर बैठा नहीं। अर्चा लिंग लिए सिंहासन के समीप खड़ा हो गया। उसने सबकी ओर एक बार देखा। अंतिम बार देखा। जिनके साथ, उसने काश्मीर राज्य पर शासन किया था। जो राज्य के अंग थे। राज्य के यन्त्र थे।

राजा का विरक्त रूप, राज्यवेश-भूषाविहीन रूप देखकर, सभा चकित हुई। राजा ने सभा का उद्बोधन किया

"सभासद गण! यह राज्य आपका है।"

सभासद नत मस्तक हो गये।

"यह राज्य न्यास तुल्य मुझे मिला था।"

सभा नीरव थी।

"यह राज्य मेरा नहीं था। मैं राज्य का नहीं था।"

सभासदों ने एक-दूसरे की ओर छिपती दृष्टि से देखा।

"मैं यहां आया था। आपकी सेवा करने। राज्य की सेवा करने।"

सभा की दृष्टि राजा की ओर उठी।

"यह राज्य आपका है। आपने मुझे राजा निर्वाचित किया था। मैं तो निमित्त मात्र था।"

राजा ने दक्षिण पाणिपद्म में स्थित अर्चालिंग की ओर देखते हुए कहा

"यह सुरक्षित राज्य, यह न्यासतुल्य प्राप्त राज्य, आप लोग लें।"

सभा चकित हुई। अवाक् हुई। कितने ही सभासदों के मुख कौतूहल से खुल गये। कितनों ही की दृष्टि सरल हो गयी। कितने ही दुःख से झुक गए। कुछ क्रूर राजनीतिज्ञ स्वत राजमार्ग का कांटा निकलता देखकर, मन ही मन प्रसन्न हो गये।

"सभासदो!" सन्धिमान ने संयत स्वर में कहा, "आपकी इच्छा के प्रतिकूल मुझे यहां एक क्षण नहीं रहना है। एक व्यक्ति भी यदि मुझे नहीं चाहता, तो मैं यहां रहना पसन्द नहीं करूंगा।"

सभासद नतमस्तक हो गये।

सन्धिमान ने पुनः कहा

"इस राज्य की मैंने स्पृहा नहीं की थी। इस राज्य का मुझे लोभ नहीं था। यह राज्य अपने सुख के लिए नहीं लिया था। मेरा सुख कहीं और था।

आपका मुख कहीं और है। मैं अपने सुख की ओर जाता हूं।"

"नहीं।" सभा मे गम्भीर घोष उठा।

"वन्धुवर ! अब नही। आप अपना न्यास सम्भालें। न्यास के लिए··· ।"

"नही, आप रहेंगे ।" कम्पनेश ने कृपाण पर हाथ रखा।

"वन्धुवर ! इस सिंहासन के लिए रक्तपात ? इस निष्किंचन वस्तु के लिए रक्तपात !! जिसके लिए राज करना है, उसका रक्तपात !!! कम्पनेश ! यह कैसा विवेक है ?"

"राजन् !" महाधर्माधिकारी ने कहा, "आपको कौन हटा सकता है ?"

"महात्मन् ! मुझे कौन हटाता है ! मैं स्वयं इस राज्य का सर्प की केंचुल के समान त्याग करता हू।"

"हम नही चाहते।" सभा में उपस्थित, पौरगणों ने स्वर ऊंचा करते हुए कहा।

"धन्यवाद !" सन्धिमति ने कहा, "यह आपकी कृपा है। आपकी उदारता है। परन्तु अनेक नही भी चाहते होंगे।"

सभासदों ने एक-दूसरे की ओर देखा।

"कौन नहीं चाहता ?" एक व्यक्ति की गम्भीर ध्वनि गूंजी। किसी ओर से कोई उत्तर नही मिला। सभासदगण नत-मस्तक खड़े रहे।

"मित्रवर !" यह किसी के चाहने का प्रश्न नही है। मैं चाहता हूं कि नही यह विचार मुझे करना है।"

"यह क्यों विचार करना है ?" महा प्रतिहारी ने कहा।

"वन्धुवर ! फणीन्द्र अपना त्यागा कंचुक पुनः ग्रहण नही करता।"

"यहाँ कौन राजा होगा ?" महासन्धिविग्रहक ने प्रश्न किया।

"इस प्रश्न का उत्तर सभा देगी।"

"और आप···?" प्रतिहारी ने नम्रतापूर्वक राजा की ओर देखा।

"मैं ? मुझे राज्य त्यागना था, त्याग दिया।"

"क्या होगा··· ?" धर्माध्यक्ष ने प्रश्न किया।

"भविष्य अपनी चिन्ता स्वयं करेगा मित्र !"

"आपका निर्णय ?" सभाध्यक्ष ने प्रश्न किया।

"अपरिवर्तनीय है। आपके स्नेह के लिए कृतज्ञ हूं।"

"किन्तु···" सम्मिवात् ने कहने का प्रयास किया।

"महाशय ! प्रयत्नपूर्वक भी आप मुझे यह राज्य पुनः नहीं ग्रहण करा सकते।"

"सभा ने राज्य-त्याग के लिए नही कहा है।" पुरोहित ने कहा।

"यह सभा का प्रश्न नही, मेरा है। स्वेच्छापूर्वक मैंने राज्य का त्याग किया है। किसी ने मुझे राज्य-त्याग के लिए बाध्य नही किया है।"

"आपका निर्णय एकांगी है।" प्रदेष्ट ने प्रश्न किया।

"आपका भी निर्णय एकांगी था, जब आपने मुझे राज्य दिया था।"

"वह एक परिस्थिति थी।" सेनापति ने मन्द स्वर में कहा।

"और आज भी वही परिस्थिति है। राज्य आपका है। मेरे पास न्यास-स्वरूप था। उस न्यास को लौटाता हूं। आपकी उस थाती को जैसा लिया था वैसा ही वापस कर रहा हूं। नष्ट नहीं किया है। उसका अपने विलास के लिए उपभोग नहीं किया है।"

"राजन्!" धर्माधिकारी ने प्रश्न का प्रयास किया।

"थाती केवल थाती है। न्यास का स्वामी न्यास-रक्षक नहीं हो जाता है। उसका स्वामी तो कोई और होता है।"

"तो!" दण्डपति ने कुछ कहने की जिज्ञासा की।

"वह स्वामी अपनी थाती वापस लेगा। अब उसका उत्तरदायित्व, उस पर है, मुझ पर नहीं।"

"राजन्! वह स्वामी कौन है?" राष्ट्रान्तपाल ने पूछा।

"काश्मीर की महान् जनता!"

"और?" कार्यनिर्माणज्ञ ने प्रश्न करना चाहा।

"उसकी प्रतिरूप यह राजसभा!"

"ओह!" अन्तर्देशिका कह उठा।

"यह सत्य है। सत्य कभी असत्य नहीं होता। काश्मीर मण्डल फलता रहे, फूलता रहे। यहां के नर-नारी प्रसन्न रहें। राजसभा चलती रहे। शिव की महान् कृपा आप पर बनी रहे। सती स्वरूप यह भूमि सती-साध्वी माताओं की जननी बनी रहे। प्रवचना से, पाखण्ड से, विडम्बना से दूर रहे। यही हमारा एकान्त चिन्तन, इस महान् काश्मीर मण्डल, इसकी जनता के लिए है।"

राजा तूष्णीभू हो गया। उसने नतमस्तक, नत शरीर होते, सभासदों को नमस्कार किया। वह पादपीठ स्थान से उतरा। उस सिंहासन की ओर एक बार देखा, जिसके सम्मुख मन्त्री रूप में कार्य संचालन कर चुका था और जिस पर आसीन होकर राज्यशासन चलाया था।

राजद्वार की ओर बढ़ा। सभासद पंक्तिबद्ध उसे मार्ग देने लगे। सिंहासन से द्वार तक, दोनों ओर शुभ पथ तुल्य मार्ग बन गया। दोनों ओर सभासद करबद्ध नतमस्तक दण्डायमान हो गये। राजा चुपचाप उस शुभ पथ से, दक्षिण पद्मपाणि में मर्चालिंग लिये, बाहर की ओर अग्रसर हुआ।

सभासद, राज्याधिकारी हतप्रभ खड़े रहे। निस्तब्ध खड़े रहे। उन्हें पश्चात्ताप हुआ जो उसे हटाना चाहते थे। उनकी भी आंखें राजा के इस अपूर्व त्याग पर भर आईं। वे भी नीरव हो गये। केवल राजा की पद-ध्वनि धीरे-धीरे सभा-

भवन के बाहर जाते हुए सुनाई पड़ती थी। और श्रवणगत थी, उसके उन भक्तों की सिसक, जिन्हें राजा के प्रति कभी स्वप्न में भी अविश्वास नहीं उत्पन्न हुआ था। जो शत-प्रतिशत राजभक्त थे। जिन्हें राजा की दैवी शक्ति, उसकी परम धार्मिक भावना के प्रति आदर था, अटूट विश्वास था।

वह राजर्षि गमनशील था। वह ब्रह्मर्षि गमनशील था। काश्मीर का प्रिय राजा गमनशील था। और गतिशील थी, सन्धिमान के जीवन की त्याग-कथा।

उस पर राजकीय वस्त्र नहीं थे। उस पर राजकीय परिधान नहीं थे। केवल एक धौत वस्त्र उसकी काया पर पड़ा था। उसके घुघराले पिंगल केश में शिव चढ़े विल्व पत्र थे।

वह प्रजेश्वर पैदल ही अर्चालिंग लिये चला। वह मौन चला। शान्त चला। सौम्य मुद्रा में चला। नतमस्तक गमनशील मौनी, उस प्रभु के मार्ग को निःशब्द, अश्रुपात करते, पुरवासियों ने ग्रहण किया।

वह चला जा रहा था। रुक नहीं रहा था। उसके अनुकरणकर्त्ता, पुरवासी भी चले जा रहे थे। रुक नहीं रहे थे। राजा गोपाद्रि गिरि तथा सारिका पर्वत मध्य एक बार श्रीनगर की विशिखा पर खड़ा हो गया। चारों ओर जन-समूह उमड़ा था। राजा का अन्तिम दर्शन करने के लिए उत्सुक था।

राजा ने सारिका पर्वत पर उज्ज्वल होती सूर्य किरणों को देखा। गोपाद्रि पर ज्येष्ठेश्वर के मन्दिर का स्वर्ण कलश देखा। मन्दिर शिखर की पताका राजा का स्वागत कर रही थी। सारिका पर्वत पर सारिका देवी के स्थान की ध्वजा किंचित् लहराकर, नत होती, गमनशील राजा को बारंबार नमस्कार कर रही थी। राजा ने गोपाद्रि स्थित ज्येष्ठेश की वन्दना की। सारिका पर्वत की ओर, मुख फेरकर, देवी की वन्दना की। पुनः राजा ने पुरवासियों की ओर देखा। विनत उनके अभिवादन, प्रणाम का उत्तर देता अग्रसर हुआ।

राजा गोपाद्रि मूल मे डल के उपकूल मे होते उत्तर दिशा की ओर बढ़ा। लगभग एक गव्यूति गमनान्तर, वह ईशेश्वर अर्थात ईशावर पहुंचा। वहां, उसने, अपने गुरु ईशान का स्मरण किया। स्वस्थापित ईशेश्वर की पूजा की।

वह गुप्तगंगा के समीप सघन वृक्ष की छाया मे बैठ गया। तरु तले बैठे, राजा ने अश्रुपूर्ण आकुल, प्रत्येक जन को सान्त्वना देते हुए परावृत्त किया।

राजा ने मार्ग मे, निर्झरिणियों के मूल मे, रुक-रुककर साथ आने वाले स्नेही साथियों, अनुचरों को परावृत्त किया। मार्ग की कठिनता, गमनशील राजा की धार्मिक प्रवृत्ति, स्थान-स्थान पर धर्मस्थानों में निवास, लम्बे पूजन, वन्दन एवं आरती से ऊबकर अनेक पुरवासी लौट चुके थे।

सम्मुख घोर वन, कठोर प्राचीर सदृश्य खड़ा था। वह अपने मूल में, अन्ध-

मार बटोरे बैठा था। ऊँचे देवदार वृक्षों, उनकी घनी गहरी हरी हरी शाखाओं, उनका मन्दिराकार रूप, सूर्य किरणों को भूमि पर न आने देने का सफल प्रयास अन्धकार को और घनीभूत करता था। वनस्थली लम्बी लम्बी घासों से भरी थी। लता परिरम्भित, उत्तुंग देवदार वृक्ष पर, किंचित् लता पुष्प खिले थे। भूमि पर घासों में उगे श्वेत, पीले फूल फैले थे।

अटवी मध्य सन्धिमान रुक गया। शोकावेग के कारण अश्रु एवं रुद्ध वाणी से युक्त, समस्त लोगों को, अपने निकट से परावृत्त कर, उसने एकाकी गहन वन में प्रवेश किया।

उस वन में भूर्ज पत्रों के परिरोध के कारण, समग्र ध्वनिपूर्ण शीत मरुत से, शयन करते सिद्ध पथिक गण के मस्तक स्थित मणि कान्ति से युक्त हिम के गुहा गृह समुज्ज्वल हो रहे थे।

दिवस के अवसान काल में वन सरसी तट पर, तरु तले, जलपूर्ण पुटक घट के साथ पवित्र पर्णस्तर बिछाकर सन्धिमान ने विश्राम किया।

निकट ही पर्वत शिखर था। शिखर पर स्वल्प धूप पड़ रही थी। पर्वत शिखर से मूल तक दूर्वा दलों से छाया भू चित्रित तथा उत्फुल्ल अमल मल्लिका तल में, व्रज स्त्री जन प्रसुप्त थीं। वन पालों के वेणु ध्वनि से ध्वनित निर्झर जल द्वारा स्थान निनादमय हो रहा था। उस पर्वत मूल में प्रकृति की इस सहज अभिरम्यता में, गोपों के मधुर वंशी निनाद ने, अनायास राजा को निद्रित कर दिया।

एकाकी राजा वहाँ विश्रामशील था। रात्रि आयी। गम्भीर हुई। सबको अन्धकार की गोद में ले लिया। किन्तु उसने निर्विकार वहाँ रात्रि व्यतीत की। उसे वन की गहनता का भय नहीं था। वन पशु का भय नहीं था। वह स्वयं प्रकृति का अंग था। वनश्री का स्वयं एक मानव शृंगार था।

उसने पद-पद पर, पटह ध्वनि सदृश वन गज गर्जनों एवं बाघ ध्वनियों से रात्रि को परिगलित हुआ समझा। प्रातःकाल हुआ। वह नित्य कर्म के लिए उठा।

उसने पार्श्ववर्ती सरसी में अपनी निद्रा को तिरोहित किया। उसने पूर्व मुख सन्ध्योपासना किया। वह उठा। कनकी नदी के तट का आश्रय लिया। वशिष्ठाश्रम पहुँचा। आश्रम के तपस्वियों ने राजा का सादर सम्मान किया। तपस्वियों से, आश्रमवासियों से, धर्म चर्चा करता, वह राजा गहन वन मार्ग द्वारा, नन्दीश समीपस्थ भूत भर्ता परिचित सोदर तीर्थ में पहुँचा। उसने भूतेश्वर में ज्येष्ठ रुद्र की पूजा सोदर तीर्थ में स्नान कर की। योगियों के उस पवित्र आदर्श योगस्थान में योगियों, मुनियों का आशीर्वाद, उनका ज्ञान प्रसाद, प्राप्त कर, अपनी यात्रा नन्दी क्षेत्र की ओर आरम्भ किया।

भस्म स्मेर, सुघटित जटाजूट बन्ध से युक्त, अक्ष सूत्री रुद्राक्ष अंकित एवं वृद्ध मुनियों से सस्पृह वीक्ष्यमाण, राजा नन्दि क्षेत्र में त्रिभुवन गुरु के सम्मुख,

जब तक स्थित रहा, तब तक उसके अभिलषित की प्राप्ति हुई।

नन्दी क्षेत्र में शमी राजर्षि सन्धिमान, ब्रह्मर्षि सदृश हो गया। आश्रम में निवास करता था। उसकी पर्ण कुटी भुर्ज एवं देवदार वृक्ष के पल्लवों से निर्मित थी। उसका शयनासन पल्लवमय था। उसका बाहु मूल तथा हथेली उच्छीर्ष का कार्य करती थी। वह पर्ण पुटक में जल स्वयं अपने लिए लाकर रखता था।

एक आसन पर उसने अपना अर्चा लिंग रख दिया था। राज्यप्राप्ति, त्याग तथा वनगमन काल में वह लिंग उसका एकमात्र अवलम्बन था।

राज्य से केवल अर्चा लिंग लेकर चला था। श्मशान भूमि में केवल एक धौत वस्त्र धारण कर राज्य-प्रासाद की ओर चला था। केवल एक ही धौत वस्त्र के साथ उसने राज्य त्याग किया था। जिस रूप में उसने राज्य प्राप्त किया था उसी रूप में उसका त्याग भी किया था।

श्री कण्ठ व्रत के कारण सन्धिमान अत्यधिक सत्कृत था। वह जब भिक्षा हेतु, अपनी मधुकरी के साथ आश्रमवासी मुनि-गृहों में जाता, तो उसकी विनय, उसका त्याग, उसकी तपस्या से अत्यन्त प्रभावित, तपस्विनियां परस्पर सोत्साह स्पर्धा-पूर्वक उसे भिक्षा देने के लिए समुद्यत हो जाती थीं। उसे कुछ देने में अपने पुण्य का उदय देखती थीं।

किन्तु वह शमी भिक्षा से भी विरत हो गया। उसे भिक्षा की भी आवश्यकता नहीं रही। उसने राज्य के समान मधुकरी का भी त्याग कर दिया। भिक्षा ग्रहण करना त्याग दिया।

उसका कपाल वन पुष्प एवं फल से पूर्ण हो जाता था। उस मान्य ने अपने वैराग्य योग में भी याचना लाघव को नहीं प्राप्त किया। याचना उनसे दूर थी। वन के पादप फल उसकी मधुकरी में डाल देते थे। वही उसके जीवन का एकमात्र अवलम्ब था।

उसका दिन, उस तपस्वी का दिन, उस महान्, राजर्षि का दिन, उस ब्रह्मर्षि सन्धिमान का दिन, शिव-चिन्तन में, शिव उपासना में, अर्चा लिंग के सान्निध्य में, व्यतीत होता रहा। एक दिन, उस अर्चा लिंगासन के समीप, मस्तक लिंग पर रखे, काश्मीरेन्द्र की जीवन-ज्योति शिव-ज्योति में लीन हो गयी।

आधार ग्रन्थ : राजतरंगिणी : तरंग २ : ६२; २ : ६३-८०; ६५-१७१।

तृतीय तरंग

मेघवाहन

सन्धिमान के वन गमन के पश्चात् काश्मीर मण्डल राज्य विहीन था। काश्मीर के मन्त्रिगण मेघवाहन को लेने गान्धार गये। उनके लौटने में विलम्ब हुआ। उत्ताकर जनता के प्रतिनिधियों ने गान्धार देश की ओर प्रस्थान किया।

वहा मेघवाहन की प्रचुर प्रशस्ति फैली थी। प्रतिनिधियो का आश्चर्य हुआ। स्वल्पकाल मे राजविहीन मेघवाहन ने अपने व्यक्तित्व एव विलक्षण बुद्धि के कारण परदेश मे आशातीत ख्याति प्राप्त कर ली थी।

मन्त्रियो ने मेघवाहन से राज्य प्राप्त करने के लिए आग्रह किया। मेघवाहन वस्तुस्थिति समझना चाहता था। इसी बीच काश्मीर जनता के प्रतिनिधि उसकी सेवा मे उपस्थित हुए। काश्मीर सिंहासन सुशोभित करने का आग्रह किया। मेघवाहन ने स्वाभाविक गम्भीरता के कारण आतुरता प्रकट नही की। महान् आत्मा की तरह इस समय भी उसने महान् संयम का परिचय दिया।

मन्त्री तथा काश्मीर के जन-प्रतिनिधि उसके व्यवहार से अत्यन्त प्रभावित हुए। राज्य-लिप्सा उसे स्पर्श नही कर पायी थी। इसका अनुभव मन्त्रीगण तथा जन-प्रतिनिधियो ने किया।

पैतृक राज्य अनायास प्राप्त होते देखकर, मेघवाहन मन ही मन प्रसन्न था। उसने राजा सन्धिमान की कीर्ति सुनी थी। उसके प्रति उसके मन मे ईर्ष्या नही थी, द्वेष नहीं था।

उसने जब यह सुना कि सन्धिमान ने स्वत राज्य त्याग दिया था, वन-गमन किया था, तो उसे किसी प्रकार मार्ग मे प्रतिरोध की आशंका नहीं हुई। उसने काश्मीर चलने की स्वीकृति दे दी।

त्वरित गति से मन्त्रियो तथा काश्मीर जन-प्रतिनिधियो के साथ गान्धार से काश्मीर मण्डल के लिए प्रस्थान किया। उसके साथ गान्धार सैनिको का एक सैन्य-दल चला। साथ रानी अमृतप्रभा थी।

काश्मीर मण्डल का दर्शन मेघवाहन ने पचाल धारा पर्वतमाला मे किया। अपने पैतृक राज्य एव सुन्दर केसर से सुरभित हरी-भरी उपत्यका देखते ही वह काश्मीर की पवित्र भूमि पर घुटनो के बल बैठ गया। दोनो हाथ जोडकर प्रणाम किया। काश्मीर मण्डल की पवित्र भूमि को मूर्धा से स्पर्श किया। भूमि ने धूल से

उसके ललाट पर जैसे राजतिलक लगा दिया। उसने भूमि की वन्दना की। पुष्प एव जल से पूजा की। साथियो ने हाथ मिलाया।

राजा मेघवाहन ने जीवन के सुख-दुःख का विषम अनुभव किया था। जन-जीवन मे समय व्यतीत कर चुका था। मेघवाहन का दर्शन करते ही काश्मीर की जनता प्रफुल्लित हो गयी। उनने राजा का हार्दिक स्वागत किया। उनने गान्धार नर-नारियो के कठोर शरीर के स्थान पर कोमल काया का दर्शन किया। राजा ने प्रत्येक व्यक्ति को अपना सुहृद समझा। अपने घर का प्राणी समझा।

उनकी यात्रा श्रीनगर की ओर बढी। उनके दर्शन के लिए मार्ग मे नर-नारी घरो से निकल आये। राजपथ को मगल-सामग्रियो से सजा दिया। प्रत्येक घर पर पताका फहराने लगी। गवाक्ष मे खडी महिलाए पुष्प-वर्षा करती। लाज-वर्षा करती। स्थान-स्थान पर नागरिको द्वारा तोरणद्वार बनाया गया। द्वारो पर बाजे बज रहे थे। सर्वत्र स्वागत-समारोह का आयोजन किया गया था। पुष्प माला से राजा का शरीर भर गया। मधुर पत्र एव खाद्य से राजा तथा उसके साथी पूर्ण हो गये थे।

राजा श्रीनगर की ओर जैसे-जैसे बढता जाता था, साथ का जन-समूह भी बढता गया। उमडता गया। राजा के आगमन का समाचार सुनकर, श्रीनगर सजने लगा। रग बिरगे पुष्पो से घरो के द्वार सज गये। हरित पल्लव तोरण से राजपथ सज गये। राजा के समीप आते ही मंगल वाद्य बजने लगे। मन्दिरो के घंटे घनघनाने लगे। जयध्वनि से उपत्यका गूज उठी।

राजा ने राजप्रासाद मे रानी के साथ, परिचायको के साथ, राजश्री साज-सज्जा के साथ प्रवेश किया। बहुत दिनो के पश्चात् काश्मीर के राज्य-प्रासाद मे श्रीसदृश रानी ने प्रवेश किया था। राजप्रासाद सुन्दर गृहिणी को पाकर पुलकित हो गया। काश्मीर के नर-नारी प्रसन्न हो गये। बहुत दिनो के पश्चात् काश्मीर की जनता ने राजमहिषी का दर्शन किया था।

नरेश विहीन काल मे राजप्रासाद शिव का आवास बन गया था। वह मन्दिर रूप हो गया था। मठ रूप हो गया था। धार्मिक चर्चा का केन्द्र हो गया था। अध्यात्म चर्चा का केन्द्र हो गया था। नृत्य-गान के स्थान पर वहाँ धार्मिक उत्सव होते थे। राजा मेघवाहन ने राजप्रासाद को राजकीय रूप दिया। राजप्रासाद को राजप्रासाद बनाया। राजप्रासाद राजकर्मचारियो एव भृत्यों से भर गया। धर्म-प्रवाह बिना बदले, नृत्य-गान, उत्सव का केन्द्र बन गया। शख एवं पटह नाद के स्थान पर सैनिको के अस्त्र-शस्त्र प्रागण मे खनखनाने लगे।

श्रीनगर का राजपथ पुनः गजो, रथो, अश्ववारो तथा सैनिको से पूरित हो गया। पालकियो पर कुलीनो के दर्शन होने लगे।

लम्बे काल के पश्चात् परिवर्तन जनता को सुखकर लगा। विशृंखलित राज-व्यवस्था पुनः सुगठित हुई। कर्मस्थान जागृत हुए। व्यापार चलने लगे। वितस्ता पुलिन भरी नावों से भरने लगी।

श्रमिकों को काम मिला। बेकारों को काम मिला। कलाविदों को काम मिला। व्यापारियों को काम मिला। नटों को काम मिला। काश्मीर मण्डल रंगमंचों के संगीत से गूंज उठा। लोकगीतों से गुनगुना उठा। नर्तकों, नर्तकियों, गणिकाओं की संगीत-लहरियों से, उनके झनझनाते पायल रव से थिरक उठा। काश्मीर में धर्मश्री का बिना विरोध किये राजश्री लौट आयी।

राजा के प्रजानुरंजन को काश्मीर की जनता ने स्वच्छ क्षौम वस्त्र के क्षालन सदृश जाना। उस महाशय ने अपने उदात्त चरित्र एवं महान आचरण से प्राणियों पर अनुकम्पा करने वाले, बोधिसत्त्वों की चर्या का भी, अतिक्रमण कर दिया। काश्मीर ने देखा, राजा मेघवाहन में धर्म तथा राजश्री दोनों का अद्भुत मिलन था। वे दोनों उसके दोनों बाहुओं के समान थीं। वह एकांगी नहीं था। उसने धर्म तथा राजनीति दोनों को सन्तुलित रखा। उनके संगम में अनवरत काश्मीर जनता स्नान करती, प्रतिदिन नवीन प्रेरणा, नवीन जीवन का अनुभव करने लगी।

राजा मेघवाहन अहिंसा का पुजारी था। राज्याभिषेक काल में ही, उसके आज्ञाकारी अधिकारियों ने, अहिंसा मर्यादा का पटह घोष करवा दिया था। अहिंसा-व्रत राजधर्म हो गया। उसकी राज्य-सीमा में किसी भी प्राणी की हिंसा निषेध थी। अपराध घोषित कर दी गयी थी।

समस्या उपस्थित हुई। काश्मीर शीतप्रधान देश था। जनता प्रायः आमिष-भोजी थी। जलाशयों की शृंखलाओं के कारण मत्स्यों की प्रचुरता थी। मांस बेचने वाले, प्राण वधिक, मछुए बेकार हो गये थे। राजा के सम्मुख उनकी बेकारी की समस्या भीषण रूप में खड़ी हो गयी। राजा इस समस्या के प्रति जागरूक हो गया।

राष्ट्र में प्राणी वध-निषेध हो जाने पर, उस कल्याणी नृप ने, स्वकोश से, सौनिक आदि को निर्व्याज वृत्ति प्रदान की। उनकी बेकारी दूर की। उन्हें जीव-हिंसा से विरत किया। अन्य राज एवं अर्थोपयोगी कर्मों में नियुक्त किया। बेकारी दूर हुई। प्राणी-वध से होने वाला रक्तपात दूर हुआ।

काश्मीर में बलि-प्रथा प्रचलित थी। नर-बलि तक होती थी। वह धार्मिक कर्म मानी जाती थी। दैनिक धार्मिक जीवन का वह एक अंग थी। भगवान् बुद्ध ने बलि-प्रथा के विरुद्ध उद्घोष किया था। बलि-समन्वित यज्ञों का विरोध किया था। जनता की धार्मिक भावनाओं का राजा आदर करता था। उनके धार्मिक विचारों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता था। प्रत्येक व्यक्ति को धर्म-स्वतन्त्रता

थी, तथापि राजा ने अहिंसा व्रत लिया था।

राजा ने एक उपाय निकाला। उसने आदेश दिया, यज्ञ में घृत एवं पिष्ट द्वारा पशुओं की आकृति बनायी जाय। अश्वमेध, गो-मेध, अजमेध आदि के लिए अश्व, अजादि की मूर्तियां बनायी जाएं। जीवित पशुओ के स्थान पर उनकी घृत एवं पिष्ट निर्मित प्रतिमाओं को यज्ञ विहित रूप से बलि किया जाय। प्राणी स्वभावत: प्राण वध से संकोच करता है। उसे रक्तपात एवं हिंसा अच्छी नही लगती। राजा ने इस प्रकार एक ऐसा मार्गदर्शन किया था जो सरल था। सस्ता था। रुचिकर था। यह जनता के धार्मिक जीवन मे, कर्मकाण्ड में, यज्ञ में अभूतपूर्व क्रान्ति थी। इसने यज्ञ की मर्यादा स्थायी रखते हुए, यज्ञ को प्राण हत्या जैसे जघन्य कार्यो से बचा लिया। रक्त के स्थान पर घृत, पिष्टादि पशुओं की आहुति बनकर सुरभि का स्थान बन गया। मास की जलती दुर्गन्ध के स्थान पर घृतादि की सुगन्ध फैलने लगी। राजा ने जनता की स्वतंत्र धर्म नीति में हस्त-क्षेप न करते हुए, उसे इस प्रकार प्रभावित कर दिया कि वह सबके लिए श्रेयस्कर प्रमाणित हुआ। राज्य मे अनायास यज्ञों की हिंसा बन्द हो गयी। यज्ञ एवं बलि-कर्म अहिंसक हो गये।

राजा ने दान कार्य में मन लगाया। देश की आर्थिक समृद्धि के कारण राज-कोश भर गया। राज्य साधुओं का नही था। सन्तो का नहीं था। वैरागियों का नहीं था। संन्यासियों का नही था। त्यागियों का नही था। राज्य का एक राजर्षि राजा था। राजर्षि तुल्य भौतिकता से मुख नही मोड़ा। भौतिक साधनों को आध्यात्मिक लाभ का साधन बनाया। चरित्र बल की उन्नति की। अर्थ को साधन बनाया। उसे साध्य नही माना। राजा के समान मेघवाहन ने देश की समृद्धि के साथ राजकोश की वृद्धि की। उसने राजकीय धन का उपयोग, दान, पुण्य तथा जननोपयोगी कार्यो में किया। अपने सुख एवं ऐश्वर्य में दुरुपयोग नहीं किया।

राजा ने मयुष्ट ग्राम का निर्माण कराया। अपने नाम पर मेघवन नामक अग्रहार तथा पुण्य में अग्रणी मेघ मठ स्थापित किया।

राजा की रानी देवी अमृत प्रभा दान-कार्य मे पीछे नही थी। भगवान् बुद्ध की उपासिका थी। प्राग ज्योतिष की राजकन्या होने के कारण उसके साथ देशीय भिक्षुओं का एक दल काश्मीर मण्डल मे आया था। उनके निवास तथा भोजन की समस्या उपस्थित हुई थी। रानी ने निवास एवं भोग हेतु अमृत भवन नामक उत्तुंग विहार निर्माण कराया। विहार वर्तमान नगर से तीन मील दूरस्थ विचार नाग के समीप था। श्रीनगर और अनन्त भवन विहार का मध्यवर्ती भूमि खण्ड विहारों, मन्दिरों एवं स्तूपों की शृंखलाओं से भर गया था। अनन्त भवन विहार चतुष्कोण था। वहां पर एक स्तूप का निर्माण हुआ था।

एक देश का नाम लोह था। उसे आजकल लेह कहते हैं। उसके वित् गुरु को उनकी लौकिक भाषा में स्तोन्पा कहते थे। 'काश्मीर मण्डल' में उन्होंने प्रवेश किया। काश्मीर में अपना विहार स्थापित किया। काश्मीर मण्डल की पवित्र भूमि पर 'लो' स्तोन्पा का निर्माण कराया।

राजा की दूसरी पत्नी का नाम यूक देवी था। उसने अपनी सहपत्नी अमृत-प्रभा की स्पर्धा में निर्माण की कल्पना की। नद वन में अद्भुत आकार वाले भवन का निर्माण कराया। यह वर्तमान स्थान नरवोर है। श्रीनगर के उत्तर-पश्चिम मगीन] दरवाजा तथा ईदगाह के मध्य स्थित था। इसका दूसरा नाम नाद वाट था।

उस वाट के अर्द्धांग में शिक्षारत भिक्षुओं तथा शेष में स्त्री, पुत्र, पशुधन समन्वित गर्ह्य गृहस्थोपासकों के लिए व्यवस्था की गयी थी।

राजा की अन्य रानी इन्द्रदेवी थी। उस राजप्रिया ने श्रीनगर में इन्द्रदेवी भवन[1] नामक चतुःशालयुक्त विहार का निर्माण कराया। उसके साथ एक स्तूप अपनी धर्मप्रियता प्रदर्शित करने के लिए बनवाया।

राजा ने बहुविवाह किया था। गान्धार में निवास करने के कारण, पश्चिम की नामी अर्थात् सेमेटिक विचारधारा के सम्पर्क से बहुपत्नी प्रथा गान्धार में प्रचलित हो गयी थी। प्रायः काश्मीर के अब तक हुए राजाओं ने बहुपत्नी प्रथा को न तो स्वीकार किया था और न उसे किसी प्रकार से प्रोत्साहित किया था। मेघवाहन गान्धार में ही विवाहित हो गया था। वह अपनी सभी पत्नियों के साथ काश्मीर आया।

उसकी अन्य रानियाँ खादना तथा सम्भा थीं। उन प्रमुख देवियों ने अपने नामों पर अनेक दिव्य विहारों का निर्माण कराया था। जनश्रुति है, खादना देवी द्वारा निर्मित विहार बारहमूला से आगे वितस्ता के अधोभाग में स्थित था। यह वर्तमान खादन यार स्थान है।

एक समय राजा विहार कर रहा था। उसने समीप में ही भीतिकर क्रन्दन ध्वनि सुनी

'यह चोर है! यह चोर है!—चोर है।"

"यह कौन है?" राजा ने सुनते ही पूछा।

"राजन्!" द्वारपाल ने राजा को सादर अभिवादन किया।

"चोर को बाँध लो।" राजा ने क्रोधपूर्वक आदेश दिया।

क्रन्दित ध्वनि शान्त हो गयी। वहाँ कोई चोर दिखाई नहीं दिया। राजा

---

१ इन्द्रदेवी भवन—यह स्थान श्रीनगर में कायुन के समीप था।

चकित हुआ। किन्तु वह क्रन्दन ध्वनि भूला नहीं था।

दो-तीन दिन पश्चात् अश्वारूढ़ राजा बाहर जा रहा था। उसने देखा, अकस्मात दिव्य प्रभायुक्त दो या तीन अभ्यर्थिनी महिलाएं उसके सम्मुख उपस्थित हो गयी।

अश्वारोही राजा ने अश्व रोक लिया। उसने ध्यानपूर्वक उन महिलाओं को देखा।

"देवियो !" राजा ने सरल स्वर में सम्बोधन किया।

"अभय हो। राजन् !" महिलाओं ने अजलिबद्ध नतमस्तक निवेदन किया।

"देवियो ! क्या सेवा करूं ?"

"राजन् !" अभीप्सित को सुनकर देवियाँ सिर पर बध्यांजलि कर बोलीं, "देव ! करुणानिधे !"

"देवियो !" राजा ने कहा, "मैं आपके किस प्रयोजन की सिद्धि कर सकता हूं ?"

"राजन् !" महिलाओं ने सुस्वर में कहा, "आपने दिव्य प्रभाव से भुवन को धारण किया है। आपसे किसको भय हो सकता है !"

"भगिनी ! आपका मन्तव्य जान सकता हूं ?" अश्वारूढ़ राजा अश्व से उतर गया।

अश्व की रश्मि पकड़े हुए, राजा महिलाओं के सम्मुख खड़ा हो गया। उनके दिव्य स्वरूप को देखा। उनकी याचक मुद्रा देखी। राजा उनकी बातें जानने के लिए उत्सुक हो गया।

"पृथ्वीपते !" देवियों ने सविनय कहा, "एक समय नाग मेघ बनकर नभ स्थल को आच्छादित कर लिये थे। उस समय कृषकों को असमय करका पात की शंका उत्पन्न हुई।"

"हूं।..." राजा ने ध्यानपूर्वक उनकी ओर देखते हुए हुंकारी भर दी।

"नृपाल ! शालियों से परिपूर्ण क्षेत्रों की रक्षा हेतु उनका मन क्षुभित था।"

"तत्पश्चात्...?" राजा ने जिज्ञासा की।

"प्रभो ! अकारण ही नाग आपके क्रोध भाजन हो गये।"

"मेरे...?" राजा चकित हुआ।

"हां, राजेन्द्र !"

"किस प्रकार ?" राजा ने स्मरण करते हुए पूछा।

"कृषकों ने हमारे पतियों को जिस समय देखकर 'चोर-चोर' कहकर आर्त्तनाद किया।"

"अच्छा !" राजा ने कुछ स्मरण करते हुए कहा।

"काश्मीरेन्द्र ? उस समय आपने उनकी आर्त ध्वनि सुनकर आदेश दिया।"

"क्या ? " राजा उनके संवाद से आश्चर्यित हुआ।

"भुवनपते ! आपने सक्रोध आदेश दिया बांध लो।"

"ओह ! स्मरण आ गया, देवियो !" राजा ने सस्मित कहा।

"पृथ्वीपाल ! आपके आज्ञा मात्र से वे पाशवेष्टित कर लिये गये ?"

"देवियो !" राजा की मुद्रा गम्भीर हो गयी। उनकी ओर देखते हुए कहा, "आप क्या चाहती है ?"

"भगवन् ! अधुना हम लोगो पर करुणा कर उन्हें मुक्त करने की कृपा कीजिए।"

"देवियो !" सस्मित एवं प्रसादोज्ज्वल आनन राजा ने कहा, "वे सब नाग बन्धनमुक्त होंगे।"

नाग महिलाएं प्रसन्न हो गईं। उनके नेत्र हर्ष में अश्रुपूर्ण हो गये। वे गद्गद स्वर से बोलीं

"देव ! आपकी हम पर महती कृपा हुई है।"

"धन्यवाद !" राजा ने अश्वारूढ होते हुए कहा, "आपका प्रयोजन सिद्ध हो गया।"

नाग महिलाओं ने अजलिबद्ध नत मस्तक कर राजा को प्रणाम किया। राजा ने समीपस्थ दण्डधर को आदेश दिया

"अविलम्ब नाग मुक्त कर दिये जाएं।"

राजा का अश्व शनैः-शनैः अग्रसर हुआ। दण्डधर कारावेश्म की ओर चला। और नाग देवियाँ प्रसन्नवदन अपने बिछुड़े पतियों से मिलने चलीं।

"मन्त्रिन् !" राजा ने सभा में एकत्रित मन्त्रि-परिषद् को उद्बोधित किया।

"आज्ञा ! कृपानिधे !"

"केवल अहिंसाव्रत से काम नहीं चलेगा ?"

मन्त्रि-परिषद की प्रश्नपूर्ण दृष्टि राजा के तेजोमय मुख की ओर उठी।

"केवल काश्मीर में हिंसा बन्द होने से, विश्व में हिंसा बन्द नहीं हो जाती है।"

"पृथ्वीपते !"

"हिंसा सर्वत्र हिंसा है।"

"भूपति !—"

"इस जगत् में सर्वत्र हिंसा हो रही है।"

"निस्सन्देह होती है।"

"प्राणी मात्र की हत्या इस पृथ्वी-तल पर बन्द होनी चाहिए।"

"स्तुत्य कार्य होगा।" मन्त्री बोले।

"पृथ्वी-तल पर हिंसा किस प्रकार रुकेगी ?"

"कठिन कार्य है।"

"उसे सरल करना मन्त्रि-परिषद् का काम है। देश के राजा का कर्तव्य है, अन्यथा हमारे अस्तित्व का फल ही क्या है ?"

"राजन् !" मन्त्री बोले, "यह पृथ्वी अनेक भूपालों के राज्यों में विभक्त है। उनके आदेश पर ही उनके राज्यों में प्राणि-हिंसा का निषेध हो सकता है।"

"उन्हें प्राणि-हिंसा बन्द करने में क्या आपत्ति हो सकती है ?"

"राजन् ! भुवनत्रय में सभी आपके विचार तुल्य महीपाल नहीं हैं।"

"हूं!..." राजा की मुद्रा गम्भीर हो गयी। उसने राजभवन की छत की ओर देखा। अपने कृपाणयुक्त कटि की ओर देखा। किंचित् अन्यमनस्क हुआ। उसकी मुद्रा विचलित हुई। उसने भेरी घोष स्वर में कहा :

"उन महीपालों को अहिंसा व्रत लेना ही होगा।"

"किस प्रकार ?" मन्त्री ने जिज्ञासा की।

"हमारा आदेश।"

"वे स्वतन्त्र राजा हैं।"

"उन्हें हमारा आदेश मानना ही होगा।"

निर्व्याज धर्माचारी मेघवाहन ने विश्वास के साथ कहा : "आपके अधीन वे नहीं हैं। वे हमारी प्रजा नहीं हैं। यदि..."

"यदि...मैं समझता हूं।" राजा की मुद्रा किंचित् उग्र हुई। मन्त्रिगण नीरव हो गये।

"कम्पनेश !" राजा ने सेनापति की ओर देखा, "मैं दिग्विजय करूंगा।"

"राजन्—!" मन्त्रिपरिषद स्तब्ध हो गयी।

"हां—दिग्विजय !"

"प्रयोजन...?"

"हिंसा-वृत्ति-उन्मूलन के लिए। प्राणि-संहार बचाने के लिए। मैं इन मही को प्राण-रक्त से आर्द्र नहीं होने दूंगा।" राजा ने दृढ़ निश्चयपूर्वक कहा।

"किन्तु रक्तपात होगा..."

"हमारे आदेश पर जो भूपाल रक्तपात, हत्या बन्द कर देंगे, उनका काश्मीर-वाहिनी आदर करेगी। सैनिक उनका अभिनन्दन करेंगे।"

"और...जो नहीं ?"

"काश्मीर की यह महान् सेना, काश्मीर के महान् वीरगण, काश्मीर के नर पुंगव, उनकी चुनौती सहर्ष स्वीकार करने के लिए, प्रसन्नतापूर्वक समुद्यत रहेंगे।"

"दिग्विजय—अहिंसा के लिए।" प्रधान मन्त्री ने कहा।

राज सभा रोमांचित हो गयी। राजा ने सभासदो, मन्त्रिपरिषद, अमात्य, सचिवो एव कुलीनो को लक्ष्य करते हुए कहा

"हाँ! अहिंसा हेतु। मैं दिग्विजय करूँगा।" राजा ने पैरों पर जोर देते हुए कहा, "काश्मीर राज्य की सीमा बढाने के लिए नही। उपनिवेश बनाने के लिए नही। किसी राजा को निरर्थक पददलित करने के लिए नही।"

"दिग्विजय का उद्देश्य ?"

"भारतीय राजाओ मे, हिंसा विरत होने के लिए, प्रतिज्ञा कराऊँगा।"

चकित सभा राजा की ओर देखती स्तब्ध हो गयी।

विश्व इतिहास मे काश्मीरेन्द्र का यह अभिनव प्रयास था, महा प्रयास था। उसका यह विजय प्रयास बुद्ध के लिए स्पृहणीय था। महान् काश्मीरवाहिनी पुन एक बार दिग्विजय के उत्साह मे तरंगित हुई। काश्मीर का प्रत्येक ग्राम सैनिकों के अस्त्र-शस्त्र-अभ्यास और आयुधो के सग्रह मे मुखरित हो गया। काश्मीर का शायद ही कोई ऐसा कुटुम्ब बचा था, जिसके एक या दो युवक काश्मीर के गौरव-प्रयाण हेतु आर्पित न हुए होंगे।

काश्मीरवाहिनी का यह अभियान अश्रुत था, उद्देश्ययुक्त था। यह अभियान रक्तपात, हिंसा हेतु नही था। उसे रोकने के लिए था। प्राणि-रक्षा की भावना से एक सत कार्य के उद्देश्य मे काश्मीर की जनता प्रेरित हो उठी थी। मेघवाहन का यह अभियान धार्मिक था। धर्म-भावना ने, धर्म के उन्माद ने, धर्म की प्रेरणा ने, समस्त काश्मीर मण्डल को एक शस्त्र-निर्माणशाला मे परिणत कर दिया था। इस धर्मयुद्ध मे भाग लेने के लिए, पुण्यार्जन के लिए, किसी न किसी प्रकार योगदान देने के लिए, प्रत्येक नर नारी उत्कण्ठित हो उठा था। काश्मीर की यह उत्कण्ठा उसकी अमोघ शक्ति थी।

काश्मीरवाहिनी मगल मुहूर्त मे, मगल ध्वनि मे, मगल गान मे, प्राणियों के मगल हेतु काश्मीर सीमा पार करती विप्रो के स्वस्ति वाचन के साथ निकली। उस विशाल सेना को देखकर, नृपो का साहस टूट जाता था। वीर काँप उठते थे।

दिग्विजय यात्रा मे किसी को राजा ने अपमानित नहीं किया। उसने अपने प्रशसनीय विक्रम एव निरीक्षण मे जनता को निर्भय रखा। काश्मीर का प्रत्येक सैनिक भारतीय जनता को अपना समझता था, उनसे स्नेह करता था।

जिन राजाओं ने उसके अहिंसा व्रत को स्वीकार किया, राज्य मे प्राणि-अहिंसा के लिए आदेश जारी किया। वे राजा मेघवाहन के अभिन्न मित्र बन गये। जिन्होंने इस आदेश पालन मे शिथिलता दिखायी, उसका प्रतिरोध किया, उनके विरुद्ध मेघवाहन ने शक्ति का प्रयोग किया। उन्हे नतमस्तक किया। अहिंसा-

पालन करने के लिए विवश किया।

निष्कलंक राजा मेघवाहन ने अपने प्रभाव से भारतीय नृपों पर विजय प्राप्त कर, उन्हें अहिंसा व्रत मे दीक्षित किया। अनन्तर राजा दिग्विजय की दुन्दुभी बजाता, धर्म की पताका उड़ाता, भूखण्ड के समाप्त होने पर, अर्णस्पति के समीप पहुंचा। वह कृपाण हाथ मे लिये खड़ा रहा। विचार करता रहा। वह किस दिशा में अब और बढ़ सकेगा। भूमि समाप्त हो चुकी थी। केवल महान् जल-राशि सम्मुख फैली थी। वह अपनी कृपाण कोश मे नही रख सका।

राजा की महान् काश्मीरवाहिनी ने नील समुद्र तट पर शिविर डाल दिया। महासागर की उत्ताल तरगो का घोर निनाद वे सुनते थे। वे सैनिक नाद सुनने के आकांक्षी थे। निरपाय, निरुद्यम, तालवन की छाया मे सैनिकगण विश्राम करने लगे।

राजा ने जिज्ञासा की। समुद्र पार भी देश थे? राजा को स्थानीय लोगों ने सूचित किया। समुद्र पार द्वीप थे। अन्य द्वीपों पर आक्रमण करने के लिए राजा विचार करने लगा। उसने अपने सेनापतियों को बुलाया। द्वीपान्तर आक्रमण की योजना बनाने का आदेश दिया।

राजा ताल वन मे विहार कर रहा था। उसने तटवर्ती वन के छोर से आर्त-क्रन्दन ध्वनि सुनी:

"मेघवाहन के राज्य मे भी मैं यह मारा गया।"

राजा चकित हुआ। उसने ध्वनि दिशा की ओर लक्ष्य किया। उसने पुनः क्रन्दन ध्वनि सुनी:

"मेघवाहन के राज्य में भी मैं यह मारा गया।"

राजा तप्त लौह शंकु से जैसे अन्तर्विद्ध हो गया। उसने कृपाण हाथ में ले ली। प्रतिहार ने छत्र लगाया। छत्र की छाया मे शीघ्र ही ध्वनि दिशा की ओर वेग से गमन किया।

राजा चण्डिका मन्दिर के सम्मुख पहुंचा। परिचायकों को बाहर ठहरने का आदेश दिया। स्वयं एकाकी खंग हाथ में लिये मन्दिर में प्रवेश किया।

उसने देखा। चण्डिका यतन के सम्मुख एक मनुष्य अधोमुख पड़ा है। उसे एक शवर सेनानी मार रहा था। राजा ने घोर शब्द किया:

"ओ! अनात्मन!! कुकर्मी!!! तुम्हें धिक्कार है।"

राजा की तर्जित वाणी सुनकर शवर क्षणमात्र के लिए कार्य-विरत हो गया। छत्रधारी राजा को देखकर भय से कम्पित हो उठा। राजा ने समीप जाकर पूछा:

"शवर! किस अभिप्राय से आप इस हत्या में संलग्न हुए हैं?"

"राजन !" शबर ने राजा को राजकीय अभिवादन करते हुए कहा, "मेरा पुत्र रोग-पीडित है। मरणासन्न है। देवों द्वारा कहा गया है।"

"देव की आज्ञा !"

"पृथ्वीपते ! देवों ने कहा है। यह बलि उसके जीवन के लिए श्रेयस्कर होगी।"

"प्राण की रक्षा प्राण देकर ?" राजा गम्भीर हो गया।

"हां ! पृथ्वीपाल !!"

"शबर ! तुम इस प्राणी की हत्या नहीं कर सकोगे।" राजा ने दृढ़ स्वर में कहा।

"काश्मीरेन्द्र ! इस बलि के निरोध से मेरा पुत्र सद्य मृत हो जायगा।"

"अच्छा !" राजा ने साश्चर्य कहा।

"नरेन्द्र !" शबर ने कहा, "समस्त बन्धु बग केवल इसी पुत्र के जीवन से जीवित है।"

"किन्तु तुम यह हत्या नहीं कर सकोगे।"

"देव ! गहन वन में प्राप्त असहाय की आप रक्षा करते हैं। पुनरपि अनेकों के आश्रय बालक की आप क्यों उपेक्षा करते हैं ?"

शबर की बात बलि व्यक्ति कातरतापूर्वक सुनता था। उसके जीवन की एकमात्र आशा मेघवाहन पर केन्द्रित हो गयी थी। वह शबर को देखकर भय से काप उठता था। उसे जीवन से निराशा हो जाती थी। परन्तु जब वह मेघवाहन की ओर दृष्टिपात करता तो उसमें आशा सञ्चरित हो उठती। वह मेघवाहन को देवाधिदेव समझ रहा था। कोई देवता, उसकी प्राण-रक्षा करने, उसकी कातर-प्रार्थना एवं करुण क्रन्दन पर नहीं आया था। राजा ने उस बलि मनुष्य के कातर दृष्टिपातों से विवश होकर कहा

"ओ किरात ! दुखी मत हो। मैं स्वयं तुम्हारे पुत्र की, जिसके अनेक बन्धु हैं उसकी तथा बन्धुहीन इस, वध्य की रक्षा करता हूं।"

शबर हतबुद्धि हो गया। उसकी कौतूहलपूर्ण दृष्टि राजा पर केन्द्रस्थ हो गयी। वध्य घटना का सत्वर गति से अपने अनुकूल घटित होते देखकर, अपने प्राणों की आशा कर उठा। राजा ने शबर तथा वध्य दोनों की ओर सम दृष्टि से देखते हुए कहा

"शबर ! मैं अपना यह शरीर चण्डिका के लिए उपहार में देता हूं।"

"राजन ! आप स्वयं अपनी बलि देंगे ? उपहार चढ़ा देंगे ?"

"निश्चय शबर !"

"मैं आप पर, राजा पर, कैसे प्रहार कर सकूंगा ?"

"शबर ! तुम मुझ पर निःशंक होकर प्रहार करो। हमारी बलि से तुम्हारे विश्वास के अनुसार तुम्हारा पुत्र और यह वध्य प्राणी दोनों जीवित होंगे।"

शवर उस महासत्व राजा के चित्त की उदात्तता से विस्मित हो गया। रोमांचित हो गया। राजा से सविनय निवेदन किया :

"पृथ्वीपते ! हृदय के अतिकारुण्य के कारण आपमें किसी प्रकार का मन-विपर्यय उत्पन्न हो गया है।"

"शवर ! तुम्हारा यह भ्रम है।" राजा ने संयत स्वर में कहा।

"राजन् ! त्रैलोक्य के प्राणियों से भी जो शरीर रक्षणीय है, पृथ्वी के उपभोग योग्य है। उस काया की आप अनायास उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ?"

राजा शवर की बात सुनकर मुसकराने लगा। शवर ने आत्मीयता प्रकट करते हुए कहा :

"नृपगण, प्राण रक्षा हेतु मान, यश, अर्थ, दारा, बन्धु, धर्म, पुत्र की भी रक्षा नहीं करते। उनका भी त्याग कर देते हैं।"

"शवर !" राजा ने कहा, "मैंने प्राणी मात्र की रक्षा का व्रत लिया है।"

"प्रजानाथ !" शवर ने कहा, "आप प्रसन्न हों। इस वध्य व्यक्ति पर कृपा न कीजिए।"

"क्यों ? शवर !"

"आपके जीवित रहने पर मेरा शिशु और जनता दोनों जीवित रहेगी।"

स्वयं उपहार बनने के लिए उत्सुक नृप मेघवाहन ने दन्त प्रभा रूपी अर्घपुंज से मानो चामुण्डा की अर्चना करते हुए कहा :

"शवर ! सदाचार रूपी सुधा का स्वाद आप जैसे वनवासी किस प्रकार जान सकते हैं ?"

"राजन्...!"

"मरुस्थल-निवासी गंगास्नान के निर्मल आनन्द को नहीं जानते।"

"किन्तु...?"

"मूढ़ !" राजा ने कहा, "अवश्यमेव नश्वर इस शरीर से, अविनश्वर कीर्ति का क्रय करने, मेरे अभीष्ट के नाश हेतु, तुम्हारा यह दुराग्रह बढ़ गया है।"

शवर राजा की ओर अवाक् चक्षु देखता रहा। राजा ने पुनः कहा :

"और कुछ न कहो। यदि मुझ पर प्रहार करने में तुम्हें दया आती है, तो क्या मेरा कृपाण प्रस्तुत कार्यसिद्धि में समर्थ नहीं है ?"

राजा चामुण्डा के सम्मुख आ गया। उसने वध्य को मुक्त कर दिया। स्वशरीर उपहार देने के लिए उद्यत, उसने स्वयं अपने मुण्ड-खण्डन हेतु, कोश से कृपाण निकालकर धारण की।

राजा ने पंचपात्र के जल से मार्जन किया। देवी पर पुष्प चढ़ाया। देवी के चरणों पर मस्तक रखकर देवी की वन्दना की। देवी के भाल पर स्थित रक्त चन्दन स्पर्श कर उसे भ्रूमध्य लगाया। देवी के कण्ठ में पड़ी पुष्प की मालाओं

मे से रत्न माला निकाली। उसे स्वयं श्रद्धाभक्तिपूर्वक पहन लिया। उसने पुन अपनी मातृभूमि काश्मीर का स्मरण किया। पवित्र भूमि को प्रणाम किया। देवी के कण्ठ से पुन निगन्ध रत्न कर्णिकार की माला निकाली। काश्मीर का स्मरण कर उसे पहन लिया। बलि पशु तुल्य स्वय देवी के सम्मुख अपना उपहार चढाने के लिए समुद्यत हो गया।

राजा ने अपने दक्षिण पाणि मे कृपाण धारण की। वाम हस्त मे अपनी मूर्धा का बाल पकडा। मुण्ड छिन्न होते ही देवी के चरण पर रखने का सकल्प किया। खग धार उनके सत्व सदृश कण्ठ प्रदेश पर गिरना चाहती थी, प्रहारोन्मुख राजा का शरीर आकाश से गिरे पुष्पो से अकस्मात् आच्छादित हो गया। किसी दिव्य शक्ति ने उसके उठे खगमय हाथ की गति रुद्ध कर दी।

राजा ने अपने सम्मुख दिव्याकृति देखी। उसने चण्डिका, किरात, दारक एव वध्य को देखना चाहा। सब अदृश थे।

आश्चर्यचकित राजा दिव्याकृति को देखने लगा। उस व्यक्ति ने विनम्र स्वर मे कहा

"हे। मध्यम।। लोकेन्दु।।। करुणानिधे।।।। तुम मुझे सत्व वशीकृत वरुण समझो।"

कृताञ्जलि भूत, राजा ने वरुण की वन्दना की। उसे अजलिबद्ध प्रणाम किया। वरुण ने सुस्वर मे कहा

"तुम्हारी सेवा मे जो छत्र है, उसे मेरे नगर से तुम्हारे पुराण श्वसुर महाबली भौम ने अपहृत कर लिया था।"

राजा मेघवाहन ने अपना पवित्र छत्र देखा। उसने वह अमृतप्रभा के स्वयवर-काल मे पत्नीसहित प्राप्त किया था। वरुण ने छत्र की ओर लोभ-दृष्टि से देखते हुए कहा

"राजन्। रसातल का एकमात्र तिलक माहात्म्यशाली इस छत्र के बिना मेरे पुरवासियो के पद-पद पर प्राणान्तक उपद्रव होते है।"

अर्थपूर्ण बात सुनकर राजा मेघवाहन ने सस्मित मुद्रा से वरुण की ओर देखा। वरुण ने छत्र की ओर देखते हुए कहा

"हे। करुणामय।। छत्र प्राप्त करने की इच्छा से तुम्हारे औदार्य की परीक्षा हेतु यह सब मेरी निर्मित माया थी।"

राजा ने उत्तर देना चाहा। वरुण देव बीच मे बोल उठे

"तुम्हारे पूर्ववर्ती वसुकुलाभज ने प्राणियो का निष्प्रयोजन वध किया था। उसके पाप का आप अहिंसा प्रसार द्वारा प्रायश्चित्त कर रहे हैं।"

"वे कौन थे भगवन् !"

"वह थे तुम्हारे पुराण पुरुष मिहिरकुल।"

मेघवाहन अपने पूर्वपुरुष मिहिरकुल का नाम सुन चुका था। उसके विषय की अनेक प्रचलित गाथाएं सुन चुका था। उसका सिंहल अभियान सुन चुका था। उसके द्वारा लाया सिंहल ध्वज काश्मीर उत्सवों मे निकलते देख चुका था। उसने अपने पूर्वपुरुष मिहिरकुल का मन ही मन स्मरण कर प्रणाम किया।

राजा की विचारशील मुद्रा देखकर वरुण ने पुनः कहा :

"धरणी धारण हेतु उचित कोश शरीर मे जैसे क्रमशः भय और अभिलाषा उत्पन्न करने वाले विष तथा फण के रत्न समूह रहते है। तेज मे दिगन्तरव्यापी अग्नि मे जैसे अन्धकार तथा प्रकाशप्रद धूमपुंज एवं ज्वाला पल्लव रहते है—आवृत्त रवि मण्डल एवं प्रावृट पयोद से आच्छन्न दिन मे जैसे क्लम और शान्ति-दायी सन्ताप तथा वृष्टि होते है। उसी प्रकार एक ही महाकुल में त्रिकोटि हन मिहिरकुल एवं अहिंसक आप दोनों का विचित्र जन्म देखा है।"

वरुण के इस प्रकार कहने पर, मेघवाहन ने छत्र वरुण पर लगाने का संकेत, प्रतिहार को किया। वरुण पुरातन छत्र पुनः प्राप्त कर, प्रसन्न हो गये। सम्राट् ने अंजलिबद्ध स्तोत्र एवं छत्र से वरुण की पूजा की।

सप्रणय छत्र ग्रहण करने पर वरुण से गुणियों में अग्रणी धरणीपति मेघवाहन ने कहा :

"महात्मन् ! कल्पद्रुम एवं सन्त सम कोटि में होने योग्य नहीं हैं, क्योंकि कल्पद्रुम आकांक्षी के आकांक्षा करने पर और सन्त स्वतः फल देते है। छत्र हमारे पुण्य की पण्यता को कैसे प्राप्त करता यदि आप आर्त के उपकार हेतु प्रार्थित होते। वदान्य ! संविभागपूर्वक अनुग्रह पूर्ण करता है, क्योंकि मही रुह छाया द्वारा सन्तुष्ट करता हुआ, फल प्रदान करता है।"

वरुण सरस संवाद से प्रसन्न नेत्र मेघवाहन की ओर देखने लगा। मेघवाहन ने पुनः कहा :

"भगवन् ! आपके इस प्रकार के उदात्त व्यवहार से प्रोत्साहित यह जन एक अन्य वर की प्रार्थना करता है।

"मेघवाहन ! सत्वर बोलो।" वरुण ने प्रसन्न स्वर में कहा।

"आपकी कृपा से मैंने समस्त पृथ्वी अधीन कर ली है। अब द्वीपों को जीतने के लिए समुद्र बंधन हेतु कोई उपाय कृपया बताएं।"

भूमिपाल मेघवाहन के प्रार्थना करने पर, जलेश्वर वरुण ने उत्तर दिया :

"आप जिस समय समुद्र पार करने की इच्छा करेंगे, उस समय मैं जल स्तम्भित कर दूंगा।"

राजा मेघवाहन ने करबद्ध शिरसा नमन करते हुए आभार प्रकट किया :

"आपकी महान् कृपा है प्रभो !"

मेघवाहन के कहते ही वरुण छत्रग्राहिन तिरोहित हो गये।

प्रबल काश्मीर सेना, भगवान् रामचन्द्र की वानरी सेना के समान, समुद्र पार करने, दूसरे दिन चली। भगवान् राम के समय नल एवं नील अधिशासी अभियन्ताओं ने सेतुबन्ध निर्माण कर भारतीय तट तथा लंका तट जोड़ा था। किन्तु राजा मेघवाहन ने, जगत् ने, काश्मीर की सेना ने, अद्भुत चमत्कार देखा।

वरुण के प्रभाव से समुद्र जल स्तम्भित हो गया था। राजा ने महान् काश्मीर-वाहिनी के साथ जल को सीमान्तित करते हुए, विस्मित तथा भम्भित समुद्र पार किया। समुद्र का स्तम्भित वह जल, किसी नारी के सीमन्त सदृश था। काश्मीर की सेना निर्भय समुद्र पार कर गयी। सेना पार होते ही सत्वर गति से जल पुनः मिल गया। समुद्र का जल स्तर समतर पूर्वकाल सदृश लगने लगा।

गुण रत्नाकर राजा मेघवाहन ने नाना रत्नों की खान एवं रत्ननिधियों का शेखर, श्रीलंका के रोहण पर्वत पर ससैन्य आरोहण किया। उसकी सेना ताल-वृक्ष की घन छाया में विश्राम कर रही थी। राजा स्वयं नयनाभिराम श्रीलंका की मनोरम वनश्री अवलोकन कर रहा था। उसी समय लंकाधिपति विभीषण प्रेमपूर्वक राजा के समीप आया।

राक्षसेन्द्र विभीषण एवं काश्मीरेन्द्र नर मेघवाहन के पवित्र समागम से श्रीलंका की भूमि सुशोभित हुई। दोनों राजाओं को देखकर, दोनों पक्षों के मागध वन्दियों ने, दोनों देशों के राजाओं की गौरवमय वंशगाथा का गान किया। उनका गान इतना मधुर एवं तुमुल था कि उसकी ध्वनि में दोनों राजाओं का सलाप कोई सुन नहीं सका।

दोनों राजा भ्रातृ भाव से मिले। उनमें शत्रुता नाम की कोई वस्तु परिलक्षित नहीं हुई। राजा मेघवाहन तथा विभीषण का मिलन उज्ज्वल वर्ण गंगा तथा कालिन्दी यमुना का मिलन था। उनका मिलन हो गया था त्रिवेणी।

राक्षसेन्द्र तथा काश्मीरेन्द्र की सेनाएं राजाओं का स्नेह देखकर, पुलकित हो गयी थीं। श्रीलंका की जनता ने रक्तपात का अनुमान किया था। उसे राम-रावण युद्ध की पुनरावृत्ति की आशंका हुई थी। उसे क्रूर काश्मीरराज मिहिर-कुल के लोमहर्षण, रक्तरञ्जित आक्रमण की आशंका हुई थी। वह आशंकित थी। राजा मिहिरकुल के समान उनके राजा का हरण कर, मेघवाहन किसी अन्य राजा को श्रीलंका के सिंहासन पर न बैठा दे।

उन दोनों राजाओं का मिलन दो मानव हृदयों का मिलन था। दो प्रजारञ्जन भावना से प्रेरित नृपों का मिलन था। उनका मिलन था विचारों का।

राक्षसपति ने पृथ्वी भूषण राजा मेघवाहन का सप्रेम, उत्साहमय, उल्लासमय, जयघोष निनादित, राजपथों द्वारा स्वागत किया। वे नृप सदल-बल राजधानी

की ओर गमन किये। अमर्त्य सुलभ विभूतियों से श्रीलंका की जनता ने, राज-पुरुषों ने, काश्मीरपति राजा मेघवाहन का अभिनन्दन किया।

काश्मीर की प्रबल, प्रचण्ड सैन्य सज्जा भूमिविजय की उत्सुक नहीं थी। उसे रक्तपात द्वारा अपनी प्रबल शक्ति-प्रदर्शन की आकांक्षा नही थी। वह निकली थी एक उद्देश्य के साथ—वह उद्देश्य स्तुत्य था। मानवीय था। प्राणि-मात्र की रक्षा का प्रयास था।

राजा मेघवाहन ने अपने महान् अभियान का उद्देश्य राक्षसेन्द्र को समझाया। पिशिताश अर्थात् मासभक्षी राक्षसों का चरितार्थ नाम मेघवाहन के आगमन के पश्चात्, उसकी अहिंसा आज्ञा ग्रहण करने के पश्चात्, वह शब्द केवल रूढ़ हो गया।

राक्षसों ने मेघवाहन का अभियान प्रयोजन समझा। उन्होंने मांसभक्षण त्याग दिया। राजा मेघवाहन ने आमिष राष्ट्र श्रीलंका को निरामिष बना दिया। उसके इस कार्य ने श्रीलंका की जनता को प्राणी मात्र के प्रति आदर, स्नेह तथा रक्षा का भाव भर दिया। अहिंसा व्रत लेने पर उन्होंने स्वयं अपने अन्दर प्राणियों के लिए स्नेह-सागर उमड़ता देखा।

प्राणी का प्राणी मित्र बन गया। प्राणी दूसरे प्राणी का भक्षक न होकर, उनका रक्षक बन गया। मेघवाहन के कारण श्रीलका के आमिष भोजियों के जीवन मे आमूल परिवर्तन हो गया। उनके आचरण में परिवर्तन हो गया। उनके सामाजिक जीवन मे परिवर्तन हो गया। उनकी वह दृष्टि, जो सुन्दर, प्रफुल्लित, पुष्ट पशुओं को देखकर मासलोलुप भावना से भर जाती थी, उसमें छलकने लगा स्नेह। उसमें उत्पन्न हुई, उनके प्रति कोमल भावना। वे परस्पर द्वेष, परस्पर रक्त तृपालु न होकर, हो गये थे—मित्र। हो गये थे—सखा। हो गये थे—प्रकृति के वास्तविक रूप। एक-दूसरे के भय के कारण नहीं, अपितु सहायक। वे हो गये थे—एक दूसरे के सुख-दुःख के साथी।

मेघवाहन का कार्य सिद्ध हो गया था। श्रीलंका की जनता निरामिष हो गयी थी। राजा-प्रजा में मैत्री भाव सचारित हो गया था। वे एक ही कुटुम्ब के, एक ही माता-पिता के सन्तान के समान परस्पर प्रेम करने लगे थे।

गगनगामी पक्षी समूह में मानव से भय नहीं रह गया था। मानव के साथ वे खेलते थे। उनके हाथों पर, उनके स्कन्ध प्रदेशों पर, उनके मूर्धा पर स्नेह प्रदर्शित करते, उड़ते आकर बैठते थे। कूजते थे। मानव का स्नेह प्राप्त कर प्रफुल्लित गगन-पथ में, उत्साह सृजन करते थे। शून्य आकाश को दिव्य कलरव से भर देते थे। उनके इस परिवर्तन ने परिवर्तित किया मानव विचार।

मानव पक्षियों को दाना खिलाने लगा। उनके लिए स्थान-स्थान पर चौंतरे बन गये। उन पर नियमित समय पर अन्न बिखेर दिया जाता था। वे परस्पर प्रसन्नवदन कलरव करते, जैसे मेघवाहन की कीर्ति गान गाते आते थे। उनके

लिए अनेक स्थानों पर जल रख दिये गये। वे तृषित निर्भय आते। जल से तृष्णा शीतल करते और फिर किसी पादप पर पल्लव कुंज में जाकर बैठ जाते।

मासभक्षी पशु तथा पक्षियों के जीवन में भी परिवर्तन हो गया था। वे अब एक दूसरे के भय के कारण, त्रास के कारण, हत्या के कारण नहीं रह गये थे। वे हो गये थे, मैत्री भावना से पूर्ण सहृदय प्राणी।

राक्षसेन्द्र ने, राक्षस जनता ने, मेघवाहन को पथ प्रदर्शक समझा। उसे विजेता रूप नहीं देखा। राजा विभीषण ने अपने स्थायी प्रणयसूचक, राक्षस शिर की आकृतियों से युक्त शिखर ध्वजों को, काश्मीर की सेना को, उसके राजा को और उसकी जनता को, भेंट किया।

वे पारध्वज काश्मीर के राजपथों में, कल्हण के शब्दों में, बारहवीं शताब्दी तक, राज-यात्राओं में निकाले जाते थे। शताब्दियों पूर्व काश्मीर सेना के धर्म-विजय की गाथा पुनर्जीवित करते थे। काश्मीर की जनता पुण्यशाली दिग्विजयी राजा मेघवाहन की अद्भुत विजय गाथा सुनकर, अपने पूर्व गौरव से गौरवान्वित होती थी। वह महान् राजा शताब्दियों तक अपनी प्रजा की श्रद्धाञ्जलि पाता रहा।

इस जगत् में, इस विश्व में, इस भूमितल पर किसी देश के इतिहास ने इस प्रकार का उदाहरण, इस प्रकार का साक्ष्य नहीं प्रस्तुत किया है, जहाँ राजा की मृत्यु के सहस्रों वर्ष पश्चात् तक, उसे श्रद्धा भक्ति पूर्वक जनता स्मरण करती रही। उसकी दिग्विजय को श्रीलंका की विजय को धर्मयात्रा मानती रही। प्राणियों के प्रति यह प्रणयसूत्र काश्मीर की जनता के इतिहास का, वह जाज्वल्यमान स्वर्णपृष्ठ है, जो कभी मलिन होना जान नहीं सकेगा।

समस्त ज्ञात राक्षस कुलों में प्राण हिंसा निषिद्ध कर, कृती सम्राट् मेघवाहन ने दिग्विजय सम्पन्न किया। अपना सङ्कल्प पूरा किया। वह धर्म दिग्विजयी तुल्य धर्मघोष करते, काश्मीर की ओर प्रस्थान किया।

राक्षस समूह ने देखा। राक्षसेन्द्र ने देखा। जगत् ने देखा। काश्मीरवाहिनी समुद्र-तट पर आयी। वरुण की कृपा से समुद्र-जल स्तर फट गया। समुद्र तल की भूमि, सुन्दर ललना के सीमन्त समान हो गयी। वह महान् कौतुक देखकर, राक्षस चकित हो गये। राजा विभीषण ने राजा मेघवाहन का चरणरज मस्तक पर रख लिया। कृत कृत्य हो गया। काश्मीरवाहिनी तूर्य ध्वनि करती, फटे समुद्र के मध्य से, भारत तट की ओर, धर्मविजय पताका फहराती चली।

उस समय से लेकर, उस सार्वभौम राजा की उस हिंसा विरति आज्ञा का, किसी ने उल्लंघन नहीं किया। पशुओं तक ने नहीं किया। पक्षियों ने नहीं किया। जलचर प्राणियों ने नहीं किया। मेघवाहन के विशाल राज्य में क्षुद्र, जल मार्जा-, रादि जल में, सिंहादि वन में, श्येनादि आकाश में, जीव हत्या से विरत हो गये। वे सब हो गये थे—इस विशाल विश्व के मैत्रीपूर्ण प्राणी।

"दौवारिक !" राजा ने पुकारा।

"प्रभु !" दौवारिक ने प्रवेश कर सादर प्रणाम किया।

"कौन क्रन्दन कर रहा है ?" राजा ने दौवारिक से प्रश्न किया।

"द्वार देश पर एक शोकाकुल द्विज उपस्थित है।" दौवारिक ने साभिवादन निवेदन किया।

"क्या कामना करता है ?" राजा की प्रश्नपूर्ण दृष्टि दौवारिक पर उठी।

"भूपति ! द्विज अपने पीड़ित पुत्र को लेकर आया है।"

"मैं द्वार पर आता हूं।"

राजा सत्वर गति से द्वारदेश पर पहुंचा। उसने देखा। एक द्विज अपने पुत्र के साथ अश्रु बहाता क्रन्दन कर रहा था। राजा को देखते ही द्विज ने खड़े होकर कहा :

"राजन् ! आशीर्वाद।"

राजा ने विनत होते करबद्ध प्रणाम किया। राजा पीड़ित पुत्र को देखकर बोला :

"द्विज ! इसकी पीडा का क्या कारण है ?"

"दयानिधे !" द्विज ने कहा, "दुर्गा वांछित पशु आहार के बिना, मेरा यह एकमात्र पुत्र, आज ज्वर से मृतप्राय हो रहा है।"

"प्राणि बलि ?" राजा चकित हुआ।

"भूपति ! आपको निर्णय करना है।"

"क्या विवाद है, द्विज ?"

"ब्राह्मण-पुत्र और पशु के प्राण में कितना अन्तर है ?"

"विप्रवर ! प्राणी प्राणी है। सबमें प्राण है। कर्म के कारण विभिन्न योनियों में प्राण रमते हैं।"

"ओह ! हे !! भूमि माता !!! तुम्हारे वे भूमिपाल तिरोहित हो गये, जिन्होने ब्राह्मण प्राणोपलब्धि हेतु तपस्वियों का भी वध किया था।"

ब्राह्मण गम्भीर गगन की ओर देखता, घोर क्रन्दन कर उठा। ज्वर से तप्त पुत्र शरीर सहलाने लगा। राजा चिन्तित हो गया। मरणासन्न पुत्र को देखा।

द्विज ने कटु भाषण किया था। आक्षेप किया था। दुखियों के दुःख से, अनायास दुःखी होने वाले राजा ने चिरात् विचार किया : 'प्राणी बध्य नहीं है। पूर्व काल मे मैंने प्रतिज्ञा की थी। क्या मैं विप्र के लिए प्रतिज्ञा भंग करूं ?'

द्विज ने राजा की विचारशील मुद्रा देखकर करबद्ध क्रन्दन करते हुए कहा :

"मेरी इस एकमात्र सन्तान की क्या आप रक्षा करने में समर्थ नही हैं ?"

राजा ने एक बार द्विज के अश्रुपूर्ण नेत्रों की ओर देखा। पुनः ज्वर ताप से लाल हुए रक्त नेत्र बालक की ओर देखा। राजा ने विचार किया : 'मुझे निमित्त

बनाकर यदि द्विज बालक मृत हो गया तो वह भी अत्यन्त पापमय सङ्कल्प विप्लव होगा। संशय भग्न मेरा मन उसी प्रकार किसी एक पक्ष का अवलम्बन नहीं कर रहा है, जैसे मगण के आवर्त में गिरा कुसुम।'

"राजन् !" विप्र ने कातर स्वर में कहा, "क्या यह पुत्र आपके द्वार पर मृत हो जायगा ?"

राजा ने गगन की ओर देखा। फिर उसने महादेव शिखर की ओर देखा। सुरेश्वरी सर पर उडती जाती श्वेत वक-पंक्ति की ओर देखा। उसने गोपाद्रि[1] पर ज्येष्ठेश्वर मन्दिर पर फहराती, रक्त ध्वजा की ओर देखा। उसने भीमा तथा खेड़ा देवी की दिशा की ओर देखा। उन स्थानों से शीघ्र ही हुए, यज्ञ की धूम्र रेखा, गगन की ओर जा रही थी। राजा ने विचार किया 'दुर्गा को अपने देह के उपहार से सन्तुष्ट करके प्रतिज्ञा के साथ दोनों की प्राणरक्षा न्याय है।'

विप्र ने आकुल होकर पूछा

"आपने कोई निर्णय लिया, धर्मपुत्र ?"

"हाँ !" राजा ने सारिका पर्वत पर शारिका मन्दिर के स्वर्ण-कलश की ओर देखते हुए कहा।

"करुणानिधे !" द्विज ने उत्सुकतापूर्वक प्रश्न किया।

"दोनों की प्राणरक्षा होगी द्विज !"

"यह कैसे ?" द्विज ने साश्चर्य पूछा। कौतूहलवश उसके अश्रुकण सूखने लगे थे।

"कल मैं तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगा।" राजा ने चिरकाल तक विचार करते हुए कहा।

राजा द्वार की ओर मुड़ा। द्विज को विसर्जित किया। ब्राह्मण नव आशा के साथ सन्तान के पास आया। उसे उठाकर घर की ओर लौटा और राजा ने अन्तःपुर में प्रवेश किया।

रात्रि थी। राजा शयन-कक्ष में था। उसने निश्चय किया, देह-दान करेगा। शरीर दुर्गा पर उपहार चढ़ा देगा। पशु हत्या के साथ ब्राह्मण पुत्र की जीवन रक्षा हो जायेगी।

राजा प्रसन्नतापूर्वक देह-त्याग के लिए स्वयं अपनी बलि चढ़ाने के लिए समुद्यत हो गया। राजा ने स्नान किया। पवित्र धौत नवीन वस्त्र धारण किया। नवीन यज्ञोपवीत धारण किया। भ्रूमध्य रक्त चन्दन केसरमिश्रित तिलक लगाया। दिव्य माला धारण किया। खड्ग हाथ में लेकर निकला।

---

१ गोपाद्रि—शंकराचार्य पर्वत।

राजा दुर्गा की प्रतिमा के सम्मुख आया। प्रतिमा के पार्श्व में जलते दीपक में और घृत डाला। ज्योति तेज किया। देवी का शृंगार किया। देवी का पूजन किया। माल्यार्पण किया। देवी के सम्मुख वज्रासन लगाकर बैठ गया। करबद्ध वन्दना किया।

वन्दना समाप्त कर, राजा ने अपना मस्तक देवी के चरण पर रखा। दाहिने हाथ से खंग उठाया। अपनी वलि देने के लिए प्रस्तुत हो गया।

परन्तु राजा का खंगयुक्त उठा हाथ रुक गया। देवी ने निषेध किया। वलि से कोई लाभ नहीं। राजा ने अश्रुत वाणी सुनी: "द्विज का पुत्र प्रकृतस्थ हो गया।"

राजा प्रसन्न हो गया। उसने देवी का पाद स्पर्श किया। पुनः देवी की पूजा किया। खंग मन्दिर में टांग दिया। एकाकी राजप्रासाद में प्रवेश किया। तल्प पर लेट गया। सुख निद्रा में लीन हो गया।

प्रातःकाल द्विज अपने स्वस्थ पुत्र को लेकर राजद्वार पर प्रसन्न मुद्रा में आया। उसने राजा की कीर्ति, उसके गौरव, उसकी करुणा की प्रशंसा में द्वारदेश प्रतिध्वनित कर दिया।

अन्य लोगों में असम्भव, उस विगत भूपति के चरित का वर्णन करते लेखनी लज्जित होती है। उसके प्राणी स्नेह की गाथा, उपयुक्त शब्दों में, उपयुक्त भाषा में, प्रकट न कर सकने के कारण, लेखनी अपनी लेखन-कला पर लज्जित होती है। उस राजा के अमित गुण, उसका महान् चरित्र, उसकी अगणित गाथाएँ, काश्मीर की शोभा हैं। काश्मीर का गौरव है। विश्व के इतिहास ने मेघवाहन जैसे भूपति का न तो दर्शन किया था, न किया है। और स्यात् न कर सकेगा। दिग्विजय द्वारा प्राणि-हिंसा से जगत् को विरत करने की उसकी कल्पना, जगत् में अपना सानी नहीं रखती।

पृथ्वी का चौंतीस वर्ष भोग करने के पश्चात् राजा के अस्त हो जाने पर सम्पूर्ण जगत् विना सूर्य के प्रकाश रहित हो गया।

आधारग्रन्थ : राजतरंगिणी, तरंग ३ : २-९६।

श्रेष्ठसेन (तुजीन-प्रवरसेन) हिरण्य-तोरमाण

राजा मेघवाहन का पुत्र श्रेष्ठसेन था। उसने राज्य सिंहासन को सुशोभित किया। उसका अपर नाम तुजीन था। जनता उसे प्रवरसेन प्रथम भी कहती थी।

उसके बाहु स्तम्भ मे लगे, कृपाण मणि दर्पण मे उत्सुक भुवनश्री प्रतिबिम्बित होती थी। राजा प्रवरसेन ने वशवर्तिनी पृथ्वी को गृह के प्रागण तुल्य गणना की थी। उसने त्रिगर्त विजय किया। ग्रामो सहित त्रिगत अर्थात् कागडा की भूमि प्रवरेश्वर पर चढा दिया। कनिष्क ने समस्त काश्मीर मण्डल का राज्य विहार पर चढा दिया था। हिरण्य ने त्रिगर्त विजय काश्मीर की सेना द्वारा किया। विजित देशो को जिस भगवान् की कृपा से प्राप्त किया था, उनकी समस्त आय प्रवरेश्वर मन्दिर के पुण्य कार्यों मे लगा दी। कनिष्क के पश्चात् यह दूसरा उदाहरण मिलता है। जबकि एक देश की सम्पूर्ण आय का उपयोग धर्म-कार्य के लिए किया गया था।

प्रवरसेन निष्क्रूर था। समस्त पृथ्वी के मानव प्राणी उसके अपने कुटुम्बी थे। नृपो के इस अधीश्वर राजा ने तीस वर्ष काश्मीर एव त्रिगर्त पर शासन किया।

प्रवरसेन के हिरण्य तथा तोरमाण पुत्र थे। हिरण्य सम्राट एव तोरमाण ने युवराज पद से पृथ्वी रक्षा का उत्तरदायित्व लिया। उन्होंने क्षिति का यथाशक्ति रजन किया था।

तोरमाण का सम्बन्ध सम्राट् हिरण्य के प्रति भ्रातृभक्त भाई तुल्य था। तोरमाण ने भ्रातृ-अंकित प्राचुर्य मुद्रा का निवारण कर, स्वाकित दीनार मुद्रा प्रवर्तित किया था।

हिरण्य को तोरमाण का राजा तुल्य मुद्रा टकणित करना अच्छा नहीं लगा। वह युवराज तोरमाण पर क्रुद्ध हो गया। अपनी अवज्ञा समझी। तोरमाण के इस औद्धत्य कार्य को देखकर, राजा प्रतिशोध की भावना से उग्र हो गया। उसने तोरमाण को बन्दी बना दिया।

तोरमाण बहुत दिनो तक बन्दी गृह मे पडा रहा। समय बीतने के साथ-साथ शनै-शनै शोकरहित हो गया। उसने अपनी बन्दी अवस्था को ही शेष जीवन का क्रम समझा।

तोरमाण की पत्नी का नाम अंजना था। वह इक्ष्वाकु वज्रेन्द्र की आत्मजा थी। उसकी वन्दी अवस्था मे ही गर्भवती हो गयी थी।

उनकी आसन्न प्रसवावस्था को देखकर त्रिया पीडित पति तोरमाण ने उससे एक दिन कहा—"तुम किसी कुलाल गृह मे जाकर प्रसव करो।"

देवी अंजना ने कुलाल गृह मे शरण ली। वहां उसे एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। जिस प्रकार काकी पिक शावक का वर्धन करती है, उसी प्रकार कुम्भकार की गृहिणी उस राजपुत्र का पर्याप्त संवर्धन करने लगी।

कुलाल पत्नी तथा देवी अंजना के अतिरिक्त और कोई उस रहस्य को नहीं जानता था। शिशु की माता तथा रक्षिका कुलाली शिशु को उसी प्रकार जानती थी, जैसे प्रच्छन्न मूल्यवान निधि को पृथ्वी तथा भुजंगिनी जानती है।

माता अंजना के आदेश पर कुलाली ने प्रवरसेन के पौत्र नृपात्मज को पितामह के नाम से प्रख्यात किया। शिशु कुलाल गृह मे वार्धक्य प्राप्त करता गया। वह प्रवरसेन नाम से विख्यात हुआ।

वर्धमान शिशु तेजस्वियों की मैत्री का प्रेमी था। उसने सामान्य अकुलीन सहवासियो का उसी प्रकार सम्पर्क नही किया, जैसे रवि मैत्री का प्रेमी पद्म जल का सम्पर्क नही करता।

प्रवरसेन कुलाल शिशुओं तथा निम्नस्तरीय बालकों के साथ नही मिलता था, उनके साथ खेलता भी नही था। सर्वदा कुलीन, शूर, मेधावी बालकों के साथ क्रीड़ारत रहता था। उसका यह आचरण लोगो के विस्मय का कारण था। संग-साथ के क्रीड़ारत बालको ने उस तेजस्वी को उसी प्रकार अपने दल का राजा बना लिया। जिस प्रकार वन मे सिंह शावक के साथ क्रीड़ा करते हुए, बाल मृग उसे अनायास नेता बना देते है।

प्रवरसेन कुशाग्र बुद्धि था। उसने संविभाग एवं अनुग्रहपूर्वक बालकों को वश मे कर लिया था। उनके साथ कभी अराजोचित आचार नही करता था। वह कुम्भकारों के भाण्डादि निर्माण हेतु प्रदत्त मृत्पिण्ड को लेकर शिव लिंगों की परंपरा तैयार करता था।

आश्चर्यजनक क्रीड़ा करते हुए उस बालक को कदाचित् उसके मातुल जयेन्द्र ने देखा। उसने तेजस्वी बालक का सादर अभिनन्दन किया। साथ क्रीड़ा करते हुए शिशुओं ने बालक प्रवरसेन को आगन्तुक का नाम जयेन्द्र बताया। बालक प्रवरसेन ने भूपाल सदृश अवहेलनापूर्वक जयेन्द्र की ओर देखते हुए मानो एक प्रकार से उन पर अनुग्रह किया था।

बालक का प्रबल साहस देखकर, जयेन्द्र के मन में धारणा बैठ गयी। बालक किसी असामान्य कुल में उत्पन्न हुआ था। वह अपनी भगिनी की मुखाकृति से बालक की आकृति मिलती देखकर, गम्भीर हो गया। उसके मन में अज्ञात निवास

करती भगिनी के पुत्र होने की शंका उत्पन्न हुई।

वस्तुस्थिति की जिज्ञासा उत्सुक जयेन्द्र, वहां ठहर गया। बालक प्रवरसेन साथियों के साथ घर लौटने लगा। जयेन्द्र ने बाल समूह का अनुसरण किया। कुलाली के घर पहुंचा। वहां उसने प्रिय भगिनी को देखा। पहचान गया।

चिरकाल के पश्चात् भाई-बहन का साक्षात्कार हुआ था। नीरव एक-दूसरे को उत्कण्ठापूर्वक देखते हुए, निःश्वासों के मध्य अत्यधिक वे अश्रुपात करते रहे। बालक प्रवरसेन ने जयेन्द्र को अपने गृह में आंसू बहाते बैठा देखा। उसका कौतूहल बढ़ा। बालक ने अपनी माता कुलाली से पूछा

"मां! यह कौन है?"

"वत्स!" कुलाली ने सस्नेह बालक को गोद में लेते हुए कहा, 'यह तुम्हारे मातुल और यह तुम्हारी माता है।'

बालक ने आश्चर्यचकित अपनी माता की ओर देखा। बालक की मातृस्नेहमयी दृष्टि देखकर माता ने अंचल में मुख छिपा लिया। उसका वर्षों का बंधा दुःख-बांध टूट गया। वह रोने लगी। हिचकी बंध गयीं।

जयेन्द्र बहन के दुःख और उसकी विपन्नावस्था पर फुक्का फाड़कर रो उठा। भाई-बहन अतीत की बातें स्मरण करते भविष्य को अन्धकारमय देखते कातर हो उठे थे। अपने कुटुम्ब, अपने उज्ज्वल दिनों की स्मृति, उन्हें विकल करती घेरने लगी। वे अपने को रोक नहीं सके।

कुलाली वह मर्मस्पर्शी दृश्य देखकर संयम न रख सकी। उसकी आंखों में अश्रुधारा बह चली। अंचल से आंसू पोंछते, उसने प्रवरसेन को गोद में खींच लिया। आर्द्र कपोल उसके बालजन्य सरल कपोल पर रखती, अपनी व्यथा जैसे बालक से बंटा लेना चाहती थी। प्रवरसेन ने कुलाली के कण्ठ में दोनों हाथ डाल दिये। वह इस अश्रुमय वातावरण में स्वयं रुआंसा हो गया था। परन्तु उसने विचित्र संयम का परिचय दिया। वह कुलाली से चिपटा सुदूर क्षितिज में जैसे कुछ देख रहा था।

बहुत दिनों के पश्चात् बालक ने जाना। कुलाली उसकी वास्तविक मां नहीं थी। उसकी मां अंजना थी। भाई बहन के आश्वस्त होने पर प्रवरसेन ने कुलाली के कण्ठ से अपना हाथ धीरे-धीरे खींच लिया। वह अंजना की ओर बढ़ा। जयेन्द्र पर एक दृष्टिपात किया। अंजना के सम्मुख जाकर खड़ा हो गया। उसने स्थिर स्वर में पूछा

"और मेरे पिता?"

देवी अंजना ने अपना मुख फेर लिया। वह कुछ न बोली। जयेन्द्र ने प्रवरसेन को अपनी गोद में खींच लिया। उसे पूर्व घटना सविस्तार बतायी।

पिता के बन्धन का समाचार सुनकर बालक क्रोधित हो गया। किन्तु

संयतात्मा के समान उसने अपनी भावना प्रकट नहीं की। शान्त चित्त पिता की मुक्ति का संकल्प किया। क्रोध-प्रदर्शन के लिए समय उपयुक्त नहीं समझा। बालक का यह राजोचित आचरण, गाम्भीर्य एवं विचारशील मुद्रा देखकर, जयेन्द्र अत्यन्त प्रभावित हुआ। बालक को सदुपदेश दिया। अनन्तर अवशिष्ट कार्य-हेतु प्रस्थान किया।

प्रवरसेन युवा हुआ। राजपुत्र तुल्य तेजस्वी था। धीमान था। वीर था। सत्यवादी था, दृढ़ संकल्प था। पिता के प्रतिशोध की भावना उसमें अंकुरित हो चुकी थी। प्रतिहिंसाग्नि ने आयु वार्धक्य के साथ वार्धक्य प्राप्त किया।

युवक प्रवरसेन ने राज विद्रोह की तैयारी की। सैनिकों को एकत्र किया। साथी साथ देने के लिए सन्नद्ध हो गये। तोरमाण का चिरकालीन बन्दी जीवन, जनता के क्षोभ का कारण बन गया था। जनता की सहानुभूति बन्दी-गृह में पड़े तोरमाण की ओर जाग्रत हुई।

राजा हिरण्य ने वस्तुस्थिति की गम्भीरता को समझा। उसने हवा का रुख पहचाना। खुले विद्रोह के पूर्व स्वेच्छापूर्वक मानव सूर्य तोरमाण भाई को बन्धन-मुक्त कर दिया। किन्तु बन्धन-मुक्ति के समय वह अस्त हो चुका था।

राजसुख से विरत, कुलाली के गृह में रहस्यमय रूप से आश्रय पाती, दुःख सरिता में नित्य स्नान करती, अंजना ने पति की मृत्यु का शोक समाचार सुना। वह विधवा हुई। इस एक विधवा शब्द ने उसके जीवन का सुहाग छीन लिया। उसके लिए जगत् शून्य हो गया। वह जगत् के लिए, समाज के लिए मर गयी। उसके आश्रय, उसकी आशा का कोमल सूत्र टूट गया। वह निराश्रय थी। निरवलम्ब थी। दुःख की तीव्र वेदना में, पति के प्रति निष्कपट प्रेम ने, कुल के गौरव ने उसे प्रेरित किया। उसने पति के साथ सती होने का निश्चय किया।

युवक प्रवरसेन विचलित हो गया। पिता की मृत्यु के दुःख के पश्चात् माता का आसन्न वियोग उसके लिए असहनीय हो गया। उसने सजल नयनों से माता को अग्नि आलिंगन से विरत किया। पुत्र की बात तीव्र वात्सल्य भाव के कारण माता टाल न सकी। कोई जान नहीं सका। तोरमाण का पुत्र प्रवरसेन था। इस रहस्य को केवल उसकी माता, मातुल तथा कुलाली जानते थे। प्रवरसेन ने माता के साथ पिता का यथाविधि दाह-संस्कार किया।

प्रवरसेन पिता के संस्कारों से खाली हो गया। अस्थि चयन किया। स्वर्ण पात्र में अस्थि रखकर उस पर पुष्प चढ़ाया। मानसिक वेदना से खिन्न हो गया। तीर्थ-यात्रा करने की प्रबल उत्सुकता से दिगन्तर निकल पड़ा। उसने गंगा में अस्थि प्रवाह का संकल्प किया। माता से सानुनय निवेदन किया। वह कुछ दिन

और कुलाली के गृह पर निवास करे।

हिरण्य नि सन्तान था। तोरमाण मर चुका था। प्रवरसेन अज्ञात था। काश्मीर सीमा के बाहर था। इसी समय दस मास इक्तीस वर्ष शासन करने के पश्चात् पृथ्वी की रक्षा कर हिरण्य ने शान्ति प्राप्त की।

काश्मीर का राज्यसिंहासन राजाहीन हो गया। राजा के अभाव मे मन्त्रि-परिषद् ने स्वय राज्यसूत्र का सचालन किया। काश्मीर की शासन-व्यवस्था परिषद् चलाने लगी। राजा के अभाव मे भी शासन-व्यवस्था विघटित नही हुई। राजकार्य पूर्ववत् चलता रहा। राजवश मे कोई ऐसा अकुर नही था जिसका मन्त्रि-परिषद् वर्धन करती।

आधार ग्रन्थ राजतरगिणी ३ ९८-१२४।

मातृगुप्त

उन दिनों उज्जैनी में एकछत्र चक्रवर्ती श्रीमान् विक्रमादित्य राजा थे। उनका अपर नाम हर्ष था। अद्भुत सौभाग्यशाली सम्राट् के आश्रय में लक्ष्मी विष्णु के चारो बाहुओ और चारो समुद्रो को त्यागकर, स्वतः सवेग आयी थी। सम्राट् ने लक्ष्मी को उपकरण बनाकर, गुणों का वर्धन किया था। उसके कारण धन से ही मूल्यांकन करने वाले धनी जनों मे भी गुणी जन उन्नत स्कन्ध बैठते थे।

महान् सम्राट् ने म्लेच्छो के नाश हेतु, पृथ्वी पर अवतरित होने वाले, हरि के कार्यभार को आदि में ही शकों का विनाश कर लघु कर दिया था। नाना दिगन्तरो में प्रख्यात एव गुणवानो के लिए सुलभ, नृप की सार्वजनिक सभा भवन में कवि मातृगुप्त पहुचा।

विविध राज्य सभाओं में संवर्धित, कवि मातृगुप्त गम्भीर भूपति के महाद्भुत प्रभाव की कल्पना कर, चिन्तन किया: 'गुणी प्रिय इस भूपाल का सान्निध्य पूर्व पुण्यो के कारण प्राप्त किया है। उससे उत्कृष्ट नृप को ढूंढने के लिए केवल पूर्वकालीन इतिहासो के पृष्ठों को उलटना होगा। राजा कितना विशाल हृदय है? उसके यहां तत्त्ववेत्ताओं, विद्वज्जनों एवं शास्त्रज्ञों का समादर तथा गुण हेतु कभी अंजलिबद्ध होना नही पड़ता। इस राजा में भंगिमा विशेष द्वारा स्वाभिप्राय प्रकाशन में वृद्धि, कुलवधू तुल्य वैदग्ध्य रहित नही होती। खलों की निस्सारता को जानने वाले युक्तायुक्त विवेकी इस नृप की सेवा में स्वगुण अनर्थकारी नही होते। इसके सम्मुख दुर्विदग्ध एवं निन्द्य मूर्ख जनों की तुल्य कोटि में विद्वान् नहीं आते। अतएव उन विद्वानों को जीवन-मरण का अनुभव नहीं होता। संभावनानुसार प्रवृत्त, प्रतिदायी, उस विवेकी राजा के कारण उष्णोच्छ्वास द्वारा महाशयों की अवस्था शोचनीय नहीं होती। तारतम्यवेत्ता, उत्साहवर्ध, यह नृप उचित प्रमाण द्वारा सबको अन्त:करण में ग्रहण कर समाहृत करता है। कष्टविज्ञ, इस राजा के सेवाहित शिष्टाचार-सम्पादन में हुआ, भृत्यों का श्रम हिमाद्रि पर हिम विक्रय तुल्य व्यर्थ नही होता। उस राजा की सभा मे मिथ्या प्रशंसित आप्त पुरुष, कलहप्रिय अमात्य तथा असत्य सब स्थेय नही थे।'

मातृगुप्त ने पुनः चिन्तन किया:

"अश्लील आलाप करने वाले, परस्पर नर्मोक्ति द्वारा मर्मभेदी, अन्य का

प्रवेश न सहन करने वाले, मघरत उनके सेवक नही थे। यह नृप छन्दानुवर्तियो, प्रशसको एव सर्वज्ञ मन्यता से अन्यो का मुख देखने वाला नही था। दुर्जनो के लिए, दूसरे के साथ किये गये विपलोदय युक्त सलाप के बीच मे थान काटने का अवसर नही देता था। निर्दोष एव सेव्य इस नृप को पुण्यो से प्राप्त करने वाली मेरी स्वार्थसिद्धिया निकट हैं। गम्भीर गुणज्ञ तथा स्थिर बुद्धि यह नृप क्लेश-भय त्यागकर मुझे सेवनीय प्रतीत होता है। प्रसन्न इस राजा से अन्य राजाओ के समान धन लेकर, इस भूतल पर भ्रमण करते, मुझे अन्य नृप सत्य प्रतीत नही होते हैं।"

इस प्रकार दृढतापूर्वक चिन्तन कर, उसने राजसभा को नवागन्तुक तुल्य न तो रजित और न सभा के गुणियो की गोष्ठी मे हस्तक्षेप किया।

राजा का ध्यान मातृगुप्त की सरलता की ओर आकर्षित हुआ। मानव-आचरण, प्रवृत्तियो एव प्रकृतियो के विज्ञ, उस राजा ने विशिष्ट योग्यता ज्ञापन हेतु, सरल गुणा को प्रकट करने के लिए, मातृगुप्त आराधनोन्मुख था, अनुभव किया—"मातृगुप्त केवल गुणी नही है, क्योकि उसकी गम्भीरता उदात्त सत्कार योग्यता को सूचित करती है।"

मातृगुप्त की आन्तरिक मति जानने की राजा ने इच्छा की। परीक्षा हेतु यथावत् अन्य नवागन्तुक विद्वानो के समान मातृगुप्त का लाभ-सत्कार नही किया।

मातृगुप्त कवि था। काव्य ममज्ञ था। मानव गुणो का मूल्याकन जानता था। अतएव उस बुद्धिमान कवि ने उदात्ताशय नृप के उस अनौपचारिक व्यवहार से, अपने को राजा की दृष्टि मे स्वीकृत समझकर, प्रसन्नतापूर्वक, राजा की सेवा मे रत हो गया।

राजा ने शरीर के सदृश श्रम से बढते, उसके सेवाभ्यास मे, बुद्धिमान कवि मातृगुप्त की उपेक्षा नही की। बुद्धिशील सेवाभ्यास से राजा को स्वकाया तुल्य किंचित् मात्र उद्वेग नही हुआ।

राजा विक्रमादित्य हर्ष को मातृगुप्त ने अपनी नात्यन्त स्वल्प एव नात्यन्त दीर्घ स्थिति से शरदकालीन रात्रि सदृश प्रसन्न किया। मातृगुप्त अन्त पुरस्थ भृत्यो के नर्मोक्तियो से, कुचेष्टाओ से, द्वारपालो के त्रिक्रिया कर्मो से एव विटो की मिथ्या स्तुतिया से क्षुब्ध नही हुआ। वह प्रभु विक्रमादित्य के प्रसन्नतापूर्ण आलाप की समाप्ति मे छाया गृह तुल्य अचल था। उनकी अवज्ञा से प्रतिस्पर्धा सदृश क्रुद्ध नही होता था।

कालविज्ञ मातृगुप्त ने राजदासियो का अवलोकन, राजद्रोहियो के साथ आसन एव राजा के सम्मुख निम्नस्तरीय जनो से वार्तालाप नही किया। स्वभाव से नृप के विश्वस्त, राजनिन्दक, गुप्तचरो ने कभी मातृगुप्त मे राजा के प्रति उपालम्भ नही प्राप्त किया।

मातृगुप्त के अनुपम सेवा उत्साह को न सहन करने वाले सेवकों ने प्रतिदिन आदरपूर्वक उसे सेवा करते देखकर कहा : "यह सब सेवा विफल है।"

निन्दनीय वचन सुनने पर भी, मातृगुप्त की राजसेवा में शिथिलता नही आने पायी। वह अन्योत्कर्प का वर्णन करता स्वयं आग्रह रहित रहता। विद्या प्रकाशक राजसभा में सभासदों ने उसे हृदयंगम किया। मातृगुप्त तत्परतापूर्वक राजा की अत्यधिक सेवा करता हुआ कभी खिन्न नही हुआ। सम्राट् विक्रमादित्य के ससर्ग सेवा मे उसकी छह ऋतुएं व्यतीत हो गयी।

राजा एक समय वाहर जा रहा था। सर्वांग कृश, धूल-धूसर जीर्ण वस्त्रयुक्त, मातृगुप्त पर सहसा दृष्टिपात किया। क्षणमात्र में मातृगुप्त का चरित्र उसके सम्मुख मूर्तिमान खड़ा हो गया।

राजा ने चिन्तन किया—'दृढ़ता की परीक्षा में मैंने इस मातृगुप्त विदेशी, नि शरण, गुणवान, बन्धु-बान्धवहीन, इसे व्यर्थ कष्ट पहुंचाया है। खेद है। ऐश्वर्य मूढ़ मैंने यह भी नही विचार किया कि इसका इस विदेश मे कौन आश्रय है ? वह क्या भोजन करता है ? क्या पहनता है ? और किस प्रकार अपना जीवन निर्वाह करता है ?'

राजा ने निर्निमेष दृष्टि से मातृगुप्त के शुष्क परिगलित शरीर पर ध्यान देते हुए अन्तस्थ विचार किया—'मैंने वसन्त ऋतु के समान शीत, वात एवं आतप से शुष्क कर इस पुरुप पादप को आज भी शोभा से युक्त नही किया है। कौन इस निर्धन ग्लानि का भेपज्य, निर्विण्ण का विनोदन एवं श्रान्त को विश्राम दे सकता है ? सेवित होकर, मैं इसे चिन्तामणि किंवा अमृत नही दे दूगा, जो मैं मूढ़ इसकी इतनी परीक्षा ले रहा हूं।'

राजा ने मातृगुप्त को ऊपर से नीचे तक देखा। उसकी दरिद्रता पर करुणा करते हुए चिन्तन किया : 'तीव्र सेवाश्रमी एवं गुणी इससे मैं किस समादर द्वारा उऋणता प्राप्त कर सकता हू ?'

राजा विचारशील मुद्रा मे आगे वढ़ा। मातृगुप्त राजा की गम्भीर मुद्रा देखकर किंचित् चकित हुआ। उसने निमेष मात्र आशा चिन्ता मे विचार किया—'स्यात् राजा उसके भाग्य-विपर्यय के विषय में विचार कर रहा था। किन्तु उसके मन ने कहा—'राजा को इतना अवकाश कहा ?' क्या उस जैसे तुच्छ व्यक्ति के लिए वह चिन्ता करेगा ?'

मातृगुप्त ने अग्रगामी राजा को नतमस्तक सादर प्रणाम किया। छत्रधारी राजा का अश्व आगे वढ़ा। राजदर्शन से तत्क्षण प्रसन्न मातृगुप्त में निराशा प्रवेश न कर सकी। वह अपने काम की ओर लौटा।

राजा वढ़ता गया। इस चिन्ता के साथ कि मातृगुप्त का सत्कार किस प्रकार

किया जाय ? राजा को स्वप्रमादोचित तत्काल कोई सत्कार ध्यान मे नही आया।

प्रचुर नीहारकणवाही, हिम वायु समन्वित, शिशिर ऋतु अगो को दग्ध करता प्रवेश किया। तीव्र शीत से विवश, दिशाए निरन्तर घने अन्धकार के व्याज से नील निचोल से आच्छादित तुल्य शोभित हुई। शीत भाम के कारण मानो बडवाग्नि उष्मा की अभिलाषा से सूर्य के शीघ्र जलनिधि गमन करने पर दिन छोटे होने लगे।

उस शीतकाल मे किसी समय जब दीप से प्रकाशित गृह मे प्रज्वलित अगार धानी शोभित हो रही थी—राजा विक्रमादित्य अकस्मात् अर्धरात्रि मे प्रबुद्ध हुआ।

उसने गृह मे प्रविष्ट प्रभूत समाचार ध्वनि से, परुप हेमन्तकालीन वायु से, प्रकम्पित दीप सम्मुख देखा। अनन्तर दीप को प्रज्वलित करने के लिए, भृत्यों को सुस्पष्ट कहा, "बाहर, यामिक मे कौन उपस्थित है ?"

बाहर से किसी भृत्य न, किसी सेवक ने, किसी दण्डधर ने, किसी प्रतिहारी ने उत्तर नही दिया। राजा किंचित् चकित हुआ। उसी समय बाहर से शयन कक्ष मे दुर्बल कम्पित वाणी ने प्रवेश किया

"राजन् ! मैं मातृगुप्त हू।"

"प्रवेश करो।" राजा ने आदेश दिया।

अन्य के बिना ज्ञान हुए, मातृगुप्त न लक्ष्मी के सान्निध्य से रमणीय गृह मे शनै-शनै प्रवेश किया।

"दीपो को जलाओ।" राजा ने आदेश दिया।

राजा अपनी शय्या पर था। मातृगुप्त ने दीप को निष्पादित किया। चार पद शयन कक्ष के बाहर गया था। उसे राजा का स्वर सुनायी पडा

"क्षण-भर रुको।"

राजभय से मातृगुप्त का शीत कम्पन द्विगुणित हो गया। राजा क्या कहेंगे ? विचार करता प्रभु के सम्मुख न आकर अति दूर ठहर गया।

"कितनी रात्रि शेप है ?" राजा ने पूछा।

"यामिनी का डेढ याम अवशिष्ट है।" मातृगुप्त ने अत्यन्त विनम्र स्वर से उत्तर दिया।

"तुमने सम्यक् निशा क्षण किस प्रकार जाना ?" राजा ने मातृगुप्त से प्रश्न किया। मातृगुप्त ने करबद्ध निवेदन करना चाहा। राजा ने पुन प्रश्न किया "तुम्हें रात्रि मे निद्रा क्यो नही आयी ?"

अवस्था प्रतिवेदन से, आशा एव दैन्य को त्यागने के लिए उद्यत, मातृगुप्त ने क्षणमात्र मे श्लोक बनाकर नृप को सुनाया

"मापफली तुल्य शीत से रोमांचित एवं चिन्ता सागर निमज्जित मेरी जिसके अग्नि को धौंकने से अधर फट गये हैं, क्षुधा से कण्ठ क्षीण हो गया है, निद्रा अपमानित स्त्री तुल्य त्यागकर कहीं दूर चली गयी है और रात्रि सत्पात्र को दी गयी पृथ्वी के समान समाप्त नहीं होती।"

शीतेनोद्धूषितस्य मापशिमिवच्चिन्तार्णवेमज्जतः
शान्ताग्नि स्फुटिताधरस्यधमतः क्षुत्क्षाम कण्ठस्य मे।
निद्रा क्वाप्य वमानितेव दयिता संत्यज्य दूरं गता
सत्पात्र प्रतिपादितेव वसुधा न क्षीयते शर्वरी।
रा० ३ : १८१

महीपाल उसके मधुर, मर्मस्पर्शी श्लोक को सुनकर प्रसन्न हो गया। मातृगुप्त के परिश्रम की सराहना करते हुए राजा ने कहा :

"साधु ! मातृगुप्त साधु !"

मातृगुप्त ने राजा को अञ्जलिबद्ध शिरसा नमन किया। राजा ने उस कवीन्द्र से कहा :

"कवि, तुम अभिनन्दनीय हो !"

मातृगुप्त ने पुनः राजा को प्रणाम किया। राजा ने तल्प पर करवट बदलते हुए कहा :

"अपने पूर्व स्थान पर जाओ।"

मातृगुप्त ने दबे पाव शयनकक्ष त्याग दिया। अपने पूर्व स्थान पर आया। वहां स्थित हो गया।

मातृगुप्त के शयन कक्ष त्यागने पर राजा ने करवट बदला। वह उतान सो गया। उसकी आंखें न लगीं। निद्रा देवी ने उसे जैसे नमस्कार कर दिया। वह छत की ओर देखने लगा। कभी वह दीप शिखा की ओर देखता। कभी बाहर की ओर देखता।

मातृगुप्त का श्लोक उसके कानों में गूंज रहा था। वह उसे स्मरण कर चिन्तन करने लगा—"मुझे धिक्कार है। गुणयुक्त एवं खिन्न चेतस की दुःख आप्त वाणी सुनते हुए, इस प्रकार अभी स्थित हूं। सामान्य लोक के समान मेरे निरर्थक धन्यवादों को जानते हुए, अज्ञान हृदय यह मातृगुप्त निश्चय ही बाहर दुःखी बैठा होगा। इसके योग्य सत्कार के लिए, चिरकाल तक यत्नपूर्वक सोचने पर भी, मुझे बहुमूल्य कोई वस्तु आज तक देय नहीं मिली।"

सहृदय राजा मातृगुप्त के सत्कार हेतु कृत संकल्प हो गया था। क्षणमात्र विचारमन्थन करने के पश्चात् उसे स्मरण आया—"ओह ! मातृगुप्त ने मुझे जैसे स्मरण कराया है ! सुन्दर काश्मीर मण्डल राजहीन है। काश्मीर मण्डल के राज्याकांक्षी बड़े-बड़े महीपाल हैं। सतीसर की भूमि पवित्र है। कवि सेवित है।

पुण्य स्थान है।"

राजा अपने निश्चय पर स्वयं प्रसन्न हुआ। उसने उस निशीथ शीतकाल में ही दौवारिक को बुलाया

"द्वार पर कोई है ?"

"पृथ्वीपते !" शयन-कक्ष के बाहर से दौवारिक ने निवेदन किया।

"दण्डधर को शब्द दो।'

"आज्ञा प्रभु !'

राजा प्रसन्न मुद्रा में शय्या त्यागकर उठ खड़ा हुआ। उसने तल्प पर रखी लेखन-सामग्री को उठाया। भोजपत्र निकाला। उस पर स्वयं लेखनी से पत्र लिखा। अपने हाथों से मुहर लगायी। पत्र तल्प पर रख दिया। उस बन्द पत्र को निर्निमेष दृष्टि से कुछ समय पर्यन्त देखता रहा। पुनः मुस्कराया।

राजा शयन-कक्ष में घूमने लगा। गवाक्ष पट खोल दिया। निर्मल नील गगन में नक्षत्र प्रसन्न थे। राजा ने जैसे निश्चय नक्षत्रों को देखकर किया था।

शीत वायु शयन कक्ष में प्रवेश करने लगी। राजा ने शीत का अनुभव किया। गवाक्ष पट पुनः बन्द कर दिया। तल्प की ओर बढ़ा। उसने शयन कक्ष के द्वार पर मुख्य दण्डधर को दण्डायमान देखा। राजा ने उसे समीप आने का संकेत किया। दण्डधर ने राजा को शिरसा नमन करते हुए कहा

"पृथ्वीपते ! आज्ञा !"

"गुप्त रूप से दूतों को शीघ्र काश्मीर मण्डल में प्रकृति जनों के पास भेजो।"

"आज्ञा सम्राट् !"

"मुझे वहाँ की वास्तविक वस्तुस्थिति मालूम होनी चाहिए।"

"आदेश का पालन होगा भूपति !"

"उनसे कहना।' राजा ने मन्द स्वर में कहा, "मेरा जो शासन पत्र दिखाये उसको निःशंक काश्मीर मण्डल के सिंहासन पर अभिषिक्त किया जाय।'

"आज्ञा !" मुख्य दण्डधर ने विनीत स्वर में कहा।

"यह बात गोपनीय रहेगी।" राजा ने मन्द स्वर में कहा।

"आदेश शिरोधार्य है, सम्राट् !" दण्डधर ने अभिवादन किया।

राजा ने कहा "प्रस्थान करो।"

राजा तल्प की ओर लौटा। दण्डधर राजा को प्रणाम कर बाहर निकला। उसने देखा। द्वार पार्श्व में मातृगुप्त शीत में ठिठुरता बैठा था। अपने मलिन वस्त्र में, अन्धकार में मिलकर एकाकार हो रहा था। मातृगुप्त की स्थिति पर उसे दया आयी। उपेक्षापूर्वक क्षणमात्र मातृगुप्त पर दृष्टिपात करता, सवेग बाहर निकल गया।

शिलाखण्डवेष्टित प्रांगण में अश्व बंधा था। शिक्षित अश्व ने ध्वनि नहीं की। दण्डधर अश्वारूढ़ हुआ। अश्व के पाद ध्वनि से प्रांगण प्रतिध्वनित हुआ। राजा ने गवाक्ष पट खोला उस अश्वारोही का गमन देखा। द्वारपालों, प्रतिहारों एवं परिचायकों को असमय मुख्य दण्डधर का आना और प्रस्थान करना कौतूहल का विषय बन गया।

अश्व की पाद-ध्वनि नीरव रात्रि में विलीन हो गयी। उसका फरफराता उष्णीश पुच्छ अन्धकार मे लीन हो गया। राजा ने गवाक्ष कपाट बन्द कर लिया।

भूर्जपत्र और स्वर्ण लेखनी राजा ने पुनः निकाली। सुगन्धित दीपक के सम्मुख बैठ गया। राजा ने अपने हाथों स्वशासन लिखा। शासन पत्र लिफाफे मे बन्द किया। उस पर लाख की मुहर लगायी। अपने कार्य से सन्तुष्ट हुआ। कृत-कृत्य क्ष्मापति ने शेष रात्रि सुखद निद्रा मे व्यतीत की और शयन कक्ष के बाहर मातृगुप्त शीत मे ठिठुरता काप रहा था।

मातृगुप्त ने समझा था नृपति के संलाप का कुछ फल होगा। परन्तु रात्रि का संलाप उसने निष्फल समझा। निराश हो गया। फल की आशा के भार से दबा था। आशारहित होने पर, भाररहित, हलकेपन का अनुभव करने लगा। उसने मुक्ति की सांस ली।

अन्त.करण मे मातृगुप्त ने धारण कर लिया था : "मैने कर्त्तव्य किया। आज संशय शान्त हो गया। आशा रूप पिशाची मे मुक्त हो गया हूं। सुखपूर्वक विचरण करूंगा। गतानुगतिकता के कारण मुझे यह कौन भ्रम हो गया था, जिसने जन प्रवाद वश राजा को सेव्य मान लिया था !

"पवन के अशन करने वाले सर्पों को भोगी प्रख्यात किया गया है। गान करते भृगों के निवारक गजों को 'विस्तीण कर्ण' कहा गया है। अभ्यन्तर में अग्नि विकार धारण करने द्रुम को शमी कहा गया है। इस प्रकार संसार ने सबको विपरीत कर दिया है।

"उसके पास जाने में कोई प्रतिबन्ध नहीं है, कोई संकोच नहीं है, जिसने अपने प्रणयी जनो को गृहलक्ष्मी से सम्पन्न कर दिया है। त्यागी एवं निष्कलंक इस नृपति का क्या दोष है ? मेरा अपुण्य ही निंद्य है। वही श्रेय का प्रतिबन्धक है।

"रत्नों की समुज्ज्वल लहरियों का विकीरण करते हुए, समुद्र को यदि वायु तट से दूर कर दे, तो वह प्रार्थी के भाग्य विपर्यय का ही दोष है—न कि दाता की दानशीलता का। उदात्त फलाभिलाषियों मे नृपोपजीवी श्रेष्ठ होते हैं, न कि वे स्वामी, जो कि तीव्र परिश्रम पर, फल प्रदान करते हैं।

"पशुपति के पाद मूल में जो बैठते है, वे तत्काल भस्म के अतिरिक्त और

कुछ नही प्राप्त करते। उनके नृप का जो आश्रय लेते हैं, उनके लिए सदैव समुज्ज्वल स्वर्ण प्राप्ति के अतिरिक्त और कौन सुदिन हो सकता है ? विचार करने पर भी मैं अपना कोई दोष नहीं देखता हू।

" जिसके कारण किंवा जिसे जानकर सेव्यमान यह नृप विरक्त हो गया है, अथवा दूसरो से अनादृत, किसने निकट आकर गतानुगतिक प्रभु द्वारा फल प्राप्त किया है ?

"अभ्यन्तर मे जो निरन्तर असख्य जल कण उपेक्षित रहते हैं, लौटते हैं, उन्हें ही जलद जब ग्रहण कर गिराता है, तो तरग बनयो स आलिंगन कर, ग्रहण करते हुए, यह समुद्र सुस्पष्ट रूप से, मौक्तिक रत्न बना देता है। प्राय दूसरो से समादृत लघु भी समीप पहुचकर, स्वामियो से समादृत होता है।"

विचार-वीथियो मे चक्कर लगाता, मातृगुप्त सम्राट् विक्रमादित्य के प्रति आदररहित हो गया। निस्सदेह तत्त्वज्ञ खिन्न पुरुषो की बुद्धि निश्चय ही विपरीत हो जाती है। खिन्न मातृगुप्त अपनी शोचनीय स्थिति पर पश्चात्ताप करता था। दुखी होता था। मन मारे वह ऊघने लगा। यामिनी के अन्तिम याम मे कुक्कुट ने बाँग लगाई। उषा की अरुणिमा प्राची दिशा को शोभित करती, किसी शुभ मुहूर्त्त का घोष करती, मातृगुप्त को उनिद्रित करती, हलका होने लगी।

विभावरी के पश्चात् प्रभात हुआ। सदैव सदृश राजसभा एकत्रित हुई। राजा सभा स्थल मे आया। विप्रो के स्वस्तिवाचो, तूर्यनाद एव शखध्वनि के साथ, राजा ने सबको नमन करते, सिहासन ग्रहण किया।

राजा ने क्षेता की ओर देखा। उसे सम्बोधन किया

"क्षेता ! मातृगुप्त को शब्द दो।"

क्षेता ने प्रतिहारियो की तरफ देखा। प्रतिहारी मातृगुप्त को बुलाने दौड पड़ा।

अनन्तर निराश सदृश मातृगुप्त ने प्रतिहारियो के साथ सभा-भवन मे प्रवेश किया। नृपति को सादर प्रणाम कर खडा हो गया।

राजा ने प्रणाम कर्त्ता, अति उदास मातृगुप्त की ओर देखा। रात्रि जागरण के कारण, वह श्रान्त था। राजा ने मातृगुप्त का निराश, उदास रूप देखा। उसके अधरो पर स्मित रेखा दौड गयी। मातृगुप्त राजा की मुसकान देखकर शकित हुआ। शून्य दृष्टि से राजा को ओर दृष्टिपात किया।

तत्क्षण नृप ने भूसकेतित लेखाधिकारी द्वारा लेख मातृगुप्त को प्रदान कराया। मातृगुप्त लेख पाकर चकित हुआ। वह यह नाटक समझ नहीं पा रहा था। समझ मे रहस्य नही आया। बन्द लेख को उलट-पलटकर देखने लगा। राजा ने सस्नेह कहा

"अंग ! क्या आपने काश्मीर देखा है ?"

"नृपवर !" मातृगुप्त ने सादर मस्तक झुका दिया।

"द्विज ! प्रदत्त शासनपत्र वहां जाकर अधिकारियों को समर्पित कीजिएगा।"

"प्रभु की जैसी आज्ञा।" मातृगुप्त ने शासन-पत्र मस्तक से लगाते हुए कहा।

"किन्तु एक बात है।"

"आज्ञा भूपति !"

"मार्ग में लेख पढने वाले को मेरे देह की शपथ है।"

"राजन् ! जीवन रहते इस लेख को काश्मीर के अधिकारियों के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं पढ सकेगा।"

"अपनी प्रतिज्ञा प्रयत्नपूर्वक कभी विस्मृत न कीजिएगा।"

नृपति के आशय को मातृगुप्त नहीं समझ सका। क्लेश शंकित मातृगुप्त ने उस आज्ञा-पत्र को अग्निज्वाला जाना न कि रत्नांकुर कान्ति। सादर नतमस्तक राजा को नमन करता बोला :

"जैसी आज्ञा।"

"प्रस्थान करो श्रीमन् मातृगुप्त।" राजा ने सस्मित आदेश दिया।

मातृगुप्त चकित हुआ। राजा का सम्बोधन सुनकर। औपचारिक बात सुनकर। उसने अपना परिहास मात्र समझा। अपनी दैन्य स्थिति का उपहास समझा। उसने करबद्ध शासन पत्र के साथ, राजा को प्रणाम किया। राजा दूसरी ओर मुसकराता देखने लगा।

राजा की उपेक्षा देखकर मातृगुप्त खिन्न हो गया। उसे विरक्ति हुई। मन ने कहा। शासन पत्र लौटा दे। सहस्रों कोस लम्बी यात्रा से क्या फल मिलेगा ? किन्तु मातृगुप्त स्वभाव से सकोची था। 'नहीं' कहना नहीं जानता था। राजा को वचन दिया था। उस वचन को, अनिच्छा रहने पर भी, पालन करना उचित समझा।

सभा-स्थल से मातृगुप्त बाहर निकला। मातृगुप्त के निर्गत हो जाने पर, गर्वरहित नृप पूर्ववत् आप्त जनों के साथ सलापरत हो गया।

राजा का मातृगुप्त के प्रति व्यवहार जनता को अच्छा नहीं लगा। सभासदों को अच्छा नहीं लगा। सब आश्चर्यान्वित थे। राजा विक्रमादित्य ने कैसे एक विदेशी कवि को, अपनी सभा में इतने दिन रहने पर भी, न तो सन्तुष्ट किया और न उसकी आर्थिक स्थिति सुधारने में सहायक हुआ। किन्तु किसी की समझ में कोई स्पष्ट कारण दिखायी नहीं दिया।

अनलंकृत, क्षाम, सम्पत्ति रहित, वस्त्रहीन, मातृगुप्त को दीन, उदास, दारिद्र्य भार से दबे जाते हुए देखकर, राजा की परस्पर लोग मन्द स्वर में निन्दा करने लगे। एक ने कहा :

"अहो ! नरेश्वर की यह यत्किंचन विचारणा, जो कि सामान्य जनोचित कार्य में योग्यों को नियुक्त करता है ?"

"निश्चय !" दूसरा बोला, "दुराशा से अहर्निश सेवा करने दुःखी मातृगुप्त को विद्वान नृप ने क्लेश योग्य ही समझा।"

"चतुरवर !" तीसरा बोला, "सेवक जिन उपायों को अग्रसर करके प्रभु की सेवा करता है, अन्ततः नृप उसे उसी कार्य योग्य मानता है।"

"प्रियवर !" एक विद्वान् बोल उठा, "नाग रिपु गरुड के भय शमन से सुखाकांक्षी शेषनाग ने शरीर की शय्या बनाकर, विष्णु की सेवा करते हुए, प्रत्युत सुख का त्याग ही कर दिया, क्योंकि उन्होंने क्लेश सहन करने में समर्थ शेषनाग को समझकर, उन पर श्रमप्रद पृथ्वी का भार सदैव के लिए रख दिया।"

"मातृगुप्त !" एक विवेकी ने कहा, "उन गृहीत गुणवानों में स्वयं को अधिक गुणवान देखते हुए, इसने आस्थापूर्वक इस नृप का आश्रय लिया था।"

"मित्रवर ! एक विज्ञ ने कहा, "अन्तर को जानने वाला अन्य कौन इससे अधिक गुणवान है ? जिसने इस गुणवान की इस प्रकार पूजा की।"

"अहो !" एक कवि ने कहा, "जो अनेक कान्तिमय पदार्थों का रसिक है, निस्सार भी इन्द्रधनुष से प्रेम रखता है, वह मेरे सचित्र पत्र को देखकर मेरे लिए क्या क्या नहीं करेगा इस आशय से पिच्छ फैलाकर नृत्य करते मयूर को, जो जल कणों के अतिरिक्त कुछ नहीं देता, उस जलद के अतिरिक्त और कौन शून्य हृदय है ?"

समास्थल में अत्यन्त मन्द स्वर में लोग अपनी प्रतिक्रिया परस्पर प्रकट करते रहे और मातृगुप्त शासन पत्र लिये निनिन में खिन्न रहा था।

उज्जैन से मातृगुप्त उत्तर दिशा काश्मीर की ओर एकाकी प्रस्थान किया। कवि हृदय में नाना प्रकार के तर्क वितर्क उठे। किन्तु उसके मन में भावी अर्थ-माहात्म्य से कोई विकल्प उत्पन्न नहीं हुआ। वह दैन्यरहित हो गया था। उसे किसी प्रकार की आशा राजा विक्रमादित्य से नहीं रह गयी थी। उसने एक कार्य करने की प्रतिज्ञा की थी। उसे पूर्ण कर, अपने उत्तरदायित्व के भार से मुक्त होना चाहता था।

मार्ग में उसे नाना प्रकार के शुभसूचक निमित्त प्रकट होने, दृष्टिगोचर होने लगे। उन पर उसने विशेष ध्यान नहीं दिया। पूर्वकाल में अनेक समय शुभ-सूचक निमित्त प्रकट हो चुके थे। किन्तु उनका कोई परिणाम उसे नहीं दिखायी दिया था। उन शुभ-सूचक निमित्तों से हस्तावलम्ब प्राप्त करने तुल्य वह कभी परिश्रान्त नहीं हुआ।

उसने मार्ग में देखा। सर्प के फण पर खञ्जरीट बैठा था। रात्रि में उसने स्वप्न

देखा। वह अपने प्रासाद पर आरूढ़ होकर समुद्र पार कर रहा था।

तथापि उन शुभसूचक निमित्तों से, उस शास्त्रज्ञ ने चिन्तन किया। निश्चय ही राजा का आदेश मेरे लिए शुभावह है। काश्मीर में यदि मुझे स्वल्प फल भी प्राप्त हो, तो वह उस अनर्घ देश के माहात्म्य से अत्यधिक मूल्यवान होगा।

मातृगुप्त की यात्रा कष्टसाध्य नहीं थी। किसी प्रकार का विघ्न मार्ग में नहीं मिला था। उसे अलभ्य मार्ग में अतिथि प्रेमीगृह एवं पग-पग पर सत्कार प्राप्त हुआ। मार्गों का अतिक्रमण करता, उसने चंचल वृक्षों से आच्छादित, हरे एवं मंगल दधि-पात्र तुल्य हिम मण्डित शिखरों का दर्शन किया। देवदारु वृक्षों के राल से, सुमग पालनीय भूमि से संस्तुत, गंगा शीकरवाही काश्मीरी पवन ने मातृगुप्त का अभिनन्दन किया।

काश्मीर की अतिरम्य प्राकृतिक शोभा की गोद में मातृगुप्त था। उसका कवि हृदय गुनगुनाने लगा। क्रमवर्त अंचल में स्थित काम्बुल ढक्क पहुंचा। वह ढक्क शूरपुर अर्थात् सोपुर में स्थित था।

वहां पर उसने सुना। बहुजन संकुल स्थान पर, किसी कारण से काश्मीर के महामात्य स्थित थे। मातृगुप्त को अपने कार्य की पूर्णता प्रतीत हुई। वह प्रसन्न हो गया। उसका कार्यभार हल्का हो गया। वहीं पर श्री विक्रमादित्य का शासन पत्र महामात्य को देकर, अपने उत्तरदायित्व से मुक्त होने की सुखद कल्पना की।

अनन्तर उसने स्नान किया। भगवान् का स्मरण किया। धौत वस्त्र धारण किया। नृपति का शासन पत्र लिया। राजा विक्रमादित्य को मन ही मन प्रणाम किया। बहुजन संकुल स्थान पर, महामात्य के समीप पहुंचा।

मातृगुप्त के साथ कुछ पथिक थे। उन्होंने शकुनों को देखा था। अग्रसर होने के पूर्व, कुछ और शकुन हुए। पथिकों ने निमित्तों का फलोद्भव देखने हेतु मातृगुप्त का अनुगमन किया। उन्होंने प्रकट होते निमित्तों से मातृगुप्त के उत्थान का अनुमान लगा लिया था।

मातृगुप्त की सौम्य मुद्रा थी। महामात्य के स्थान पर पहुंचा। द्वारपाल से निवेदन किया :

"क्या आप कृपा करेंगे ?"

"आगन्तुक ! क्या सेवा करूं ?"

द्वारपालों ने मातृगुप्त की सौम्य मुद्रा को परिलक्षित किया। उसके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए। उन्होंने यथाशक्ति आदर प्रदर्शित किया। अभ्युत्थान के साथ स्वागत किया। मातृगुप्त ने शासन पत्र दिखाते हुए कहा :

"मैं सम्राट् विक्रमादित्य का दूत हूं।"

द्वारपालगण विक्रमादित्य का नाम सुनकर रोमांचित हो गये। तुरन्त मातृगुप्त का अभिनन्दन किये। करबद्ध बोले :

"आज्ञा महामते !"

"मेरे आगमन की सूचना देकर अनुगृहीत कीजिए।"

एक द्वारपाल 'मातृगुप्त द्वारदेश पर उपस्थित है,' सूचना शीघ्र ही मन्त्रि-परिषद् को देने दौड पडा।

दूत के आगमन का सवाद सुनते ही मन्त्रि परिषद् सावधान हो गयी। उपस्थित सभी लोग उठकर खडे हो गये। सबने अपना वस्त्र सम्हाला। सयत हुए। द्वारदेश पर चले आये। मातृगुप्त को देखकर वे प्रसन्न हुए। सत्कार प्रदर्शित करते हुए बोले

"आइये ! प्रवेश कीजिए।"

चारो ओर से उत्साहमय यह ध्वनि गूजी। मातृगुप्त बिना अवरोध अमात्यो के मध्य पहुच गया। अमात्यो ने मातृगुप्त का राजोचित् सत्कार किया। अपने जीवन में अकस्मात अपना प्रथम बार सम्मान होना देखकर, किंचित् लज्जित हो गया। अपने जीवन म प्रथम समय राजकीय सम्मान प्राप्त किया था। अन्यथा सम्मान करने का आदी हो गया था। पाने की कल्पना नही करता था। अमात्यो ने करबद्ध निवेदन किया

"सम्राट् की क्या आज्ञा है ?"

मातृगुप्त व्रीडा भार से दवा था। शासन पत्र अपने मस्तक से लगाकर उसका आदर किया। राजा विक्रमादित्य का स्मरण किया। विनत मुद्रा मे उसने शासन पत्र महामात्य को अर्पित किया।

अमात्यो ने प्रभु विक्रमादित्य के लेख का अभिनन्दन किया। उसे मस्तक से लगाकर प्रणाम किया। सम्राट् विक्रमादित्य को स्मरण किया। मृदु स्वर में बोले

"दूत ! हम अभी उपस्थित होते हैं।"

महामात्य, मन्त्रि परिषद् एव सामन्तगण एकान्त स्थान मे मिले। शासन पत्र सादर खोला गया। उसे बाँचकर चकित हुए। परस्पर परामर्श किये। मातृगुप्त के समीप आये। महामात्य ने मातृगुप्त का अभिवादन किया। अति विनीत स्वर म विनयपूर्वक जिज्ञासा की

"श्लाघ्य, मातृगुप्त आप ही हैं ?"

'एवमेव।"

मातृगुप्त ने सौम्य स्वर मे उत्तर दिया। उत्तर सुनते ही उपस्थित मन्त्रि परिषद्, अमात्य तथा सामन्तो के मस्तक राजकीय सम्मान मे नत हो गये। सबने मातृगुप्त को अजलिबद्ध प्रणाम किया।

मातृगुप्त ने सम्मान प्रदर्शन का, विनत मुद्रा से उत्तर दिया। अपने प्रति अकारण आदर-प्रदर्शन का रहस्य समझ नही पाया। वह इतने सम्मान का पात्र

क्यों बन गया था ? महामात्य की तदनन्तर वाणी सुनायी पड़ी :

"सन्निधाताओं में यहां कौन उपस्थित है ?"

सन्निधाता ने प्रवेश कर सादर प्रणाम किया। अमात्य ने आदेश दिया :

"राज्याभिषेक संभार एकत्रित किया जाए।"

जन संकुल वह स्थान क्षणमात्र में कोलाहलमय हो उठा। नागरिकों ने परस्पर जिज्ञासा की।

"राजा ?"

"कहां से आया ?"

"सम्राट् विक्रमादित्य ने नियुक्त किया है।"

"कौन है ?"

"वही आगन्तुक दूत।"

"उसका नाम ?"

"मातृगुप्त।"

उग्र कोलाहल के कारण स्थान क्षुब्ध समुद्र तुल्य लगता था।

अमात्य, पुरोहित आदि के साथ सभा-मण्डप में मातृगुप्त ने प्रवेश किया। राजा के जयनाद से स्थान प्रतिध्वनित हो गया।

मातृगुप्त सुवर्ण भद्रपीठ पर पूर्वाभिमुख बैठाया गया। उसे समागत प्रकृतियों ने अभिषिक्त किया।

उसके विशाल वक्षस्थल पर लुंठित होते सशब्द पूर्ण अभिषेक जल विन्ध्या तट के ढाल पर गिरते रेखा स्रोत तुल्य शोभित हुए। जल शब्द के साथ द्विजों के स्वस्ति-वाचन से वायुमण्डल पूरित हो गया।

स्नान पश्चात् मातृगुप्त का शरीर अनुलेपन से अनुलेपित किया गया। सर्वांग आभूषणों से भूषित किये गये। सिंहासन पर शंखध्वनि, तूर्यनाद एवं मंगल पाठ के साथ काश्मीर राज मातृगुप्त ने आसन ग्रहण किया। मुहूर्त मात्र पश्चात् ही निर्धन मातृगुप्त, विक्रमादित्य की कृपा के कारण काश्मीर का एकच्छत्र राजा बन गया।

प्रकृति जन राजा के सम्मुख आदर प्रदर्शन, अभिनन्दन, करने के लिए उपस्थित हुए। उन्होंने वन्दना की :

" रक्षा हेतु प्रार्थित स्वयं विक्रमादित्य ने आपको स्वतुल्य निर्दिष्ट किया है। आप इस पृथ्वी पर शासन कीजिए।

" हे राजन् !! इस मण्डल को दूसरों से प्राप्त होता न जानिए, क्योंकि इस राज्य द्वारा प्रतिक्षण मण्डल प्राप्त होते रहते हैं।

"राजन् ! जिस प्रकार स्ववर्यों से प्राप्त जन्म के प्रति माता-पिता कारण होते हैं, उसी प्रकार राजाओं के राज्य प्रवर्तन में अन्य लोग कारण होते हैं।

"ऐसी स्थिति में हे राजन् !! अन्य से 'तुम्हारा हूँ' यह कहकर आप स्वयं तथा हम लोगों को गौरवविहीन न करें।"

प्रकृतिजनों के निःशब्द होने पर राजा ने विक्रमादित्य के समादर को स्मरण किया। क्षणमात्र मस्थित शान्त बैठा रहा। उसने राज्योचित प्रचुर दान द्वारा उस दिन को सुदिन करते हुए, वहीं व्यतीत किया।

दूसरे दिन मन्त्रियों ने नगर प्रवेश मुहूर्त निश्चय किया। राजा ने नगर प्रवेश के पूर्व अद्भुत भेंटों के साथ राज्यदाता विक्रमादित्य के पास दूत भेजा। उसे उपायन भेजने पर लज्जा अनुभव हुई। देश की समृद्धि के अनुसार उसे स्वामी विक्रमादित्य की स्पर्धा तुल्य समझकर मातृगुप्त मन ही मन व्रीडा भार से दब गया। उसका मन उसे अपराधी कहने लगा।

उसने प्रभु विक्रमादित्य के पास अन्य दूतों को स्वल्प मूल्यों के उपायन अपनी अति लघुता प्रकट करने के व्याज से भेजा। राजा विक्रमादित्य स्मरण रखें। प्रभु योग्य सेवा को मातृगुप्त ने विस्मृत नहीं किया है।

विक्रमादित्य के असामान्य गुणों का स्मरण करते हुए, उसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। उसने कभी जीवन में कल्पना नहीं की थी। राजा बन सकता था। वह विक्रमादित्य के महान्, उदात्त, विशाल, सहृदयता, आत्मश्लाघा, हीनता, का स्मरण कर स्वयं अपना इतना लघु मूल्यांकन करता था कि उसका कवि हृदय भर उठता था। वह भावातिरेक में मुग्ध तुल्य बैठा रह जाता था। उसने भृत्यों के हाथ स्वयं अपने हाथों से लिखकर निम्नलिखित श्लोक भेजा

"हे ! राजन् !! आप अपना आकार नहीं बदलते। आत्मश्लाघा नहीं करते। दान करने की इच्छा बिना प्रकट किये, फल प्रदान करते हैं। जलद के निःशब्द वर्षण तुल्य फलित ही आपकी कृपा दृष्टिगोचर होती है।"

> नाकारमुद्वहसि नैव विकत्थसे त्वं दित्सां न सूचयसि
> मुञ्चसि सत्फलानि।
> निःशब्दवर्षणमिवाम्बुधरस्य राजन् सन्दृश्यते
> फलित एव तव प्रसादः ॥रा० ३ २५२॥

तदनन्तर दिग्तट आच्छादित करने वाले काश्मीर सैनिकों के साथ मातृगुप्त ने शुभमुहूर्त में नगर प्रवेश किया। राजा को देखने के लिए समस्त श्रीनगर राजपथ पर उमड़ आया था। वितस्ता पुलिन सुसज्जित नावों से भर गयी थी। नावों पर रंग-बिरंगी पताकाएं, अपने ग्रामों, नगरों तथा कुलों का चिह्न प्रकट करती फहरा रही थी। उन पर बैठे नर-नारी ढोल तथा बांसुरी पर गा रहे थे। नावें

एक-दूसरे से टकराती थीं। थिरकती थीं। राज शोभा यात्रा दर्शन हेतु तट की ओर दौड़ती थी। उस दौड़ में नाविकों के कोलाहल से पुलिन गूंज गया। नावों से कूदकर नर-नारी सत्वर गति से शोभा-यात्रा देखने दौड़ पड़े। साथ के बालक माता-पिता की उंगली खींचते शोभा-यात्रा की ओर क्षणमात्र में चलकर पहुंच जाना चाहते थे।

रणवाद्य की गम्भीर ध्वनि में, राजपथ प्रतिध्वनित हो उठा था। सैनिकों के संयत प्रयाण में, उनके पद के एक साथ उठने और गिरने से राजपथ सामरिक पाद प्रतिध्वनि से निनादित हो उठा था।

राजा नवीन था। सेना उसके साथ थी। राजाप्रासाद शून्य था। तथापि किसी प्राणी ने राजा का प्रतिरोध करने का साहस नहीं किया। भारत सम्राट् विक्रमादित्य की आज्ञा की अवहेलना करने की किसी ने कल्पना नहीं की।

शोभा-यात्रा सुचारु, नियोजित रूप मे राज्यप्रासाद के प्रागण मे पहुंची। पंक्ति-बद्ध दण्डधरों ने राजा का अभिवादन किया। प्रतिहारियो ने जयनाद किया। परि-चायको ने पुष्प वर्षा की। गवाक्षो पर सुरुचिपूर्ण शृगार किये सुन्दर कामिनियों ने शंख ध्वनि की। शंख-ध्वनि होते ही कन्याओं ने मधुर मंगल गान गाया। ब्राह्मणो ने स्वस्ति वाचन किया।

राजा मातृगुप्त राजभवन द्वार पर आया। वहां मंगल घट लिये कन्याएं पुष्पों से सुसज्जित खड़ी थीं। मंगल घट पर उत्फुल्ल रक्तकमल गुच्छ थे। उन पर घृत दीपक जल रहे थे। कमल पंखुड़ियो की तोरण द्वार पर खड़ी रमणियों ने वर्षा की। सौभाग्यवती ललनाओ ने राजा की आरती उतारी। राजा ने उन्हें सत्कृत किया।

राजद्वार की देहली के अन्दर दक्षिण पद राजा रखते ही, तूर्यनाद हुआ। प्रांगण स्थित काश्मीरवाहिनी जयनाद कर उठी। तोरण द्वार पर रखे नगाड़े गड़गड़ा उठे। काश्मीर मण्डल ने समझा। शून्य राजभवन में जीवन ज्योति ने प्रवेश किया। उजड़ा राजभवन पुनः बस गया।

राजप्रासाद के आवृत गवाक्षों के पट खुल गए। उनमें काश्मीर की सुखद प्राण वायु ने पुनः प्रवेश किया। राजभवन में मानव प्राणियों ने पुनः प्रवेश किया। उसमें श्री ने पुनः प्रवेश किया। और उसमें प्रवेश किया एक कवि हृदय राजा ने।

रात्रि में प्रत्येक मन्दिर में शृंगार किए गये, विशेष आरतियों का आयोजन किया गया। राजभवन में चिरकाल के पश्चात् घृत दीप, सुगन्धित तैल दीप, जगमगा उठे। राजप्रासाद के अन्धकारमय प्रांगण में, हर्म्यों में मनहूस जुगनुओं का स्थान सुगन्धि दान करते धूप तथा प्रकाश पुंजों ने ले लिया प्रतीत होता था। नक्षत्रपूर्ण गगन भूतल पर उतर आया था।

गोपाद्रि शिखर स्थित ज्येष्ठेश्वर एवं हरि पर्वत स्थित शारिका शिखर पर

दीपमालिकाएं सज गयीं। सहस्रों दीप वितस्ता पुलिन की सरल धारा में प्रवाहित हो गए। महामंदिर की सूक्ष्म धारा में बालकों के हाथों से बने भूर्ज पत्र के पल्लवों की बनी नावों पर दीप प्रकाश दान करते उनके किनारों में प्रवाहित, उनके उल्लास, उनके उमंग की कहानी सुनाने वितस्ता संगम की ओर चल पड़े।

प्रत्येक जलाशय में प्रज्वलित दीप लहरियों के साथ थिरकते थे। उत्साहित थे। वितस्ता की शान्त धारा, सुरेश्वरी सर का शान्त जल स्तर दीपमालिका से ज्योतिर्मय हो गया। नक्षत्र ऊपर आकाश में टिमटिमा रहे थे। नीचे काश्मीर की पवित्र भूमि, पवित्र जलाशय दीप ज्योति में टिमटिमाने लगी।

राजभवन के दोनों पार्श्वों में गोपाद्रि तथा शारिका शिखर पर होती आर-तियों की दिव्य वाद्य ध्वनियां, देवों को संदेश पहुंचाने चलीं। काश्मीर ने नवीन राजा पाया था। काश्मीर पर भारत सम्राट् विक्रमादित्य की महती कृपा हुई थी।

राजा मातृगुप्त परंपरा प्राप्त तुल्य पृथ्वी का यथावत् परिपालन करने लगा। काश्मीर उपत्यका राजप्रासाद के तोरण द्वार पर बजने, घण्टों से प्रहरों के समय का ज्ञान कराने लगी। तोरण द्वार पर समय-समय पर तूर्यनाद के कारण राजा की गतिविधि जनता जानने लगीं, राजा का किस समय, राजप्रसाद से वहिर्गमन तथा प्रवेश होता था, राजसभा में कब प्रवेश करता था, खाता था, किस समय पूजा पर बैठता था, शयन करता था।

राजा मातृगुप्त त्याग किंवा पौरुष में भी औचित्य से उन्नतात्मा था। वह, याचक के तुल्य परिमित आकांक्षी नहीं हुआ। राजा ने प्रचुर दक्षिणा वाले यज्ञ के लिए उद्योग किया। किन्तु पशु वध का ध्यान कर करुणार्द्र हो गया। उसने समस्त राज्य में अहिंसा का आदेश प्रसारित किया।

वह स्वर्ण चूर्ण ब्राह्मणों को दान देता था। वह करम्भक द्वारा द्विजों की क्षुधा तृप्त करता था। उसके करम्भक अर्थात् खिचड़ी के मुक्त दान में काश्मीर मण्डल में कोई क्षुधापीड़ित दिखायी नहीं देता था। राजा के करम्भक प्रदान द्वारा सन्तुष्ट हो, किसी ने वितृष्णा नहीं प्राप्त की। गुणी स्पष्टदर्शी, वदान्य, वह नृपति शुभार्थियों के लिए विक्रमादित्य से भी अधिक अभिगम्य था। उस राजा की श्लाघ्य विवेकशीलता से सुरभित लक्ष्मी विलास, मनीषियों से सुशोभित हुई थी।

"राजन्! यह मेण्ठ कवि है।"

महामात्य ने राजा के सम्मुख हयग्रीव वध काव्य लेकर महाकवि मेण्ठ को उपस्थित किया। राजा ने कवि के अभिवादन का प्रत्युत्तर अपनी पवित्र मुसकान के साथ, विनत होते दिया। राजा ने जिज्ञासा की

"कवि ! क्या काव्य-रचना की है ?"

"राजन् ! हयग्रीव वध।"

"साधु कवि ! क्या आप उसका पाठ कर सकते है ?"

"निस्संकोच पृथ्वीपाल ! आगमन का यही उद्देश्य है।"

"सुनाइये !" राजा ने कवि के मुख पर उत्कण्ठित दृष्टि डालते हुए कहा।

कवि मेण्ठ ने महाकाव्य पाठ आरम्भ किया। सरस पदावली ने राजसभा में काव्य रस पीयूष वर्षा की। काव्य की अभिनव शैली में सभा मुग्ध हो गयी। साधु के रव से सभा गूँज उठी। सभी के मुख से प्रशंसक वाणी मुखरित हुई।

किन्तु राजा शान्त बैठा था। कवि हृदय राजा ने महाकाव्य पाठन पर्यन्त न तो साधुवाद किया और न असाधु। निर्विकार भाव से काव्य का श्रवण किया। राजा के मुख से किसी प्रकार की वाणी मुखरित न होते देखकर, महाकवि मेण्ठ विस्मित हुआ। उसके साथ चकित हुई राज-सभा।

निराश महाकवि हयग्रीव वध काव्य को समेट रहा था। राजा ने पुस्तक के नीचे स्वर्ण पात्र लावण्य परिगलन भय से रख दिया। राजा की अद्भुत गुणग्राहकता, उसकी अन्तरंज्ञता से सत्कृत होकर, कवि भर्ति मेण्ठ ने लक्ष्मी का प्रदान पुनरुक्त माना।

राजा कवियों और साहित्यिकों का सर्वदा समादर करता था। उसकी राज्य-सभा राजा विक्रमादित्य के समान कवियों के, गुणज्ञों के, ललित कलाप्रेमियों के आकर्षण की केन्द्र हो गयी थी।

राजा ने मातृगुप्त स्वामी नामक मधुसूदन मन्दिर का निर्माण कराया। मन्दिर की नित्य पूजादि के लिए उस पर ग्रामों को चढ़ाया। उन ग्रामों को कालान्तर में मम्म ने अपने निर्मित मन्दिर के लिए ले लिया था। राजा ने इस प्रकार राज्य प्राप्त कर, पृथ्वी का शासन किया। उसने तीन मास एक दिवस कम पांच वर्ष पृथ्वी का उपभोग किया।

आंजनेय प्रवरसेन अपने पिता तोरमाण की मृत्यु के पश्चात् तीर्थ जलों द्वारा पित्रों को कृतकृत्य करता तीर्थयात्रा कर रहा था। वह काश्मीर मण्डल से बाहर था।

"स्वदेश पर आक्रमण हुआ है।" प्रवरसेन ने तीर्थयात्रा काल में कहीं सुना।

समाचार सुनते ही उसकी मुद्रा उग्र हो गयी। क्रोधित हो गया। उसकी पितृशोकार्दिता क्रोध द्वारा उसी प्रकार अन्तर्हित हो गयी, जैसे रवि ताप से तरु की रात्रिकालीन जल कणार्द्रिता।

प्रवरसेन श्री पर्वत पर था। वहां उसे पाशुपत व्रती वंश अश्वपाद नाम के

सिद्ध का दर्शन हुआ। उस सिद्ध ने प्रवरसेन को कन्द भोजन देते हुए कहा

"जन्मान्तर में तुम मेरे उपरिसाधक थे। उस समय मैंने सिद्धि प्राप्त की था। मैंने तुम्हारी अभिलाषा की जिज्ञासा की थी।"

अश्वपाद ने प्रवरसेन की ओर देखा। प्रवरसेन अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त ध्यानपूर्वक सुन रहा था। उसने पूछा

"गुरो! उस समय मैंने क्या अभिलाषा व्यक्त की?"

"तुमने राज्य की अभिलाषा प्रकट की थी।"

"गुरो! पुनः क्या हुआ?"

"सुनो! मैं तुम्हारे मनोरथ की सिद्धि हेतु प्रयत्नशील था। उस समय क्षपा-रमण शेखर ने यह दीक्षा दी—तुम्हारा उपरिसाधक मेरा सिद्धगण है। जन्मान्तर में इसको राज्य-प्राप्ति की इच्छा थी।"

"देव! कल्याण स्वरूप शिव ने क्या कहा?"

"भगवान् ने कहा—'मैं इसे पूर्ण करूँगा।'"

प्रवरसेन गम्भीर हो गया। अश्वपाद प्रवरसेन की गम्भीर मुद्रा देखकर सस्मित बोले

"भगवान् शिव दर्शन देकर तुम्हारा मनोरथ सफल करेंगे।"

सिद्ध का वाक्य समाप्त भी नहीं हुआ था, वे तिरोहित हो गये। प्रवरसेन अकस्मात यह चमत्कार देखकर चकित हो गया। उसने सिद्ध प्रदत्त कन्द तरु छाया में बैठकर खाया।

श्री पर्वत पर प्रवरसेन ने एक वर्ष घोर तपस्या की। साम्राज्याकांक्षी प्रवर-सेन को सिद्ध वाणी द्वारा स्मरण प्राप्त कर व्रती वेशधारी ने उसे दर्शन दिया।

याज्ञिक अर्घ समर्पण के लिए कहने वाले उस व्रती वेशधारी शिव से प्रवरसेन ने जगत् जय से जागरूक नरेन्द्रता की याचना की। व्रती वेशधारी शम्भु ने प्रश्न किया

"राजन्! मोक्ष की उपेक्षा कर क्षणभंगुर भोगों की क्यों इच्छा करते हैं?"

"ओह! मैंने आपको तपस्वी वेशधारी शम्भु जानकर याचना की थी।"

"तो?"

"निश्चय ही वह जगद्गुरु देव आप नहीं हैं।"

"क्या राजन!" शम्भु ने सस्मित राजा की ओर देखते हुए प्रश्न किया।

"व्रती!" राजा ने आवेश में कहा, "स्वल्प प्रार्थित महान् जन स्वयं अधिक फल प्रदान करते हैं। उस दयालु ने पय प्रार्थी उपमन्यु को क्षीर सागर दिया था।"

शम्भु प्रवरसेन की क्षुभित मुद्रा देखकर किंचित् हँस दिये। प्रवरसेन ने शम्भु की ओर देखते हुए कहा

"कैवल्य-प्राप्ति से भी अशान्त चित्त वाले मेरे कुल के मर्म व्यथा को क्या आप नहीं जानते ?"

"एवमस्तु !" शम्भु ने अभय मुद्रा प्रदर्शित करते हुए वर दिया। शिव ने व्रती वेश त्याग दिया। प्रवरसेन शम्भु के चरणों पर गिर पड़ा। अत्यन्त प्रसन्न जगन्नायक शरीर धारण कर बोले :

"अश्वपाद मेरी आज्ञा से समय पर राजसुखों में निमग्न, तुम्हें सायुज्ज-प्राप्ति का सन्देश वाहिका-संज्ञा प्रदान करेगा।"

कहते-कहते शम्भु अन्तर्हित हो गये। प्रवरसेन प्रसन्न मुद्रा में उठा। व्रत का पारण किया। अश्वपाद की सेवा में उपस्थित हुआ। उनसे आज्ञा प्राप्त किया। अभिमत भूमि की ओर प्रस्थान किया।

काश्मीर मण्डल का सब वृत्तान्त उसने सुना। युद्ध आकांक्षा से उसके समीप आये हुए अमात्यों को निवारित कर बोला :

"अमात्यो ! मेरा मन गर्वीले विक्रमादित्य के उच्छेद के लिए प्रयत्नशील है।"

"और मातृगुप्त ?" अमात्यों ने सहसा पूछा।

"किन्तु मातृगुप्त के प्रति क्रोध से मेरा मन रूक्ष नहीं है।" प्रवरसेन ने पुनः कहा, "क्लेश न सह सकने वाले एवं निष्पिष्ट शत्रुओं के उन्मूलन में क्या रखा है ? जो अपने उन्मूलन में समर्थ हैं उन्हीं में विजयेच्छा शोभित होती है।"

"जो कमल चन्द्रोदय द्वेषी है, उनसे बढ़कर शत्रु दूसरा कौन है ? उनका निमथन करने वाला करीन्द्र के दन्त का दलन जो चन्द्र करता है, इसमें कौन-सा आश्चर्य है ? उन्नत जन सामर्थ्य प्रख्यात करने के लिए असम जनों के साथ स्पर्धा त्यागकर, जो उनमें समर्थ हैं, वही हैं वहां उग्र क्रोध का प्रदर्शन करते हैं।"

"राजन् !" अमात्यों ने कहा, "हम विक्रमादित्य पर आक्रमण करने के लिए उद्यत हैं।"

"साधु ! अमात्यगण, साधु।"

राजा प्रवरसेन ने मातृगुप्त पर आक्रमण नहीं किया। उसे उसने जीता हुआ समझा। भारत सम्राट् विक्रमादित्य पर आक्रमणार्थ ससैन्य प्रस्थान किया।

उसने मार्गस्थ त्रिगर्त देश पर विजय प्राप्त की। दक्षिण दिशा की ओर सेना का अभियान किया। परन्तु कुछ दूर जाने पर उसने सुना—"सम्राट् विक्रमादित्य दिवंगत हो गये।"

विक्रमादित्य को प्रवरसेन ने शत्रु माना था। किन्तु इतने महान् व्यक्तित्व-शाली शत्रु के निधन से वह अत्यन्त दुःखी हुआ। उस दिन राजा ने शोक से

निश्वास लेते हुए स्नान, भोजन एव शयन भी नही किया।

राजा प्रातःकाल उठा। बाहर निकलते ही उसने सुना—"मातृगुप्त काश्मीर की पवित्र भूमि त्यागकर, यहा से बहुत दूर पर स्थित नही है।"

राजा प्रवरसेन आश्चर्यित हुआ। उसे कौतूहल हुआ। अनायास राज्य त्यागकर मातृगुप्त उसके शिविर के इतने समीप क्या आ गया था?

राजा शकित नही हुआ। उसको इसकी आशका नही हुई कि मातृगुप्त उस पर आक्रमण करने के लिए आया था। किन्तु उसे यह शका हुई। उसके किसी पक्षपाती मित्र ने कही उसे काश्मीर से निर्वासित तो नही कर दिया था। इस शका से प्रेरित होकर, प्रवरसेन परिमित जनों के साथ मातृगुप्त के पास गया।

मातृगुप्त स्वस्थ, शान्त था। राज्य त्याग का लेशमात्र उसे दुःख नही था। प्रवरसेन ने विनयावनत सुखपूर्वक बैठे मातृगुप्त को देखा। उसके प्रति आकर्षण अनायास उत्पन्न हो गया। मातृगुप्त की सौम्य मुद्रा ने उसे प्रभावित किया। सादर उसे नमस्कार किया।

प्रत्युत्थान कर मातृगुप्त ने स्वागत किया। प्रसन्न हुआ। परिचय पाकर उसने चिन्तामणि पाया। उसे जैसे खोज ही रहा था। भगवान् का भेजा उसे प्रसाद समझा। वह काश्मीर मण्डल प्रवरसेन को देने के लिए सन्नद्ध हो गया। उसके मन में किंचित् मात्र ईर्ष्या-द्वेष की भावना नही हुई। प्रवरसेन काश्मीर मण्डल का राज्याकाक्षी था, यह भावना भी मन मे न आ रही थी। उसे सिंहासन से च्युत कर स्वय राजा बनने की प्रबल इच्छा रखता था। यह भी चिन्तन नही किया।

प्रवरसेन राजा मातृगुप्त को देखते ही प्रसन्न हो गया। उसकी अन्तरात्मा कह उठी, मातृगुप्त बहुत ऊचा व्यक्ति था। वह जगत् स्तर मे बहुत ऊचाई पर था। उसके मन मे मातृगुप्त के प्रति द्वेष किंवा शत्रु भावना पूर्व मे नही थी। यदि कुछ थी भी तो वह तिरोहित हो गयी। प्रवरसेन ने कुशल-मगल के पश्चात् मृदु स्वर से पूछा

"नृपवर! आपके राज-त्याग कारण का क्या मैं जिज्ञासु हो सकता हू?"

मातृगुप्त प्रवरसेन की जिज्ञासा सुनकर किंचित् मुसकराया। कुछ क्षण स्थित होकर लम्बा श्वास लिया। अनन्तर सस्मित उत्तर दिया

"हे! राजन्!! जिसके द्वारा मैं राजा था। वह सुकृती गत हो गया।"

प्रवरसेन ने मातृगुप्त का आशय समझा। उसने महापराक्रमी विक्रमादित्य का स्मरण किया। मातृगुप्त ने पुनः कहा

"जिस समय तक मूर्धा पर सूर्य की किरणें रहती हैं, उस समय तक

सूर्यकान्तिमणि दिशाओं को ज्योतिर्मय करती है। अन्यथा वह मणि पत्थर मात्र हो जाती है।"

"राजन् !" प्रवरसेन ने कहा, "आपका किसने अपकार किया है ? जिसके प्रतिकार करने की इच्छा से उस स्वामी के लिए आप शोक करते है ?"

"मान्य !" क्षितिधर मातृगुप्त बोला, "कोई भी प्रबल बलशाली हमारा अपकार करने मे समर्थ नही है।"

प्रवरसेन किंचित् लज्जित हो गया। मातृगुप्त ने कहा :

"अन्तरज्ञ राजा विक्रमादित्य ने मुझे काश्मीर का अधिपति बनाकर, निश्चय ही भस्म में घृत की आहुति एवं ऊसर मे बीज वपन नही किया था।"

प्रवरसेन ने उत्तर देने की अपेक्षा भावापन्न मातृगुप्त की बात सुनना अधिक उचित समझा। उसने उत्सुकतापूर्वक और सुनने की मुद्रा प्रदर्शित की।

"सुहृदवर !" मातृगुप्त ने कहा, "कृतज्ञता से वशंवद, उपकार स्मरण कर्त्ता, निश्चेतन भी उपकारियो का अनुसरण करता है।"

"राजन् !" मातृगुप्त ने सूर्य की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा : "सूर्यकान्त-मणि सूर्य के निर्वाण के पश्चात् शान्त हो जाती है। और इन्दुमणि इन्दु के क्षीण होने पर शुष्क हो जाती है।"

"और अब !" प्रवरसेन ने नत दृष्टि होते जिज्ञासा की।

"मैं" मातृगुप्त ने प्रसन्न मुद्रा एवं शुद्ध वाणी में कहा, "शान्ति का इच्छुक हूं। पुण्य नगरी वाराणसी जाकर, द्विज जनोचित, सर्वत्याग करना चाहता हूं।"

प्रवरसेन सहित वहाँ उपस्थित राजा के परिकर मातृगुप्त का अपूर्व त्याग सुनकर, नीरव हो गए। उनकी दृष्टि श्रद्धाभक्ति से नत हो गयी। उनकी वह सरल सद्भावनापूर्ण मुद्रा देखकर मातृगुप्त ने कहा :

"मणिदीप तुल्य, उस स्वामी विक्रमादित्य के बिना, अन्धकारपूर्ण पृथ्वी को अवलोकन करने में भी, भयभीत होता हू। फिर भोग-योग की क्या बात है ?"

मातृगुप्त की औचित्य विधान की वाणी सुनकर विस्मित धीर प्रवरसेन ने उचित वचनो से उत्तर दिया :

"हे ! राजन् !! सत्य ही यह विश्वम्भरा देवी रत्नप्रसूता है। वह आप तुल्य कृतज्ञों एवं धार्मिकों की उत्पत्ति से ज्योतिर्मय होता है।"

मातृगुप्त अपनी स्तुति सुनकर अन्यमनस्क हो गया। प्रवरसेन ने पुनः कहा : "इस पृथ्वी पर राजा विक्रमादित्य से अधिक अन्तरज्ञता के कारण और कौन श्लाघ्य हो सकता है ? जिसने इस जड़ संसार मे आपका वास्तविक रूप पहचाना था।"

"हे ! धीर !!" प्रवरसेन ने मातृगुप्त को सम्बोधित किया, "कृतज्ञता की वीथियां पूर्वकाल से ही निस्सार हो जाती यदि आप शीघ्र ही संचार न करते।"

"राजन् !" प्रवरसेन ने किंचित् ठहरकर कहा, "दूसरे से उपकृत अधम पुरुष प्राय अन्त करण म इस प्रकार सोचता है 'आज मेरे शुभ का परिपाक हुआ है। अन्यथा पूर्वकाल मे ही इसने क्यो नही प्रदान किया ? यदि मुझमें इसका स्वार्थ नही है तो क्यो न अपने दीन बन्धुओ को उपकृत करता ? छिद्र दृष्टि मेरे द्वारा यदि इसे भय न होता तो क्या यह लोभी मुझे कुछ प्रदान करने का प्रयास करता' ?"

मातृगुप्त तत्त्वमय प्रवरसेन की बातें ध्यानपूर्वक सुनने लगा। प्रवरसेन ने पुन कहा

"राजन् ! पुण्यशीलो द्वारा अत्युदात्त गुणशालो पर प्रारोपित की गयी यावन्मात्र भी सत्क्रिया शत शाखाओ वाली हो ही जाती है। वास्तव मे तत्त्वज्ञो द्वारा अभिनन्दित गुणवानो मे अग्रणी एव स्पष्ट ही सज्जनो द्वारा बहुमान्य आप परीक्षित मणि तुल्य हैं।"

मातृगुप्त ने अपनी प्रशसा सुनकर प्रसन्नता का बोध नही किया। प्रवरसेन ने कहा

"अतएव राजन् ! आप हमे अनुग्रहीत कीजिए। मेरी भी गुणवत्पक्षपातिता जगत् मे प्रख्यात हो। प्रारम्भ मे विक्रमादित्य एव अन्त मे मेरे द्वारा भी प्रतिपादित काश्मीर भूमि को पुन आप ग्रहण कीजिए।"

निष्कारण उदारतापूर्ण आचरणयुक्त प्रवरसेन की बात सुनकर, मन्द स्मित मातृगुप्त शनै -शनै बोला

"श्रेष्ठवर ! जिन अक्षरो को बिना कहे अभिप्राय व्यक्त नही होता, उसे प्रकट करने मे मर्यादा उल्लघन के अतिरिक्त और कौन गति है ?"

"नरपुगव !" मातृगुप्त ने गम्भीर स्वर मे कहा, "अतएव आज मैं कुछ परुष शब्द कहता हू। यद्यपि मेरे इस कथन मे निष्कारण सरलतामयी भद्रता तिरस्कृत हो रही है।"

"राजन् ! निस्सकोच कहिए।" प्रवरसेन ने मातृगुप्त को प्रोत्साहित करते हुए कहा।

"भद्र !" मातृगुप्त ने कहा, "पूर्व स्थितियो मे सब लोग सभी लोगो के लाघव का स्मरण करते हैं। किन्तु वर्तमान क्षण मे माहात्म्य को आदमी हो जाता है। मेरी पूर्वावस्था आपके और आपकी मेरे हृदय म है। उनसे विमोहित हम दोनो एक दूसरे का आशय नही जानते हैं।"

"किन्तु राजन् !"

"सुनिए !" मातृगुप्त ने कहा, "राजा होकर मुझ सदृश जन सम्पत्तियो किस प्रकार ग्रहण करेगा ? सब औचित्यो को सहसा कर्म परिमार्जित कर दिया जायगा ? विक्रमादित्य के असाधारण औदार्य गौरव को भोग मात्र के लिए क्या

साधारण कर दूं ?"

प्रवरसेन मातृगुप्त की वाणी से अत्यन्त प्रभावित हो गया था। वह निर्निमेष दृष्टि मातृगुप्त की ओर देखने लगा। मातृगुप्त ने नत दृष्टि भूमि पर पड़े एक तिनके को उठाते हुए कहा :

"हे नृपति !! यदि मैं भोगों के लिए इच्छा करूं तो मेरे स्वाभिमान के रहते भोगो को कौन रोक सकता है ? राजा विक्रमादित्य ने मेरा जो उपकार किया है, बिना प्रत्युपकार के निश्चय है कि, अब मेरे अगों में ही वह जीर्ण हो जायगा।"

"प्रवरसेन !" मातृगुप्त ने तिनका फेंकते हुए कहा, "राजा विक्रमादित्य का जो आचरण था, उनका अनुसरणकर्ता मुझे पात्रापात्र विवेकशीलता की ख्याति प्रकाश मे लानी चाहिए। इतना ही कर्त्तव्य कर उनके दिवंगत हो जाने पर अब भोग मात्र के परित्याग से अपनी सत्य साधना सिद्ध करूंगा।"

मातृगुप्त के मुखमण्डल पर विरक्ति भाव झलक उठा। वह तुष्णीभू गगन की ओर जैसे राजा विक्रमादित्य का पवित्र दर्शन करने के लिए देखने लगा। जगतीपति प्रवरसेन ने विरक्त मातृगुप्त से कहा :

"राजन्! आपके जीवित रहते मैं आपकी सम्पत्तियो का स्पर्श नहीं करूंगा।"

मातृगुप्त की आश्चर्यित दृष्टि प्रवरसेन की ओर उठ गयी। प्रवरसेन के अपूर्व त्याग-भार से दब गया। किन्तु सयत वाणी से बोला :

"पितृवर ! मैं वाराणसी जाऊँगा। सर्व त्याग करूंगा। काशाय वस्त्र धारण करूंगा। यती हूंगा।"

"महात्मन् !" प्रवरसेन ने कहा, "आप जैसे महान् पुरुष के कारण, यह मही वास्तव मे नरप्रसूता कही जाती है।"

प्रवरसेन ने मातृगुप्त को शिरसा प्रणाम किया। मातृगुप्त की आंखें सहसा भर आयी।

मातृगुप्त ने दूसरे दिन काशी के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में यतियों, तपस्वियों के सत्संग का लाभ उठाता रहा। उत्तरवाहिनी जाह्नवी के तट पर, वाराणसी पहुंचा। वहा आनन्दकानन में विहरते, मातृगुप्त ने संन्यास लिया। यती हो गया। प्रातः-सायं गंगा-तट पर सन्ध्योपासना करता। दार्शनिकों के कुंजो मे दर्शनों का अर्थ समझता। योग स्थलों मे योग-चमत्कार तथा सिद्धियो का दर्शन करता। रात्रि काल मे पुण्य सलिला जाह्नवी उपकूल में आकाश दीप के मन्द प्रकाश में किसी भक्त के शुद्ध भावुक कण्ठ से निकले भक्ति-संगीत का रस लेता। कभी यज्ञ स्थली में जाकर सांगोपांग यज्ञ देखता। उनमें हवि डालता। कभी काशी विश्वनाथ मन्दिर मे बैठकर आरती की वन्दना में अपनी श्रद्धा-भक्ति

मयी वाणी उडेलता। उसका साधु जीवन परम धार्मिक था। वह जगत् प्रपचों से दूर, विरक्त, ईश्वर-भजन, मनन एव स्वाध्याय मे समय व्यतीत करने लगा।

राजा प्रवरसेन दृढनिश्चयी था। काश्मीर मडल की सम्पूर्ण काश्मीरोत्पत्ति अर्थात् लाभ मातृगुप्त को नियमित रूप से भेजता रहा।

भिक्षुक मातृगुप्त हर्षपूर्वक आगत लक्ष्मी सवप्रार्थियों को दान करता था। उस सम्पत्ति मे से स्वय कुछ नही लेता था। अपना जीवन निर्वाह मधुकरी माग कर करता था। मठ मे, आश्रम मे, समयानुसार आश्रय लेता था। वाराणसी उसकी महाख्याति से गज उठी। राजा विक्रमादित्य की कीर्तिलता, अपने कथानको, रचनाओं एव सवादों से मुकुलित करता रहा।

राजा मातृगुप्त ने दस वर्ष तक काशी मे प्राण धारण किया। वह जब तक जीवित था, काश्मीरेन्द्र प्रवरसेन काश्मीरोत्पत्ति नियमित रूप से वाराणसी भेजता रहा। मातृगुप्त उसमे से एक पैसा बिना लिए सब दान कर देता था।

परस्पर स्वाभिमानी, औचित्यशाली, विक्रमादित्य, मातृगुप्त एव प्रवरसेन का यह वृत्तान्त त्रिपथगा जल है। वे वन्द्य हैं। वे काश्मीर की, भारत की, पुण्यात्मा है। उनका स्मरण मात्र निस्सदेह पावन करने मे सहायक होगा।

आधार ग्रन्थ राजतरगिणी ३ १२५-३२३

प्रवरसेन द्वितीय

मातृगुप्त के पश्चात् राजा प्रवरसेन द्वितीय काश्मीर मण्डल का राजा हुआ। वह प्रतिभाशाली था। अध्यात्मप्रिय था। प्रारम्भ से ही जन-जीवन में था। सामाजिक जीवन में योगदान करता रहा। कष्टसाध्य जीवन, सामान्य प्राणियों की समस्या, उनका हल, उनकी कठिनाई, मानव-प्रकृति, जीवन का उत्थान-पतन, राग-द्वेष, ईर्ष्या, मात्सर्य, विभिन्न रुचियों-अरुचियों आदि का प्रत्यक्ष ज्ञान उसने कुलाली के अतिसामान्य गृह से राज्य-सिंहासन तक किया था। पर्यटन काल में उसने विविध प्रदेशों की वेश-भूषा, आचार-विचार रीति-रिवाज, परंपरा-रूढ़ियां तथा इतिहास का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। महापुरुषों, सन्तों, साधुओं, राजाओं के सम्पर्क में आ चुका था। उसने पर्यटन में इतना अनुभव तथा व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया था, जितना आजन्म पुस्तक पढ़ते रहने पर भी, प्राप्त न कर पाता। उसका यह अनुभव तथा ज्ञान, उसे यशस्वी राजा बनाने में सहायक हुआ।

बालकाल से ही दिग्विजय तथा सैनिक अभियानों के लिए उत्कण्ठित था। राजसूत्र ग्रहण करते ही कल्पना साकार करने का उसे अवसर मिल गया।

उसने सैनिक अभियानों द्वारा अवनीधरों को विनत करते हुए, अपने प्रवृद्ध यश द्वारा दिशाओं को बिना कष्ट लंघनीय बना दिया था। जिस प्रकार समुद्र यान एवं पर्वत लंघनकर्ता, कुम्भ योनि अगस्त्य जल निर्मल करते हैं, उसी प्रकार उदय होते, उसके प्रताप ने भुवनों को प्रसन्न किया था।

उसकी विशाल काश्मीर सेना ने समुद्र तट को शुष्क तमाल पत्रों तथा शीर्ण ताडिपत्रों से युक्त और शुष्क तिलक अरिपत्नियों के मुखों को शुष्क तिलक एवं गलित ताडकयुक्त बना दिया था। उसकी सेना के सहस्रशः मदशाली गजों के गण्डस्थल से प्रवाहित मद जल से गंगा से मिलती यमुना संगम की पूर्व समुद्र में अभूत पूर्व शोभा हुई थी।

उस महान् पराक्रमी राजा ने अपनी दिगन्त व्यापिनी सेनाओं द्वारा पश्चिम समुद्र तटवर्ती सौराष्ट्र निवासियों को उत्पाटित किया था। राष्ट्र ध्वंस किया था। यश.कांक्षी एवं द्वेष-रागरहित पृथ्वीन्द्र प्रवरसेन ने राजाओं पर धर्म-विजय किया था। उनके मनःस्तर को ऊपर उठाया था। उन्हें सर्वथा राजनीतिक स्तर से उठाकर, आध्यात्मिक स्तर पर रख दिया था।

उस अतुल बलधाम, काश्मीरेन्द्र राजा प्रवरसेन ने शत्रु निर्वासित विक्रमादित्यात्मज प्रतापशील अपर नाम शीलादित्य को, उसके पैतृक राजसिंहासन पर आसीन कराया था। काश्मीर राजवंश का सिंहासन काश्मीर से अपहृत होकर उज्जैन चला गया था, उसे विक्रमादित्य के नगर उज्जैन से पुनः गौरवशाली श्रीनगर उठा लाया। उस पर आसीन होकर उसने पूर्ववर्ती कीर्तिशाली राजाओं का अनुकरण किया था।

उस क्षमाशील राजा ने विविध हेतुओं को कहकर पराजय न मानने वाले अभारतीय राजा मुम्मिन को सात बार पराजित किया था। प्रत्येक बार पराजित करने पर भी, अपने बल-गर्व से अभिभूत मुम्मिन को सर्वदा मुक्त कर देता था। आठवीं बार पराजित होने पर, मुम्मिन धृष्टतापूर्वक, जब कोई कारण कहने के लिए, राजसभा में उद्यत हुआ, तो राजा बारम्बार पराजित होने पर भी अस्त्र उठाने के कारण मुम्मिन पर क्रोधित हो गया। राजा ने सक्रोध कहा "यह पशु धिक्कार का पात्र है। इसे बन्दी बना लो।"

पशु शब्द सम्बोधन सुनते ही मुम्मिन का भय तिरोहित हो गया। वह प्रसन्न हो गया। काश्मीर राज्य में पशु हिंसा वर्जित थी। वह बोल उठा

"ओ! वीर!! पशु होने के कारण मैं अवध्य हूं।"

राजा उसका तर्क सुनकर मुसकराया। उसकी चतुरता की मन ही मन प्रशंसा की। मुम्मिन राजसभा मध्य मयूरसदृश नाचने लगा।

राजा उसकी व्युत्पन्न मति पर पुनः प्रसन्न हो गया। राजा की प्रसन्नता देखकर मुम्मिन मयूर की वाणी बोलने लगा। राजसभा तन्मय होकर मुम्मिन का मयूर नृत्य देखने लगी। उसका नृत्य आकर्षक था। कलामय था। राजा और राजसभा राजा मुम्मिन के कलात्मक नृत्य से प्रसन्न हो गयी। राजा ने उसे अभय दान दिया। अभयदान प्राप्त करते ही उसने राजा प्रवरसेन के सम्मुख हाथ फैला दिया

"हाथ क्यों फैलाया है, मुम्मिन?"

"राजन्! मेरा पुरस्कार।"

"पुरस्कार क्यों?"

"आपने नृत्य देखा है।"

"अच्छा!"

"हां, आप जैसे दानी नृप से कैसे कोई नर्तक पुरस्काररहित हो सकेगा?"

"वाह•!" राजा हंस उठा।

"नृपश्रेष्ठ प्रवरसेन क्या मेरे परिश्रम का पारिश्रमिक नहीं देंगे?"

"मैंने पारिश्रमिक के लिए नहीं कहा था।"

"आपने मेरा नृत्य देखा है। रस लिया है। क्या यह सब मुफ्त "

मुम्मिन ने मुसकराते हुए सभासदों की ओर देखा। सभासद मुसकराने लगे। मुम्मिन ने हाथ पुनः फैलाते हुए कहा :

"पृथ्वीपते ! मैंने प्रजा का रंजन किया है।"

कहते-कहते मुम्मिन पुनः मयूर नृत्य करने लगा।

सस्मित राजा ने उसे नर्तकोचित द्रव्य प्रदान किया। मुम्मिन मुक्ति के साथ द्रव्य पाकर, अपनी सफलता पर प्रसन्न हो गया। और राजसभा हंस उठी उसकी विचक्षण बुद्धि पर।

दिशाओं को विजय कर, 'पितामह के नगर पुराविष्ठान में प्रवरसेन निवास करने लगा। नृप को स्वनामांकित पुर निर्माण करने की अभिलाषा हुई।

पार्थिवसूर्य वह वीर, एक बार क्षेत्र एवं दिव्य लग्न ज्ञान करने के लिए, रात्रि में वीर चर्या हेतु, निकला। गमनशील, उस नृपति के मुकुर रत्नों के अग्रभाग में प्रतिबिम्बित तारा समूह रक्षा हेतुसर्षप तुल्य शोभित हो रहे थे।

पर्यटनशील राजा सरिता तट पर पहुंचा। उसके प्रान्त भाग में श्मशान था। अनन्त चिताओं के प्रकाश द्वारा तटवर्ती द्रुम स्पष्ट बीभत्स लग रहे थे।

तदनन्तर, उस महौजस के सम्मुख सरिता पार से, ऊर्ध्वबाहु चीत्कार करता हुआ, एक महान् भूत प्रादुर्भूत हुआ। उस भूत के प्रज्वलित दृष्टिपातों से कपिशीकृत, नृपति उल्का ज्योतियों से अलंकृत कुलाद्रि तुल्य प्रदीप्त हुआ।

वह भूत भयंकर प्रतिध्वनि द्वारा दिशाओं को व्याप्त करता उच्चहास किया। राजा का धैर्य उसके कौतूहल का कारण बन गया। उसने प्रवरसेन की ओर एक बार चुभती दृष्टि से देखा। अनन्तर निर्भय दण्डायमान नृपति प्रवरसेन से बोला :

"भूपाल ! विक्रमादित्य, सत्वशाली शूद्रक एवं आपके अतिरिक्त अन्यत्र पर्याप्त धैर्य दुर्लभ हैं।"

राजा ध्यानपूर्वक भूत की बात सुन रहा था। भूत ने पुनः कहा :

"वसुधापते ! इस सेतु को ,पार कर मेरे समीप आइए। मैं आपकी वांछा सिद्ध करूंगा।"

"महामते !" राजा ने सौम्य वाणी से उत्तर दिया, "सेतु यहां कहां है ?"

"मैं सेतु प्रस्तुत करता हूं।" भूत ने उत्तर दिया।

राक्षस ने सरिता के उस पार से, जानु प्रसारित कर, महासरित का जल सेतु द्वारा विभक्त कर दिया। राक्षस शरीर से सेतु निर्मित हो गया। यह अद्भुत घटना देखकर राजा ने नग्न छुरिका धारण की। राजा ने छुरिका से राक्षस का मांस काट-काटकर सोपान मार्ग निर्मित किया। उसने स्वनिर्मित सोपान मार्ग द्वारा सरित पार किया। जिस स्थान पर पार किया था उस स्थान का नाम छुरिका बल पड़ गया। उसे आज छुदबल कहते हैं।

अपने पार्श्वस्थ स्थित राजा को उस भूत ने लग्न बताकर कहा

"प्रात मेरा सूत्रपात देखकर नगर निर्माण करो।"

वाक्य समाप्त होते-होते भूत तिरोहित हो गया।

प्रात काल राजा ने शारीटक ग्राम मे बैताल पातित सूत्र देखा। वह देवी शारिका एव यक्ष अट्टा स अधिष्ठित था। राजा ने भक्तिपूर्वक प्रवरेश्वर की प्रतिष्ठा का आयोजन किया।

प्रवरेश्वर प्रतिष्ठा के समय विचित्र घटना घटी। प्रतिष्ठा के समय जयस्वामी स्वय यन्त्रभेदन कर पीठ पर आसीन हो गये। नृपति ने बेताल कथित लग्नवेला स्थापित 'जय' के नाम पर उस मन्दिर को अपने नाम के स्थान पर जयस्वामी नाम से प्रख्यात किया।

उस नगर की शोभा तथा उसे मगलप्रद बनाने के लिए, राजा की भक्ति के कारण, नगराभिमुख हेतु, सारिका पर्वत स्थित पश्चिमाभिमुख विनायक भीम स्वामी, स्वय पूर्वाभिमुख हो गये। उस पचजनेन्द्र राजा प्रवरसेन ने श्री चन्द्र लाछित सद्भावश्री आदि पचश्री देवियों को नगर मे स्थापित किया। वे देविया महाश्री कालीश्री, सद्भवश्री, लौकिश्री आदि थी।

उस भूपाल ने वितस्ता नदी पर वृहद सेतु का निर्माण कराया। नावो का पाट कर नाविका पुल बनाने की शैली, काश्मीर म उस समय मे प्रारम्भ हुई।

राजा ने मातुल जयेन्द्र का आदर किया। उसका सत्कार किया। जयेन्द्र ने अपने नाम से जयेन्द्र विहार, श्रीनगर मे स्थापित किया। विहार मे उसने वृहद् बुद्ध की स्थापना की।

राजा के सचिव मोराक ने भुवन मे अद्भुत 'मोराक भवन' निर्माण कराया। मोराक सचिव ने सिहलादि द्वीपो का भ्रमण तथा भोग किया था।

पूर्व समय यह ख्याति जगत् मे व्याप्त थी। श्रीनगर मे छत्तीस लाख गृह थे। उसकी सीमा पर वर्धन स्वामी तथा विश्वकर्मा के मन्दिर थे। तथापि वितस्ता नदी के वाम तट पर राजा ने सुविख्यात बाजारो से युक्त नवीन नगर निर्माण कराया।

उस नगर मे गगनचुम्बी भवन थे। राजप्रासाद थे। उस राजप्रासाद की उत्तुग अट्टालिका पर आरूढ होकर निदाघ के अन्त मे वर्षा वृष्टि स्निग्ध एव चैत्र मास मे विकसित कुसुम पूर्ण जगत् देखा जाता था।

इस पृथ्वी पर उस नगर के अतिरिक्त और कहा क्रीडा-गृह पर्वतो के तट पर स्थित थे? पवित्र एव सुन्दर नहरें और कहा सुलभ हो सकती थी? विश्व मे कही भी ऐसा नगर नही देखा गया, जिसके मध्य क्रीडायुक्त पर्वत थे जहा से सब गृहो की शोभा देखी जा सकती थी। नगर के निवासी ग्रीष्म ऋतु के उस तापमय दिनो मे अपने गृहो के सम्मुख प्रवाहित, तुहिन खण्डमय, वितस्ता वारि

प्राप्त करते थे। इतना मधुर, निर्मल, शीतल जल इस जगत् में और कहां प्राप्य हो सकता था ?

इस महान् नगरी में राजा ने राजकोश से इतना धन मन्दिरों पर व्यय किया और लगाया था कि, उतने धन से सहस्र बार सागरवेष्टित पृथ्वी क्रय की जा सकती थी। उस प्रजासृज राजा प्रवरसेन को साम्राज्य लाभ किये, उस नगर में धीरे-धीरे साठ वर्ष व्यतीत हो गये। उसके शूल मुद्रांकित ललाट पर जरा के कारण श्वेत केश शिव के भ्रम से आलिंगित गंगाजल की शोभा धारण करते थे।

समय आया। जिस देव के कारण राजा को पूर्व जन्म की इच्छानुसार राज्य मिला था, उसी काल स्वरूप देव ने राजा के महा प्रस्थान के काल का संकेत, भगवान् रामचन्द्र के महाप्रस्थान काल के समान देने का निश्चय किया। राजा को जो कुछ करना था सब-कुछ कर चुका था। उसके प्रयाण काल का समय आ गया था। उसे इस जगत् में कुछ और करना बाकी नहीं था।

श्रीपर्वत पर ईशान ने अश्वपाद को निर्देश किया। अश्वपाद ने राजा को सूचित करने का निश्चय किया। तत्क्षण वहां आगत, एक काश्मीरी जयन्त नामक विप्र को कार्य सम्पादन हेतु अश्वपाद ने उपयुक्त समझा। अश्वपाद ने विप्र से कहा :

"पथिक ! तुम श्रान्त हो। अन्य देश मे तुम्हारा अभिमत होना सम्भव नही है।"

"महात्मन् ! आज्ञा ?"

पथिक जयेन्द्र ने दिव्य प्रभा भासुर अश्वपाद से निवेदन किया। अश्वपाद ने मृदु स्वर में कहा :

"मैं लेख देता हूं। तुम इसे काश्मीर राजा प्रवरसेन को ले जाकर दिखाओ।"

"महात्मन् ! मैं यात्रा से श्रान्त हूं। सद्यः अधिक मार्ग गमन में असमर्थ हूं। काश्मीर यहां से सहस्रों कोस दूर है।"

सुदूर काश्मीर की लम्बी यात्रा का स्मरण कर जयेन्द्र ने साहस खो दिया था।

"ठीक है। तुम यह लेख लो।"

"मैं इसे लेकर इस समय क्या करूंगा ?"

"रखे रहना।"

"अच्छा," जयन्त ने लेख की ओर उत्सुकतापूर्वक देखते हुए कहा, उसने हाथ बढ़ाया।

"द्विज ! तुम मुझ कापाली द्वारा अस्पृश्य हो।"

"तो मैं क्या करूं ?" जयन्त ठिठक गया।

"तुम इस समीपवर्ती दीर्घिका मे स्नान करो।"

श्रान्त द्विज रहस्य समझ नही सका। परन्तु स्नान करना उसने अच्छा समझा। वह श्रान्त था। स्नान पश्चात् शरीर हल्का हो जायगा, इस दृष्टि से उसने दीर्घिका मे डुबकी लगायी। अश्वपाद ने लेख दीर्घिका मे फेंक दिया।

जयन्त की आख खुली। वह चकित था। उसके हाथ मे लेख था। वह स्वदेश काश्मीर मे उपस्थित था। उत्थित जयन्त ने राजा के भृत्यों को अर्चना के लिए जल ले जाने मे व्यग्र देखा। राजा के पास उसका पहुचना कठिन था।

क्षण मात्र मे वह श्री पर्वत से काश्मीर पहुच गया था। परन्तु समीपस्थ राजा के समीप पहुचना उसने असम्भव समझा। वितस्ता तट मे जल ले जाने, भृत्यों के कलश के समीप खड़ा हो गया।

"बन्धुवर!" जयन्त ने भृत्यो मे जिज्ञासा की, "जल कहा जल ले जा रहे हैं?"

"सौम्य!" एक भृत्य ने कहा, "राजा इस निर्मल ताजे जल से शिवलिंग को स्नान कराते हैं।"

"मित्रवर! किस प्रकार स्नान कराते हैं?"

"इतना भी आप नही जानते? साधारण बात है। हम जल कलश राजा के सम्मुख रख देते हैं। राजा हाथ जोड़कर कलश उठाते हैं। कलश जलधारा शिव लिंग पर गिरती है।"

"इतनी निष्ठा?" जयन्त ने आश्चर्य प्रकट किया।

"हा, वे जलकलश किसी को स्पर्श करने नहीं देते।"

भृत्य जल कलश भरने लगा। जयन्त ने अच्छा उपाय निकाल लिया। उसे अपने कार्य की सफलता दिखायी दी।

जयन्त भृत्यो का जल कलश ले जाना देखने लगा। उनसे मैत्री बढ गयी। एक दिन अवसर मिला। भृत्यों ने कलश भरकर तीरपद पर रख दिया। हाथ-पैर धोने लगे। जयन्त ने लेख एक कलश मे डाल दिया। चुपचाप एक ओर बैठ गया। भृत्य हाथ-मुख प्रक्षालित कर आये। कलश उठाया। शीघ्रतापूर्वक राजप्रासाद की ओर चल दिये। जयन्त प्रसन्न हो गया।

राजा शिव लिंग, वितस्ता के ताजे, निर्मल, शीतल, पवित्र जल मे स्नान कराता था। उसका यह नित्य कर्म था। स्नान कराने के पश्चात् पूजा एवं आरती करता था।

राजा ने कलश जलों को शिव लिंग पर स्नानार्थ उडेला। उडेलते ही एक कलश से लेख गिर गया। राजा ने कलश एक ओर रख दिया। निपतित लेख साश्चर्य उठाया। उसे पढने लगा।

लेख पढकर राजा ने दौवारिक को आदेश दिया, "जयंत को अविलम्ब उपस्थित किया जाय।"

राजा ने दौवारिक तथा कलश जलवाहक भृत्यों के निर्वतित होने पर, लेख को ध्यान से पुनः पढ़ा। उसमे लिखा था :

> कृतं कृत्यं महद्दत्तं भोगा भुक्ता वयो गतम् ।
> किमन्यत्करणीयं ते एहि गच्छ शिवालयम् ।।रा० : ३ : २७३।।

"कृत किये। महान् दान किया। भोगों का संभोग किया। आयुगत हो गयी। तुम्हें अब और क्या करणीय है ? आओ ! शिवालय चलो।"

अश्वपाद का लेख पढ़कर राजा प्रसन्न हो गया। मन ही मन मुस्कराया। लेख मस्तक से लगाया। भक्तिपूर्वक शिव लिंग की पूजा विधिवत् करने लगा। उसे किंचित् मात्र चिन्ता न हुई। वह तत्क्षण यह जगत् त्यागने वाला था।

राजा ने जयेन्द्र को प्रणाम किया। उसकी इच्छानुसार उसे यथेष्ट द्रव्य देकर विदा किया। वह पुनः शिव के सम्मुख आसन लगाकर बैठ गया।

राजा का पूजन स्थान पाषाण प्रासाद था। उसने शिव का ध्यान किया। उस के पूर्व जन्म की योगशक्ति जाग उठी। उसने आकाश गमन के लिए उत्थान किया। उसकी काया भूमि से उठी। पाषाण प्रासाद की छत अचानक फट गयी। मनुष्याकार हुए पाषाण छिद्र द्वारा उसकी काया ने विमल आकाश में प्रवेश किया।

काश्मीर की जनता ने देखा—विश्व का अद्‌भुत चमत्कार। योगी राजा की अश्रुत यौगिक शक्ति। सबकी आंखों ने देखा कैलाश तिलकित दिशा में राजा ने काश्मीर आकाश मार्ग से गमन किया। निर्मल व्योम में उसे द्वितीय सूर्योदय सम्पादित करते हुए लोगों ने देखा। सशरीर स्वर्ग जाने की काश्मीर की यह दूसरी घटना थी।

जयन्त ने राजा से प्राप्त अमित धन का सदुपयोग अपने नाम से अग्रहारादि स्थापित कर किया।

काश्मीर के इस महान् राजा ने भुवन का भोग कर इसी शरीर से भूत पति भगवान् शिव की सभा प्राप्त की।

यह घटना सत्य है। कल्हण पण्डित ने स्वयं वह छिद्र अपने समय बारहवीं शताब्दी में देखा था। वह लिखते हैं, "नृपति के सिद्ध क्षेत्र पर, प्रवरेश्वर प्रासाद में स्वर्ग द्वार सदृश आज भी राजा के गमन के लिए पत्थर की छत में दैवी कृति द्वारा जो द्वार खुल गया था, वह मौजूद था। उसे लोग देखकर उस घटना की सत्यता पर निःशंक विश्वास करते थे।"

आधार ग्रन्थ : राजतरंगिणी ३ । ३२४-३७८

युधिष्ठिर द्वितीय-नरेन्द्रादित्य

प्रवरसेन की रानी रत्नप्रभा से उत्पन्न पुत्र युधिष्ठिर था। काश्मीर का राजा हुआ। उसने नव मास कम चालीस वर्ष शासन किया। राजा के सर्वरत्न, जय, एवं स्कन्दगुप्त मन्त्री थे। उन मन्त्री पवरो ने विहार, चत्यादि से काश्मीर मण्डल सुशोभित किया।

जयेन्द्र का पुत्र वज्रेन्द्र राजा का मन्त्री था। उसने भवच्छेद नामक ग्राम, चैत्यादि निर्माणो द्वारा स्तुत्य बनाया। दिशा रूपी कामिनियो के मुख को कीर्ति रूपी चन्दन से चिन्हित करने वाले कुमार सेनादि अन्य भी उसके अग्रय मन्त्री थे।

राजा युधिष्ठिर की रानी पद्मावती थी। उससे उत्पन्न पुत्र नरेन्द्रादित्य था। उसका अपर नाम लखण था। उसने नरेंद्र स्वामी मन्दिर की स्थापना की। उसके सुकृत प्रख्यात वज्रेन्द्र तनय वज्र तथा कनक मन्त्री थे। उसकी रानी का नाम निर्मल प्रभा था। उस महाभुज ने स्वलेख की रक्षा हेतु सुरक्षा अधिकरण स्थापित किया। उसने तेरह वर्ष काश्मीर का राज्य कर स्वर्गारोहण किया।

आधार ग्रन्थ राज तरंगिणी ३ ३७८ ३८५

रणादित्य

नरेन्द्रादित्य के पश्चात् उसका अनुज रणादित्य काश्मीर का भूपति हुआ। उसका अपर नाम तुजीन था। वह काश्मीर का अद्भुत राजा था।

उसकी कथा गाथा सदृश प्रिय है। उसकी कथा में सभी रसों का समावेश है। सभी गुणों का उसमें दर्शन मिलता है।

उस राजा का जगद्विलक्षण शख मुद्रांकित भाल था। सूर्यमण्डल मिश्रित, चन्द्र बिम्ब तुल्य सुशोभित था। उस राजा का खंग, शत्रु कण्ठ रूपी अटवी पर पतित होता था और उन शत्रुओं की स्त्रियों के नेत्र कण जल बाहुल्य धारण करते थे।

उस राजा की अपूर्व प्रतापाग्नि, शत्रु भूमि में प्रवेश कर, नारी नेत्रों में जल तरंगें एवं गृहों पर तृणाकुर स्थिर कर देते थे। उसकी पाणि मे कृपाण आ जाने पर, शत्रु सेना में कबन्धों के अतिरिक्त और कोई दूसरा नृत्य नही कर सकता था।

उस दिव्य स्वरूप राजा की प्रिया, अनश्वर माहात्म्य युक्त, देवी रणारम्भा थी। वह पृथ्वी पर उत्पन्न, विष्णु शक्ति थी।

राजा की पूर्वजन्म की कथा विचित्र थी। वह जन्मान्तर में द्यूतकार था। किसी समय कितव अर्थात् धूर्त जुआरी के सर्वस्व जीत लेने पर उसने निर्वेद प्राप्त किया। देह-त्याग की भावना जागृत हुई। देह त्याग का निरन्तर चिन्तन करता था। साथ ही कितव जनों के समान वह स्वार्थ साधन की उपेक्षा भी नहीं कर सका। वह प्राण त्याग नहीं कर सका। उसका वैराग्य श्मशान वैराग्य था। जुआरियों का वैराग्य था।

उस द्यूतकार ने अपनी स्थिति देव कृपा से सुधारना चाहा। किसी देवी या देवता से वर प्राप्त करने की कामना करने लगा। वह अपने प्राण से निरपेक्ष था। उसने सुना, विन्ध्य पर्वत में भ्रमरवासिनी देवी का देवस्थान है। वहा वांछित फल की प्राप्ति होती है। उसने विन्ध्यपर्वत स्थित अमोघ दर्शना देवी भ्रमरवासिनी के दर्शन की कामना की। उसने विन्ध्य पर्वत की ओर सोत्साह प्रस्थान किया।

देवी भ्रमरवासिनी का मार्ग दुर्गम था। पांच योजन मार्ग नितान्त दुर्लंघ्य

था। वहा प्रवेश करने वालो को भ्रमरो एव शकु पुच्छ आदि के दशन की मरणान्तिक पीडा का सामना करना पडता था। देवी का दर्शन करना असम्भव था। देवी के प्रहरी भ्रमर चारो ओर मन्दिर स्थान को योजनो पूर्व मे घेरे रहते थे। उनके कारण किसी प्राणी का मन्दिर मे प्रवेश असम्भव था। भ्रमर समूह देवी को घेरे रहते थे। वहा पहुचते ही दर्शनार्थी पर टूट पडते थे। दर्शनार्थी मार्ग में ही उनके भीषण दशन द्वारा या तो दर्शन की कामना त्याग देता था अथवा उसका साहस टूट जाता था। वह लौट जाता था। अन्यथा प्राण-विसर्जन कर देता था।

स्थानीय जनो ने द्यूतकार को दर्शन विरत होने का परामर्श दिया। अनेक दर्शनार्थियो की दुखान्त कथाए सुनायीं। दर्शनार्थियों की विपन्नावस्था का सजीव चित्रण किया। उसे भयभीत करने मे कुछ उठा नहीं रखे। परन्तु वह द्यूतकार कृतसकल्प था। शरीर मोह त्याग चुका था। शरीर के प्रति उसकी निरपेक्ष भावना थी। उसने देवी दर्शन का निश्चय किया।

द्यूतकार कुशाग्र बुद्धि था। उसने अपने त्याज्य देह के लिए, उन उग्र, वज्र तुल्य शकु पुच्छ धारियो के प्रति कृपा की दुष्कर नहीं माना।

द्यूतकार ने अपने शरीर-रक्षा की सुयोजित योजना बनायी। उसने भ्रमर दश से रक्षा हेतु शरीर को सुरक्षित किया।

सर्वप्रथम उसने लौह वर्म से शरीर आच्छादित किया। लौह वर्म को महिष चर्म द्वारा आच्छादित किया। उस पर उसने गोमय मिश्रित मृत्तिका का लेप किया। अग पर बारबार मृत्तिका लेप कर उसे सूर्य किरणो मे सुखाया।

उसका वह रूप विचित्र था। वह सचरणशील मृत्तिका लोष्ठ प्रतीत होता था। वह मिट्टी का अनगढ बडा ढोका लगता था। उसका चलना-फिरना मन मे भय उत्पन्न करता था। भयावना लगता था। उस क्रूर निश्चयी ने, भ्रमर-वासिनी देवी दर्शन हेतु, प्रस्थान किया।

गुफा के समीप पहुचा। सरल सरणि त्याग कर जीवन आकाक्षा सहित, उसने घनघोर अन्धकारमय भयकर गुफा मे प्रवेश किया।

मृत्यु के तूर्य ध्वनि तुल्य, परुष शब्दो से, कान को विस्फारित करते, भ्रमर मण्डल गर्तो से क्रुद्ध निकले। उन्होंने चारो ओर से मृत्तिका लिप्त द्यूतकार पर सवेग आक्रमण किया।

सूखे मृत्तिका कणो से ग्रसित लोचन भ्रमर उस पर सहसा आक्रमण नहीं कर सके। उस पर वे प्रहार किये। किन्तु द्यूतकार पीडित नहीं हुआ। वह गुफा मे अग्रसर होता रहा।

भ्रमर आक्रमणों ने उसे निश्चय विरत नहीं किया। अपितु जिन भ्रमरों के नेत्र मृत्तिका कण से हत हो गये थे वे पलायित कर गये। उनके स्थान पर भ्रमरों का दूसरा समूह आता गया। उनके निर्वतित होने पर, नवीन-नवीन भन-भन-भन करता, भ्रमर झुण्ड आता गया। उनके सतत प्रबल आक्रमणों के कारण, मृत्तिका लेप खण्डित होने लगा। तीन योजन गुफा मार्ग समाप्त करते-करते उसका मृत्तिका कवच तीव्र दंशन द्वारा क्रमात नष्ट हो गया।

द्यूतकार का महिष चर्म वर्म दिखाई पड़ने लगा। भ्रमरों ने चर्म पर प्रहार आरम्भ किया। चर्म प्रहार के कारण भयंकर चट-चट-चट घोष प्रादुर्भूत हुआ।

घोर अन्धकार था। केवल भ्रमरो के भन-भन-भन करती गूंज से गुफा गुंजित थी। चतुर्थ योजन पार करते-करते महिष चर्म भ्रमरों के प्रहार से टूटकर गिर गया।

लौह वर्म पर भ्रमरों का सवेग प्रहार होने लगा। वर्म से झन-झन-झन ध्वनि निकलने लगी। केवल लौह वर्म उसके शरीर पर शेष रह गया था। लौह वर्म की समाप्ति पर जीवन-समाप्ति की आशंका उत्पन्न हुई। वह वेग से दौड़ने लगा। जीवन-मरण के बीच जूझ उठा। दौड़ता गया।

भ्रमरों के प्रहार से लौह वर्म खण्डित हो गया। खण्डित वर्म द्यूतकार की शक्ति के साथ दौड़ने लगा। वह दूर नहीं पहुंच पाया था। लौह वर्म भ्रमर प्रहार द्वारा खण्ड-खण्ड होकर गिर पड़ा। द्यूतकार का वर्म ने त्याग किया किन्तु उसके धैर्य ने उसका त्याग नहीं किया।

भ्रमरवासिनी देवी का मन्दिर एक गव्यूति और शेष रह गया था। वीर धीः एवं धैर्यशाली द्यूतकार, अपने दोनों हाथों से, मधुपों को हटाते हुए, दौड़ने लगा। भ्रमर उसके शरीर पर घोर प्रहार करने लगे। उसका मांस उनके दंशन से फूटने लगा। उनसे रक्त धार बहने लगी। मांस विगलित होने लगा। वह दोनों हाथों से भ्रमरों को हटाते आगे बढ़ा।

अनन्तर स्नायु एवं अस्थि मात्र शेष पट्चरण भ्रमरों से खण्डित मांस द्यूतकार ने अपने दोनों हाथों से आंखें बन्द कर ली। नेत्र की रक्षा होने पर ही देवी के दर्शन की आशा थी। वह भागता-भागता, किसी प्रकार देवी के चरणों पर गिर पड़ना चाहता था।

अन्ततोगत्वा द्यूतकार देवी के आयतन में पहुंच गया। भृंग संपात शान्त होने पर उद्भ्रान्त जीवित प्रकाश देखते हुए, देवी के चरणों पर गिर पड़ा।

उस स्वल्प अवशिष्टप्राण द्यूतकार को देवी ने दिव्य अभिराम शरीर प्रदान किया। आश्वासन हेतु उसके अंगों पर कोमल पवित्र पाणि स्पर्श किया। उस पीयूष वर्षा दिव्यपाणि स्पर्श से, द्यूतकार ने शीघ्र ही स्वास्थ्य प्राप्त किया। उसने दिशाओं की ओर दृष्टिपात किया।

प्रवेश समय, उसने सिंहाल्ड जिस घोराकृति घोराकार काली का दर्शन किया था वह वहां दिखायी नहीं पड़ी।

वह पुष्करिणी तट पर था। मनोरम उद्यान लता गृह में, विलास करती, पुष्करलोचनी, षोडषवर्षीया, तरुणी पर उसकी दृष्टि गयी। उस तरुणी का यौवन मुक्ताहार रूपी अर्घ्य से पूजा कर रहा था। पीनस्तन रूपी अंजलि बद्ध कर, बहुमूल्य कान्ति रूपी कुसुमों से अंगों को अर्चित कर रहा था। दुष्कर आचरणशील उसके चरण, जो यावक से सुन्दर थे, जिनकी ओट में स्थित मुख को देखने के लिए, मानो प्रतिदिन तपस्या कर रहे थे। रवि बिम्ब स्वरूप अधर, कृष्ण रूप केश शशि रूप आनन, हरि रूप मध्य एवं शिव रूप आकृति से, मानो वह सब देवमयी थी।

निर्जन में, यौवनपूर्ण उस सर्वांग सुन्दरी को देखकर, वह प्रतिरोधरहित, कुटिल काम वशीभूत हो गया। रूप की अत्यधिक माधुरी से पूर्ण एवं असमय उसके चित्त में देवी अप्सरा प्रतीत हुई, न कि देवता।

"सौम्य!" देवी ने कृपापूर्वक मृदु वचन कहा, "मार्ग में चिरकाल कष्ट प्राप्त किया है। आश्वसित होकर पुनः उचित वर की प्रार्थना करो।"

"देवी!" द्यूतकार बोला, "आपके दर्शन द्वारा मेरा श्रम शान्त हो गया है किन्तु?—"

"किन्तु क्या सौम्य?" देवी ने उस पर दृष्टिपात किया।

"आप देवी नहीं है। आप वर कैसे प्रदान करेंगी?"

"भद्र!" देवी ने कहा, "तुम्हारे मन में यह कैसा भ्रम उत्पन्न हो गया है?"

द्यूतकार की अविचल दृष्टि देवी पर लगी थी। उसने उत्तर नहीं दिया। देवी ने स्वयं कहा

"मैं देवी हूं, अथवा अदेवी, तुम्हें वर प्रदान में समर्थ हूं।"

द्यूतकार प्रफुल्लित हो गया। उसने देवी से अभीष्ट सम्प्राप्ति की प्रतिज्ञा करा ली। काम दृष्टि से देवी की ओर देखा। मर्यादाहीन हो गया। उसने कहा

"मैं आपसे संगम की याचना करता हूं।"

"दुर्बुद्धे!" देवी ने क्रुद्ध होकर कहा, "तुम्हारा यह कैसा आचरण?"

"देवी! आपने प्रतिज्ञा की है?"

द्यूतकार के नेत्रों में काम मद छलछला आया था। देवी ने कहा

"इतर वर मांगो।"

"क्यों?"

"मैं ही, भ्रमरवासिनी देवी हूं।"

द्यूतकार का मन उसे भ्रमरवासिनी देवी जानकर भी, विचलित नहीं हुआ। निस्सन्देह, जन्मान्तरीय वासनाओं को कौन दूर करने में समर्थ हुआ है? उसने देवी

से कहा :

"देवी ! यदि आप अपनी वाणी सत्य करना चाहती हैं, तो मेरी वाणी पूरी कीजिये। मेरी और कोई दूसरी याचना नहीं है।"

देवी, उसकी बात सुनकर, चकित हुई। उसने पुनः कहा :

"देवी ! प्राणियों में जो संस्कार पूर्वकाल में स्थित हो जाते हैं, वे उनके शारीरिक तिलों के सदृश, मृत्यु पर्यन्त नष्ट नहीं होते।"

देवी उसकी बात ध्यानपूर्वक सुन रही थी। उसने अर्थमय शब्द कहा :

"आप देवी हों अथवा कान्ता; भयंकर हों अथवा सुन्दर, जिस प्रकार पहले देखा था, उसी प्रकार अब भी मुझे आप लग रही है।"

"ऐसा जन्मान्तर में होगा।" उस दृढ़ निश्चयी की सानुरोध वाणी सुनकर, देवी बोली।

"अभी क्यों नहीं ?" उस कामलोलुप ने कामलिप्सापूर्ण नेत्रों से, देवी की ओर देखते हुए, कहा।

"दिव्य शरीरधारी, मरणशील का स्पर्श नहीं करते। अतएव, हे ! क्रूर संकल्प ! ! तुम जाओ।"

कहते-कहते देवी अन्तर्धान हो गयी।

वह जुआरी भ्रमरवासिनी देवी के स्थान से लौटा। प्रयाग आया। देवी का सुन्दर कमनीय रूप भूलता नहीं था। कामवासना से अत्यन्त पीड़ित था।

"उस देवी के साथ दिव्य जन्म की प्राप्ति होगी।" उसके मन में बात बैठ गयी थी। वह देवी के साथ संगम के लिए इतना आतुर हो गया कि उसने चिन्तन किया—"देवी ने कहा था। इस जन्म के पश्चात् मिलन होगा। क्यों न इस जीवन का यथाशीघ्र त्याग कर दूं। अनायास देवी से शीघ्र मिलन होगा।"

अपनी बुद्धि निर्देश पर वह प्रसन्न हो गया, उसने शरीर-त्याग का निश्चय किया। कामी सब-कुछ किसी समय भी कर सकते हैं। उस कामी जुआरी ने भी यही किया।

द्यूतकार प्रयाग संगम पर आया। अक्षय वट की छाया में बैठ गया। तीर्थ यात्री प्रयाग के अक्षय वट की पूजा कर रहे थे। उस जुआरी ने वही स्थान आत्म-हत्या के लिए उपयुक्त समझा। उसने चिन्तन किया :

"अक्षय वट पवित्र है। देव स्वरूप है। देवी ने प्रतिज्ञा की थी। देव के समीप प्राण त्याग में कष्ट नहीं होगा। अक्षयवट की कृपा से वह शीघ्र ही नव-जीवन पा जायगा। उसकी इच्छा पूर्ण हो जायगी। मरते समय भी देवस्थान होने के कारण यम-यातना नहीं सहनी पड़ेगी। उसे अविलम्ब मानव-शरीर मिल जायेगा। वह प्राप्त करेगा, वांछित रति-सुख।"

द्यूतकार मुग्ध एवं अपनी योजना के साफल्य की कल्पना से पुलकित हो गया। उसे अक्षय वट से अच्छा स्थान और कोई नहीं दिखायी दिया। उसने यह भी कल्पना कर ली। उसका शरीर कोई न कोई उठाकर गंगा में त्रिवेणी में प्रवाह कर देगा। वह मरने पर भी वह पुण्यार्जन कर लेगा, जो दूसरों को दुर्लभ था।

वह कर्मिलोलुप वट शाखाग्र पर फांसी लगाया। झूल गया। प्राणपखेरू उड़ गये। मिथ्या मृत शरीर अधर में लटकता रहा।

वह जुआरी पृथ्वी पर काश्मीरराज रणादित्य हुआ। देवी भ्रमरवासिनी देवी रणा रम्भा हुई। मानव योनि में भी, जन्मान्तर की स्मृति रखती थी।

चोलराज रतिसेन की कन्या रणा रम्भा थी। समुद्र पूजन में संलग्न चोल राज ने तरंग मध्य में उज्ज्वल रत्न राशि तुल्य उसे प्राप्त किया था।

बाल्यकाल से ही देवी रणा रम्भा दिव्य लक्षणों से युक्त थी। यौवन को अलंकृत करने वाली उस दिव्यार्हा को नृपति चोलराज ने प्रार्थी पृथ्वीशों को नहीं प्रदान किया।

राजा रणादित्य ने, अपना अमात्य चोलराज की सेवा में भेजा। देवी रणा रम्भा के पाणिग्रहण की कामना प्रकट की। कन्या ने पिता को संकेत किया। विवाह मंगलप्रद था। इसी विवाह के हेतु उसने जन्म धारण किया था। राजा को कन्या का तात्पर्य प्रिय लगा। वह अन्य राजाओं की कन्या का वर अस्वीकार कर चुका था। चोलराज ने रणा रम्भा को अपने मित्र कुतूत पति के गृह भेज दिया।

दूरस्थ देश चोल राज्य में बिना गये ही, प्रसन्न रणादित्य ने, देवी रणारम्भा को परिणत कर, अन्तःपुर में प्रधान रानी बना दिया।

मानव स्पर्श से रानी भीरु थी। राजपत्नी होती हुई भी, राजा को मायामोहित कर देती थी। उसने राजा का कभी स्पर्श नहीं किया।

राजा के तल्प पर स्वसमान मायामयी रमणी बना देती थी। स्वयं भ्रमरी रूप धारण करती थी। रात्रि में बाहर चली जाती थी। यह क्रम उनके जीवन के अवसान काल तक चलता रहा।

राजा ने अपने और अपनी रानी देवी रणारम्भा के नाम पर दो देव मन्दिरों का निर्माण कराया। उसने शिल्पियों द्वारा शैल लिंग पर माहेश्वर बनवाया।

दूसरे दिन प्रतिष्ठा अवसर पर देशान्तर से काश्मीर में आये, किसी देवविद् ने, उन दोनों लिंगों को दोषमय घोषित किया। उसने सस्वर कहा

"निर्मित उन दोनों लिंगों का गर्भ मण्डूक सहित, अश्म खण्डों से भरा है।"

राजा किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। लिंग प्रतिष्ठा में विघ्न उपस्थित होने के

कारण विह्वल हो गया। राजा की विह्वलता देखकर रानी रणारम्भा देवी ने कहा:

"राजन्! प्राचीन काल में पार्वती परिणय में पौरोहित्य कर्म करते, प्रजापति ने पूजा पात्र में अपने अर्चा देव को लिया था।"

"महाभाग!" रानी ने पुनः कहा, "ब्रह्मा से पूजित अर्चित रूपा उस विष्णु प्रतिमा को शिव रहित देखकर धूर्जटी ने उसे शून्य माना।"

"तब क्या हुआ देवी?"

"भुवनपति! उस समय वहां निमन्त्रित सुर एवं असुरों द्वारा प्रदत्त रत्नों को पिण्डीकृत करके स्वयं ब्रह्मा ने भुवन वन्दित लिंग निर्मित किया।"

"देवी! वह लिंग तथा विष्णु प्रतिमा क्या हुई?"

"नरेन्द्र!" रानी रणारम्भा ने कहा, "स्वयं प्रजापति का पूज्य एवं ईशान पूजित उस लिंग तथा विष्णु प्रतिमा को रावण ने समय पर प्राप्त किया।"

"रावण ने उन्हें लिया?" राजा ने चकित होते हुए पूछा।

"हां, पृथ्वीपते!" रानी ने उत्तर दिया, "लंका में वह लिंग चिरकाल तक पूजित रहा।"

"उसके पश्चात्...!" राजा ने जिज्ञासा की।

"रावण के पश्चात् वानरों ने देवालय दोनों देवों को ले लिया।"

"अच्छा!" राजा ने आश्चर्य प्रकट किया।

"राजन्!" रानी रणारम्भा ने कहा, "हिमालय-निवासी उन मुग्ध कपियों ने, तिर्यक स्वभाव के कारण, उत्सुकता समाप्त हो जाने पर, दोनों देवों को उत्तर मानस में रख दिया।"

"इस समय वे कहां हैं?" राजा ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"भूपाल!" रानी ने उत्तर दिया, "मैंने पहले ही उस सरोवर से कुशल शिल्पियों द्वारा उन दोनों को निकलवा लिया है। आप उन्हें निश्चय ही यहां कल प्रातःकाल देखेंगे।"

"उनका क्या किया जायगा?"

राजा ने रानी की ओर प्रश्नपूर्ण दृष्टि से देखते हुए प्रश्न किया। "महीपते! आप उनकी प्रतिष्ठा करेंगे।"

पृथ्वीपति रणादित्य को उत्तर देती रानी अन्तःपुर में चली गयी। रानी अन्तःपुर में पहुंचकर आसन पर बैठ गयी। सिद्ध खेचरों का स्मरण किया।

रानी के ध्यान करते ही खेचर रानी के सम्मुख उपस्थित हो गये। रानी को उन्होंने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम कर पूछा:

"देवि, आज्ञा!"

"उत्तर मानस स्थित दोनों देवों को निकाल कर यहां लाइये।"

"जैसी देवी की आज्ञा" कहते हुए खेचर लुप्त हो गये।

देवी रणारम्भा के आदेश पर खेचरों ने जलपूर्ण उत्तर मानस जल में दोनों देवों को निकाला। उन हरिहर देव को वे नृप धाम में लाये।

दिव्य प्रसूनों से सेवित हर तथा हरि को प्रातः राजगृह में देखकर जनता अत्यन्त विस्मित हुई।

राजा माहेश्वर था। वह सर्वप्रथम लिंग प्रतिष्ठा हेतु जब उद्यत हो रहा था, उसी समय, रानी देवी रणारम्भा के प्रभाव से, तत्र तत्र सबको विस्मित करते हुए, स्वयं रणास्वामी यन्त्रभेदन कर पीठ पर प्रतिष्ठित हो गये।

उसके अद्‌भुत प्रभाव को व्यक्त करने के लिए रानी ने बहुत सम्पत्ति मन्दिर को समर्पण की। उस सम्पत्ति द्वारा रणस्वामी के भक्तों को अनेक अग्रहार दिये।

वहां कुम्भदास के रूप में, गुप्त रूप से निवास करने वाले, ब्रह्म नामक सिद्ध को, रानी ने पहचान लिया। रानी ने उसी के द्वारा उन दोनों मूर्तियों का प्रतिष्ठा कर्म सम्पन्न कराया।

रणेश्वर की प्रतिष्ठा करने पर, सिद्ध का परिचय लोगों को प्राप्त हो गया। आकाश मार्ग में गमन करते हुए उसने रण स्वामी की प्रतिष्ठा गुप्त रूप से की। वे स्वयं पीठ पर अवतरित हुए थे। यह प्रवाद कल्हण कवि बारहवीं शताब्दी तक जनता में प्रचलित था।

रानी रणारम्भा ने ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ ब्रह्म प्रतिम उस सिद्ध को उद्देश्य कर, बहुमूल्य ब्रह्म मण्डप निर्मित कराया। इसी प्रकार राजा और रानी ने रणारम्भा स्वामी तथा रणस्वामी देव मन्दिर निर्माण कराया। पाशुपतों के लिए प्रद्युम्न शिखर पर मठ भी बनवाया।

राजा ने रोगियों के आरोग्य एवं सेना मुखी देवी के भय शान्ति हेतु सुन्दर आरोग्यशाला स्थापित की। उस राजा ने सिंहोत्सिका ग्राम में रणपुर स्वामी नाम से प्रख्यात मार्तण्ड मन्दिर निर्माण कराया।

राजा की अपर पत्नी अमृत प्रभा ने रणेश्वर के दक्षिण पार्श्व में अमृतेश्वर देव की स्थापना की। देवी अमृत प्रभा ने मेघवाहन नृप की पत्नी भिन्ना द्वारा निर्मित विहार में सुन्दर बुद्ध प्रतिमा निविष्ट की।

देवी रणरम्भा ने एक बार अपने में अनुरक्त एवं महानुभूतिपूर्ण नृपति को पाताल सिद्धप्रद हाटकेश्वर मन्त्र प्रदान किया, ताकि राजा पाताल-विजय कर सके।

देवी रणारम्भा द्वारा प्रदत्त मन्त्र निष्फल न हो, अतएव राजा उसे अनेक वर्षों तक सिद्ध करता रहा। राजा ने इष्टिका पथ में कष्टसाध्य तपस्या की। तत्पश्चात् नन्दशिला गया। अनेक वर्षों तक मन्त्र सिद्धि प्राप्ति का प्रयास करता रहा।

मन्त्र सिद्ध हो जाने पर, स्वप्न एवं सिद्धिसूचक चिह्न, उसे दृष्टिगत होने लगे। राजा चन्द्रभागा नदी को भेद कर नमुचि के बिल में प्रवेश किया। इक्कीस दिन तक बिल अनावृत रहा। अपने साथ पुरवासियों को भी उसने प्रविष्ट कराया। दैत्य स्त्रियों को उनका भोग पात्र बनाया।

उस नृपति ने तीन सौ वर्ष यावत पृथ्वी का भोगकर निर्वाण श्लाघ्य अन्तिम स्थिति प्राप्त की। नृपति के पाताल प्रयाणोपरान्त वह देवी रणारम्भा वैष्णवी शक्ति श्वेत दीप चली गयी। निस्सन्देह गोनन्द वंश में रणादित्य तथा रघुवंश में राम उत्कृष्ट हुए, जिनके लोकान्तर सुख की भागी उनकी प्रजा हुई थी।

आधार ग्रन्थ राजतरंगिणी . ३ : ३८६-४७३।

विक्रमादित्य-बालादित्य

त्रिविक्रम तुल्य पराक्रमी रणादित्य का पुत्र विक्रमादित्य, पिता की मृत्यु के पश्चात्, काश्मीर का राजा हुआ। वह महापराक्रमी था। उसने अपने भीम पराक्रम से विश्व विजय किया। विक्रमेश्वर मन्दिर का निर्माण कराया। वासव सदृश उस राजा ने ब्रह्म एवं गलून सचिवों के साथ बयालीस वर्ष पृथ्वी पर व्यतीत किये। उसके सचिव ब्रह्म ने ब्रह्म मठ से गा दुष्कृतच्छेत्ता, गलून ने रत्नावली नाम्नी स्त्री के नाम पर, रत्नावली विहार निर्माण कराया।

अनन्तर, राजा का लघु भ्राता यशस्वी बालादित्य काश्मीर का राजा हुआ। उसने रिपु राजाओं को सन्तप्त किया। उसका प्रताप लवण समुद्र जल का पान करने के कारण, मानो तृषाधिक्य धारण करता, शत्रु स्त्रियों के अश्रु मुख का सेवन करता था। पूर्व समुद्र पर शत्रु मन अगाध बोध में मापदण्ड तुल्य, उसके जय स्तम्भ स्थापित हुए थे। वे जय स्तम्भ बारहवीं शताब्दी तक वर्तमान थे।

उसने अपने प्रबल प्रभाव से, बङ्गालों को जीता था। काश्मीरियों के निवास हेतु कालम्बी नामक जनाश्रय स्थापित किया था। उसने मडव राज्यान्तगत प्रभूत धन पूर्ण भेडर ग्राम ब्राह्मणों को दान दिया था।

राजा की बिम्बोष्ठी रानी बिम्बा ने अरिष्टोत्सादन में, मनुष्यों के अनिष्ट नष्ट कर्ता, बिम्बेश्वर शिव की स्थापना की थी।

राजा के खंख, शत्रुघ्न एवं मालव नामक प्रसिद्ध मन्त्री थे। उन मन्त्रीबन्धुओं ने मठ, देवालय एवं सेतु का निर्माण कराया था।

राजा बालादित्य की भुवनाद्भुत, विलासवती, शृंगार रूपी समुद्र के लिए, कौमुदी अनंग लेखा नाम्नी कन्या थी।

अनंग लेखा एक समय अपने पिता के पार्श्व में बैठी थी। अमोघप्रत्ययी ज्योतिषी ने लक्षणसम्पन्न, उस मृगाक्षी को देखकर, सुस्पष्ट कहा

"गोनन्द वंशियों का साम्राज्य आपके जीवन तक ही सीमित है राजन् !"

"उसके पश्चात् ?" राजा ने साश्चर्य विषाद स्वर से पूछा।

"आपका जामाता जगती का भोग करेगा।'

"ओह !" राजा हतप्रभ हो गया।

राजा व्यग्र था। उसे निद्रा नहीं आयी। राजवंश समाप्त हो जायगा। अन्य वंश में चला जायगा। उसे तथा उसके पितरों का जलदाता नहीं रहेगा। वह स्वर्ग में श्राद्ध कर्म के अभाव में स्वयं भटकता फिरेगा। उसे जल तथा पिण्डदान वंशजों द्वारा नहीं मिल सकेगा। उस कल्पना ने उसका मन क्षुभित कर दिया।

यह धारणा उसे खिन्न कर देती थी। कन्या का पति राजा होगा। उसे यह विचार पसन्द नहीं आया। कन्या विवाह के पश्चात् परगोत्रीय हो जायगी। वंश-परम्परा छिन्न हो जायगी। स्वत तथा वंश प्रेम के कारण, राजा भविष्य की कल्पना कर, व्याकुल हो गया।

कन्या का सन्तान परगोत्रीय होगा। सिंहासन पर, परगोत्रीय बैठेगा। उसके राजवंश का लोप हो जायगा। वंश वृक्ष सूख जायगा। इस क्षोभ ने कन्या प्रेम से अधिक उस पर प्रभाव जमा लिया था। उसने निश्चय किया। वह दैव को, विधि की गति को, भाग्य को, पुरुषार्थ से जीतेगा। प्रमाणित कर देगा। भाग्य की गति, दैव की गति, विधि का लेख, पुरुषार्थ द्वारा परिवर्तित किया जा सकता था।

राजा ने निश्चय किया। गोनन्द वंश के बाहर शासनसूत्र, अन्य वंश में, किसी प्रकार किसी परिस्थिति में न जाने देगा। एतदर्थ उसने विचित्र निर्णय लिया।

उसने कन्या को अविवाहित विधवा तुल्य बना दिया। कन्या वयस्क होती गयी। लता की तरह मुकुलित हुई। सुरभित हुई। उसे प्रकृतिजन्य रति सुख की कामना हुई। कन्या चंचल हुई।

राजा ने कन्या को विष समझा। गोनन्द वंश के नाश का कारण समझा। तथापि युवती कन्या से कब तक संयम की, सतीत्व की आशा रखी जा सकती थी ? विषस्वरूप उस कन्या का अपनी प्रतिहिंसाग्नि शान्त करने की लालसा से अश्वघास कायस्थ दुर्लभ वर्धन के साथ विवाह कर दिया।

दुर्लभ वर्धन में केवल एक गुण था। वह सुन्दर था। अन्यथा वह सामान्य राज कर्मचारी था। राजकीय अश्वों के लिए घास का प्रबन्ध करता था। राजा ने अत्यन्त सामान्य घास अधिकारी के हाथ कन्या देकर सन्तोष किया। यह अश्वघास कभी राजसिंहासन पर बैठ सकता था। कल्पनातीत बात थी।

किन्तु राजा को यह रहस्य नहीं ज्ञात था कि दुर्लभ वर्धन की सुस्नात माता के साथ कर्कोट नाग का सम्बन्ध हो चुका था। वह सम्बन्ध राज्य गोनन्द वंश से कर्कोट वंश में ले जाने का साधन बन चुका था। वह साधन स्वयं दुर्लभ वर्धन था।

अपने को बुद्धिमान मानने वाले, जिसे हठात् अयोग्य सिद्ध करते हैं, उसी में विजय की इच्छा से विधि, कल्याण स्थित कर देता है।

मात्सर्य द्वारा नक्षत्रों को तिरस्कृत करने एवं अपने को समर्थ जानकर, अतुल-नीय अग्नि में अपनी कान्ति रखते हुए, अस्तोन्मुख सूर्य उपहास पात्र होता है। जो अग्नि देव को नहीं जानता है, उससे उत्पन्न जगत् के दीपक भी सूर्य के विस्मारक

हो जाते हैं। भविष्य अपना सुनियोजित जाल धीरे-धीरे फैलाने लगा।

दुर्लभ वर्धन से राजा ने कन्या का विवाह कर कन्या को महत्त्वहीन करने की कल्पना की थी। उसे विश्वास था। सामान्य कुलोत्पन्न दुर्लभ वर्धन अथवा अनगलेखा का पुत्र काश्मीर सिंहासन कभी सुशोभित नहीं कर सकेगा।

किन्तु दुर्लभ वर्धन जितना सुन्दर था, उतना ही चतुर था। उसकी सुन्दरता, उसकी सरलता, उसके वास्तविक रूप को प्रकट करने में आवरण का काय करती थी। उसमें निपुण राजनीतिज्ञता विकसित होने लगी। भाग्यानुगामिनी बुद्धि द्वारा सुनियोजित चेष्टा करता था। अपने अनुकरणीय आचरण तथा चेष्टा से, वह सर्वजनप्रिय हो गया।

राजा ने दुर्लभ वर्धन को मासुर बना दिया। उसके श्वसुर राजा बालादित्य ने उसका नाम प्रज्ञादित्य प्रदान किया। राज्यप्राप्ति का नाम मार्ग उसे प्रथम चरण था। राजा ने प्रसन्न होकर उसे कुबेर तुल्य भाग्यशाली बना दिया। वह समय की गति के साथ भूल गया था। ज्योतिषी ने उसके राजा होने की भविष्यवाणी की थी।

राजकन्या का विवाह यद्यपि राजा ने दुर्लभ वर्धन के साथ किया था, परन्तु राजकन्या नहीं भूल सकी थी। वह राजपुत्री थी। उसका पुत्र राजसिंहासन का अधिकारी था। और उसका पति? उसके पिता का सामान्य भृत्य अश्वघास कायस्थ मात्र था। राजाश्रित था। उसकी शरण में पला था।

कुलीनता की इस उत्कट भावना के कारण राजकन्या पति के साथ उस प्रणय-सूत्र में न बंध सकी, जिसकी अपेक्षा पत्नी से की जाती थी। माता पिता की प्रियता, तारुण्य मद एवं स्वच्छन्दता के कारण प्रमत्त राजपुत्री पति का यथोचित सम्मान न दे सकी।

स्वैरिणी सगम, भोग, युवा पुरुष-सहवास, पितृगृह एवं पति की मृदुता, राजपुत्री को प्राप्त थे। उनमें कोई भी एक ऐसा नहीं था, जो उसे शीलच्युत करने में सहायक न होता। राजपुत्री शीलच्युत हुई। तदनन्तर आचरणच्युत हुई।

नित्य परस्पर वार्तालाप में, दर्शन अभ्यास में, शनैः-शनैः मन में प्रविष्ट, मन्त्री खंख पर अनगलेखा आसक्त हो गयी। प्रच्छन्न प्रेम सुख के अभ्यास से, लज्जा, भय, सम्भ्रमरहित, वह लावण्यवती राजपुत्री अनगलेखा क्रमशः धृष्ट होती गयी। खंख को सब-कुछ समर्पित कर दिया।

कामपटु मन्त्री खंख ने दान-मान द्वारा परिजनों को वश में कर लिया। अन्तःपुर में स्वच्छन्दतापूर्वक उसका आवागमन होने लगा। अनंग लेखा की कामाग्नि में उसने अपने यौवन की आहुति देना आरम्भ कर दिया।

परपुरुष आसक्त स्त्री का अपने पति से स्वभावतः विराग उत्पन्न हो जाता

है। धीमान दुर्लभ वर्धन पत्नी के विरागादि चिह्नों द्वारा उसके शील विप्लव से विज्ञ हो गया।

अनगलेखा सखी के मध्य में हंसती थी। परन्तु पति का दर्शन होते ही, विवर्ण हो जाती थी। अकारण उठकर खड़ी होती थी। मार्ग की ओर सस्मित देखने लगती थी। पति का कोप देखकर वह अपने नेत्र एवं चिबुक की गतियों से अवज्ञा प्रकट करती थी।

दुर्लभ वर्धन उसके प्रति अप्रिय भाषण करता था, तो सस्मित नेत्र नत कर लेती थी। उसके समान गुणो का वर्णन सुनकर, विरक्त हो जाती थी। विपक्षियो की स्तुति में रुचि लेती थी। पति जब रतिभाव से उसकी ओर देखता, तो वह सखियो के साथ संलाप करने लगती थी।

पति को चुम्बन के लिए उत्सुक देखकर मुख नीचा कर लेती थी। बल प्रदर्शन करने पर मुख फेर लेती थी। यदि पति ने चुम्बन ले लिया, तो ओष्ठ पोंछ लेती थी। अन्यमनस्क हो जाती थी। यदि वह आलिंगन करना चाहता था, तो शरीर शिथिल कर देती थी। बैठ जाती थी। रति का विरोध करती थी। संभोग के समय हर्ष त्याग देती थी। तल्प पर निद्रा के व्याज से सो जाती थी। पर को शरीर अर्पण करने वाली अनगलेखा के शरीर मे विराजती अनीति रूपी पिशाचिनी उन्मत्त हो गयी थी।

निगूढ दार दौरात्य की चिन्ता के कारण दुर्लभ वर्धन का शरीर कृश हो गया। किसी एक रात्रि अन्तःपुर मे दुर्लभ वर्धन ने प्रवेश किया।

उसने देखा। परिचारिकाएं नही थी। धीमे-धीमे जलते तेल दीप के मलिन प्रकाश मे शयन-कक्ष उदास था। शयन-कक्ष का द्वार किंचित् खुला था। द्वार पर पर्दा पड़ा था। दुर्लभ वर्धन ने परदे के समीप देखा। बाहर फेंकी हुई टूटी माला। माला परदे से टकरा कर द्वार देश पर गिर गयी थी। कुम्हला गयी थी। उसे आश्चर्य हुआ। उसने धीरे से परदा उठाया।

उसने देखा। कक्ष के फर्श पर गलित कुसुम बिखरे थे। तैल दीप लज्जित था। गवाक्ष के पट कुछ खुले थे। उन पर परदा पड़ा था। बाहर से मन्द-मन्द मरुत प्रवेश कर रहा था। उस मन्द मरुत प्रवाह मे तरंगित नर-नारी तल्प पर शयनशील थे।

दुर्लभ वर्धन वह दृश्य देखकर स्तब्ध हो गया। उसकी धमनियों में प्रवाहित रक्त जमने लगा। मस्तक पर स्वेद कण उभर आये। उसने आंख मलते हुए देखा। एक ही तल्प पर खंख और अनंगलेखा। वह अपनी कमर पर झुक गया। उसे इस दृश्य पर विश्वास नही हुआ। उसने पुनः आंख उठायी। जानना चाहा। वह देख रहा था। वह सत्य था, अथवा स्वप्न।

अनगलेखा खग्व के साथ अतिशय रति विलास के कारण, शिथिल होकर, खग्व के शरीर पर, गिरी थी। निद्राभूत थी। उसके वस्त्र हट गये थे। कंचुकी शिथिल हो गयी थी। वेणी खुली थी। वेणी से कुछ बाल बिखरकर ललाट प्रदेश पर पड़े थे। वेणी में गुथी पुष्पराशि मसल गयी थी। कुछ उनमें मुरझाई थी। कुछ तल्प पर गिरी थी। कुछ गिरने की प्रक्रिया में थी। बालों में लगी कंघी भूमि पर दूर पड़ी थी।

कण्ठ की माला टूटी थी। कमर निकल फैल गया था। अधर लाली शुष्क। सीत्खव के हृदय स्थल से दाहिना कपोल दबा था। उत्तुंग कुच खग्व के वक्षस्थल पार्श्व में दबे थे। पाद तल आलता रंजित थे। मलिन हो गए थे। वाम पद लम्बा फैला था। दाहिना पद सिकुड़कर खग्व के जानु पर स्थिर था। पायल लटक रही थी। कनक नादी कपोल पर तिरछी पड़ी थी। स्वर्ण सूत्र भूलकर एक ओर हो गयी थी। एक कलाई का स्वर्ण कंकण ऊपर उठा था। दूसरे का नीचे की ओर झुका था। केयूर अपने स्थान से निकल गये थे। परिहाय खुल गये थे। कंचुकी के बन्द खुले थे। आखों की कज्जल रेखा फैल गयी थी। उन्नत बरौनियाँ मिल गयी थीं।

कुचाग्र को कम्पित करता श्वास प्रकट कर रहा था। रति समागम में विशेष विलम्ब नहीं हुआ था। रतिसुख के परिश्रम के कारण शिथिलता आ गयी थी। जार के शरीर स्पर्श एवं आलिंगन में शेष रति सुख का आनन्द लेती, शरीर के काम को सार्थक मानती, वह लज्जा परित्याग कर चुकी थी।

अपनी पत्नी को परपुरुष पर लेटी, एक ही तल्प पर, देखकर, संयमी पुरुष भी क्रोधानल में उग्र हो सकता था। दुर्लभ वर्धन अपनी प्रिया का नग्न निर्लज्ज रूप देखकर क्रोध वशीभूत हो गया। वह अपनी पत्नी को परपुरुष के अंक में देखकर, उस दृश्य को देखकर खग्व हत्या हेतु सन्नद्ध हो गया।

उसने तत्काल कोश से कृपाण निकाल लिया। खग्व की जीवन-लीला समाप्त कर देना चाहा। खग उठाये तल्प की ओर बढ़ा।

हठात् उसके विवेक ने उसे रोका। प्रहार नहीं कर सका। पत्नी की काम लिप्सा पर दया आयी। कामुक प्रवृत्ति पर दुःखी हुआ। पत्नी के आचरण पर घृणा उत्पन्न हुई। उसके यौवन लावण्य में विशद विष देखा।

दुर्लभ वर्धन प्रहार विरत हो गया। तल्प से लौटा। इसी समय खग्व ने अंगड़ाई ली। अनग लेखा ने शरीर संकुचित किया। खग्व को दबाया।

दुर्लभ वर्धन की क्रोधाग्नि पुनः प्रज्वलित हो उठी। उसने खग उठाया। तल्प की ओर बढ़ा। मन्द प्रकाश में देखा। अनगलेखा लोक-लज्जा त्यागकर जार के शरीर पर उपहार स्वरूप पड़ी थी। शरीर अर्पित कर चुकी थी। परशरीर से अपना शरीर मिलाकर एकाकार होना चाहती थी।

दुर्लभ वर्धन अनंगलेखा का दयनीय, कमनीय रूप देखकर दुःखी हुआ। एक नारी कामलिप्सा की वेदी पर क्या स्वाहा नहीं कर सकती, देखकर, शोकाभिभूत हो गया। अनंगलेखा को दया पात्र समझा।

दुर्लभ वर्धन मे विवेक प्रवेश कर चुका था। खंग की हत्या न कर सका। पुनः तल्प से द्वार की ओर परावृत्त हुआ।

उसने लौटते समय किंचित् ध्वनि तल्प पर सुनी। अनंगलेखा का रति-शैथिल्य दूर हो चला था। वह उस सुखनिद्रा में खंख के साथ पूर्णतया मिल जाना चाहती थी। उसने उस अलसायी अवस्था में ही खंख का आलिंगन किया। खंग अत्यन्त शैथिल्यता के कारण यथावत् पड़ा रहा। अनंगलेखा के पायल किंचित् निनाद कर नीरव हो गये।

दुर्लभ वर्धन वह दृश्य देखते ही पुनः क्रुद्ध हो गया। उसका विवेक उसका साथ त्यागने लगा। वह वेग से तल्प की ओर अग्रसर हुआ। उसका रोष उग्र हो उठा। प्रकोप आवेश क्षुब्ध सागर को उसके विचार वेलया ने रोका।

उस महापुरुष को नमस्कार है जिसने ईर्ष्या विषय विशूचिका का जय कर लिया है। उससे बढ़कर भला और कौन जितेन्द्रिय हो सकता है ?

उसने चिन्तन किया : "रागानुगामी स्त्रियां शुभ नहीं है। विचार वन्ध्या अपने साथ पुरुषों को भी नरक में घसीट कर ले जाती हैं। इन्द्रिया अपने विषयों का भोग करती है। उसी प्रकार स्त्रियां भी किसी एक इन्द्रिय के उपभोग्य विषय हैं। उन पर सर्वसामान्य के समान संयमी पुरुषों को क्रोध नहीं आता। निसर्ग तरला नारी को कौन नियन्त्रण रखने में क्षम है ? उनके नियन्त्रण करने पर भी स्मरणोचित कौन बड़ा लाभ सज्जनों को होता है ? एक कुतिया के पीछे धावित, अनेक श्वानों समान, एक स्त्री पर लुब्ध होने वाले लोगों का पारस्परिक संघर्ष, यदि मान माना जाय, तो फिर अपमान किसे कहा जायेगा ? मृगाक्षियों के लिए ममता क्यों की जाए ? जबकि अपने शरीर पर ही प्रेम किंवा गौरव करना सर्वथा व्यर्थ है ? यदि उद्वेग के कारण यह वध्य है, तो उद्वेग के प्रधान हेतु राग को मुझे नहीं विस्मृत करना चाहिए। इस राग मही रुह का मूल सप्त पाताल का भेदन कर चला गया है, उसकी वृद्धि नष्ट करने के लिए उसके आधार द्वेष को क्यों न नष्ट किया जाए ? विवेक बल से प्रबल शत्रु द्वेष क्यों न जीता जाए ? क्षणार्ध-राग का क्यों न नाश किया जाए ? दैवी कृपा से प्राप्त, इस औषधि से प्रथम ईर्ष्या, तत्पश्चात् राग विजय से आशाएं स्वतः पलायन कर जाएंगी।"

दुर्लभवर्धन ने संयम का परिचय दिया। पापियों के रक्त से हाथ रक्तरंजित करना उचित नहीं समझा। उन्हें उनके भाग्य पर छोड़ देना श्रेयस्कर समझा। उन्हें दोषों एवं पाप का स्वयं प्रायश्चित्त करने का पात्र समझा। उसने खंग कोश में रख लिया। मुसकराता उन्हें निरखने लगा। उसने कल्पना की। इन कामुकों को

अपनी उपस्थिति प्रकट कर देना उचित होगा। उसने पापाचार को उसने देखा था। उन्हें निद्रित अवस्था में समाप्त कर सकता था।

दुर्लभ वर्धन खख के अगुरु पल्लव पर यह लिखकर, तत्काल कक्ष के बाहर निकल गया—

"खख, मैं तुम्हारा वध करने में समर्थ हूँ, परन्तु दया कर तुम्हें छोड़ देता हूँ।"

खख की निद्रा समाप्त हुई। काम शिथिलता दूर हुई। वह उठकर बैठ गया। अनंग लेखा विलास से थकी बगल में सोयी थी। वह अपना वस्त्र सम्हालने लगा। उसका ध्यान दुर्लभवर्धन के लिखे लेख पर गया। वह चकित हुआ। धुंधले प्रकाश में लेख नहीं पढ़ सका। प्रकाश के समीप आया। स्तम्भित हो गया। उसे पर पूर्वा का ध्यान आया। उसे दुर्लभवर्धन की महानता का ध्यान आया। उसकी महान् उदारता का ध्यान आया। जिसकी पत्नी के साथ, वह कामान्ध कामपिपासा शान्त करता था उसी के कारण, उसे जीवन दान मिला था। उसने घृणापूर्वक उस कामुक नारी पर दृष्टिपात किया, जिसने दुर्लभवर्धन जैसे महान् पति को पाकर भी उसके मान एवं मर्यादा का किंचित् मात्र ध्यान नहीं रखा था।

खख ने अनंगलेखा को जागृत नहीं किया। चुपचाप उठा। कुकृत्यों के लिए पश्चात्ताप किया। उस दूषित कक्ष को एक बार खिन्न मन देखा। अनंगलेखा का सर्वदा के लिए विसर्जन किया। वेगपूर्वक शयन कक्ष के बाहर निकल गया।

खख प्रत्युपकार की भावना में सर्वदा जागरूक रहता था। उसने दुर्लभवर्धन की सहायता का निश्चय किया। उसका हृदय प्रत्युपकार की चिन्ता में विदीर्ण होने लगा, न कि कामबाण से। उसकी दृष्टि इस कार्य के सम्पादन की चिंता में उन्निद्र रहती थी, न कि राजकन्या के प्रेमालाप एवं काम केलि में।

उज्ज्वल सत्कर्मकर्ता अनंग प्रभा का पिता राजा बालादित्य छत्तीस वर्ष आठ मास राज्य कर सुकृत प्रभाव के कारण बालाशशांकित मौलि के लोक में प्रयाण किया। उसने अपना उत्तराधिकारी किसी को नियुक्त नहीं किया था। निर्णय भविष्य पर छोड़ दिया था।

बालादित्य काश्मीर के गोनन्द वंश का अन्तिम राजा था। महाभारत काल से चले आते, गोनन्द राजवंश का दीप निर्वाण हो गया।

प्रत्युपकार की प्रबल अभिलाषा से प्रेरित खख ने अन्य मन्त्रियों को प्रभावित किया। उन्हें राजी कर लिया। स्वर्गीय राजा के जामाता दुर्लभवर्धन को काश्मीर मण्डल का राजा बनाया जाय। मन्त्रिपरिषद की स्वीकृति पर, तूयनाद के साथ दुर्लभवर्धन काश्मीर मण्डल का राजा घोषित किया गया।

यथावसर उसकी मूर्धा पर कनक कलशों द्वारा अभिषेक का जल गिरता। उसे पवित्र कर दिया। उसका विधिवत् अभिषेक काश्मीर के राज्यसिंहासन पर प्रथम कर्कोट वंशीय राजारूप में किया गया। और अनंगलेखा की दुष्कृतियों की छाया में गोनन्द वंश काश्मीर इतिहास मंच से सर्वदा के लिए पलायन कर गया।

आधार ग्रन्थ : राजतरंगिणी ३ : ४७४-५३०।

※ ※ ※

नामानुक्रमणिका